S. Ahmad.
तुलसीदास : — —
— — एक अध्ययन
रामरतन भटनागर, एम० ए०
महल

तुलसीदास : एक अध्ययन

लेखक

रामरतन भटनागर एम० ए०
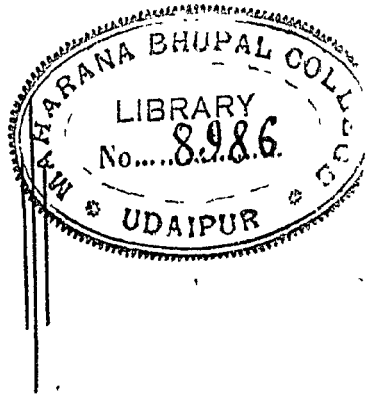
किताब महल

इलाहाबाद

पूज्य पिता

श्री गोविन्दराम वकील

की

साकेत-वासिनी पुण्यात्मा को

जिनके वृद्ध कंठ से बचपन के प्रभात में सुनी उत्तरकांड की इन
भक्ति-विह्वल पक्तियों में मुझे काव्य-प्रेमी और
कवि बना दिया—

'कारण कवन नाथ नहिं आये
जान कुटिल प्रभु मोहि बिसराये'

—रतन

२ सितम्बर, १६४६

दो शब्द

'तुलसी साहित्य की भूमिका' के बाद तुलसी-सम्बंधी यह मेरी दूसरी पुस्तक है। इस पुस्तक में तुलसी-सम्बंधी गवेषणाओं और वाद-विवादों के चक्कर में न पड़ कर तुलसी साहित्य का एक विहंगम चित्र उपस्थित करने की चेष्टा की गई है।

मध्ययुग के भक्तों और संतों में तुलसी का व्यक्तित्व हिमालय की तरह ऊँचा है। उनकी कविता लक्षावधि मनुष्यों की साधना और आनन्द की वस्तु बन गई है। कवि जीवन को सम्पूर्ण रूप में आत्मसात करता हुआ आगे बढ़ा है। ऐसे महान् व्यक्तित्व को एक-दो पुस्तकों में परिशेष करना हास्यास्पद होगा। इसीसे यह दूसरा प्रयास है।

आशा है, यह पुस्तक उन विद्यार्थियों को रुचेगी जो तुलसी के साहित्य-खोजियों के वाद-विवादों से ऊपर युग-पुरुष के रूप में देखना चाहेंगे।

प्रयाग,
सितम्बर, १९४९

रामरतन भटनागर

विषय-सूची

१

जीवनी और व्यक्तित्व

महाकवि और रामभक्त शिरोमणि तुलसीदास की जीवनी के निर्माण के सम्बन्ध में इधर कई वर्षों से काम हो रहा है परन्तु अभी तक हम उनके सम्बन्ध में किन्हीं निश्चिन्त सिद्धान्तों पर नहीं पहुँचे हैं। जीवन-सम्बन्धी खोजों के आधार अनेक हैं, परन्तु इनमें कई अप्रामाणिक निकलते हैं और कई किंवदंतियों और कवि की रामभक्ति और जन-प्रतिष्ठा-प्राप्ति के उल्लेखों से आगे नहीं बढ़ते। ग्रन्थों के रूप में आधार हैं, १. गोसाईं चरित २. मूल गोसाईं चरित, ३. तुलसी चरित, ४. भक्तमाल, ५. तुलसी साहब का घटरामायण (आत्मचरितवाला अंश), ६. भक्तमाल की प्रियदास की टीका, ७. दो सौ बावन वैष्णवों की कथा, ८. मोरोपंत का तुलसीदास स्तवन, ९. भविष्य पुराण। इनमें से दो, भक्तमाल और मोरोपंत के तुलसी स्तवन से कवि के जीवन से सम्बन्धित कोई महत्त्वपूर्ण साक्ष्य नहीं मिलता। भक्तमाल के लेखक नाभादास ने १२९ वें छप्पय में कवि के विषय में इतना ही लिखा है—

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो।
त्रेता काव्यनिबंध करी शत कोटि रमायन॥
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्म हत्यादि परायन।
अब भक्तिन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी॥
रामचरन रस भक्त रहत अहनिशि ब्रत धारी।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नवका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो॥

भक्तमाल का रचनाकाल सं० १६४२ है। उद्धृत छप्पय से केवल इतना ही प्रगट होता है कि तुलसीदास इस समय तक भक्त और रामकथाकार के रूप में इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि नाभादास ने उन्हें निःसंकोच द्वितीय वाल्मीकि (वाल्मीकि का अवतार) कह दिया। मोरोपंत के स्तवन में भी लगभग इसी प्रकार की सामग्री है। इसके अनुसार भी तुलसी वाल्मीकि के अवतार हैं और उन्होंने सात रामायणें (रामकथाएँ) लिखी हैं। स्तवन का रचनाकाल उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पड़ता है, इससे यह ऐतिहासिक दृष्टि से हमसे अधिक दूर नहीं है। इस प्रकार के उल्लेख स्पष्टतयः कवि के जीवनवृत्त के निर्माण में सहायक नहीं हो सकते।

भविष्यपुराण की साक्ष्य को पहली बार डा० माताप्रसाद ने (तुलसीदास पृ० १३) उपस्थित किया है जिसके अनुसार तुलसीदास गृहिणी के उपदेश से प्रेरित होकर ही राघवानन्द के पास आये और रामानन्दी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। इससे केवल तुलसी के गुरु का पता चलता है।

अन्य ग्रन्थों की सामग्री में ऐतिहासिकता से अधिक किम्वदंतियों का मिश्रण है। किम्वदंतियाँ सब में एक ही श्रेणी की हैं। वे या तो तुलसी के व्यक्तित्व को अलौकिक और चमत्कारिक सिद्ध करती हैं या समकालीन ऐतिहासिक भक्तों और कवियों पर उनकी महत्ता सिद्ध करती हैं। इन किंवदंतियों का सबसे वृहद् संग्रह भवानीदास का गोसाईं चरित्र है जिसके रचनाकाल को हम सं० १८१० के लगभग स्थिर कर सकते हैं। यह नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित महात्मा रामचरणदास की रामचरितमानस की भूमिका (तृतीय संस्करण सन् १९२४) की भूमिका के रूप में प्रकाशित है। इसमें किसी घटना या किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का सम्बन्ध किसी तिथि से नहीं जोड़ा गया है। यही घटनाएँ और किम्वदंतियाँ बहुत कुछ इसी रूप में

परन्तु अधिकतः तिथियों के साथ बेनीमाधवदास के मूल गोसाईं चरित में उपस्थित हैं। कहीं २ तो पंक्तियों में भी साम्य है। बाबा बेनीमाधवदास को तुलसी का समकालीन, उनका शिष्य और सखा कहा जाता है, अतः इस रचना के प्रामाणिक होने की आशा है, परन्तु यह सत्य की तुला पर किसी भी तोल नहीं चढ़ सकी है। इस कृति के अनुसार तुलसी का जन्म—संवत् १५५४ श्रावण शुक्ला सप्तमी को (कालिंदी के तीर) हुआ। सं० १५६१ माघ शुक्ल ५ शुक्रवार को यज्ञोपवीत हुआ, सं० १५८३ ज्येष्ठ शुक्ल १३, गुरुवार को विवाह हुआ। उन्होंने सं० १६०७ माघकृष्ण १५, बुधवार को भगवान् राम के दर्शन किये और सं० १६३३ मार्गशीर्ष शुक्ल मंगलवार को रामचरितमानस को समाप्त किया। देहांत-तिथि १६८० संवत् श्रावण कृष्ण ३, शनिवार है। इनमें पहली और पाँच तिथियाँ गणना से अशुद्ध सिद्ध होती हैं। इस ग्रन्थ के आधार पर तुलसीदास का जीवन-चरित बनाने का प्रयास किया गया है, फल है इन्डियन प्रेस द्वारा प्रकाशित और बाबू श्यामसुन्दरदास और डा० पीतांबर दत्त बड़थ्वाल द्वारा संपादित 'गोस्वामी तुलसीदास'। ग्रंथ तुलसी के जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं को, उनकी रचनाओं और उनकी यात्राओं का संवत्-तिथि के साथ इतना ब्योरेवार उपस्थित करता है कि सहसा इस ग्रंथ के "आधुनिक" होने का संदेह होता है। इसमें कुछ अलौकिक घटनाएँ ऐसी हैं जो नाभादास की भक्तमाल की टीका में भी मिलती हैं जैसे प्रेत का दर्शन होना, विधवा स्त्री के पति को फिर जिला देना, पत्थर के नन्दी का हत्यारे के हाथ से प्रसाद पाना और कृष्ण का राम में रूपांतरित हो जाना। परन्तु कितनी ही ऐसी घटनायें यहाँ पहली बार मिलेंगी जैसे जन्म लेते ही तुलसी का रामनाम का उच्चारण; उनके बत्तीस दाँतों का होना; पांच वर्ष के बच्चे-समान दीखना। उनका अन्य बालकों की तरह रोना नहीं, गौरा

भक्तमाल का रचनाकाल सं० १६४२ है। उद्धृत छप्पय से केवल इतना ही प्रगट होता है कि तुलसीदास इस समय तक भक्त और रामकथाकार के रूप में इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि नाभादास ने उन्हें निःसंकोच द्वितीय वाल्मीकि (वाल्मीकि का अवतार) कह दिया। मोरोपंत के स्तवन में भी लगभग इसी प्रकार की सामग्री है। इसके अनुसार भी तुलसी वाल्मीकि के अवतार हैं और उन्होंने सात रामायणें (रामकथाएँ) लिखी हैं। स्तवन का रचनाकाल उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पड़ता है, इससे यह ऐतिहासिक दृष्टि से हमसे अधिक दूर नहीं है। इस प्रकार के उल्लेख स्पष्टतयः कवि के जीवनवृत्त के निर्माण में सहायक नहीं हो सकते।

भविष्यपुराण की साक्ष्य को पहली बार डा० माताप्रसाद ने (तुलसीदास पृ० १३) उपस्थित किया है जिसके अनुसार तुलसीदास गृहिणी के उपदेश से प्रेरित होकर ही राघवानन्द के पास आये और रामानन्दी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। इससे केवल तुलसी के गुरु का पता चलता है।

अन्य ग्रन्थों की सामग्री में ऐतिहासिकता से अधिक किम्वदंतियों का मिश्रण है। किम्वदंतियाँ सब में एक ही श्रेणी की हैं। वे या तो तुलसी के व्यक्तित्व को अलौकिक और चमत्कारिक सिद्ध करती हैं या समकालीन ऐतिहासिक भक्तों और कवियों पर उनकी महत्ता सिद्ध करती हैं। इन किंवदंतियों का सबसे वृहद् संग्रह भवानीदास का गोसाईं चरित्र है जिसके रचनाकाल को हम सं० १८१० के लगभग स्थिर कर सकते हैं। यह नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित महात्मा रामचरणदास की रामचरितमानस की भूमिका (तृतीय संस्करण सन् १९२४) की भूमिका के रूप में प्रकाशित है। इसमें किसी घटना या किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का सम्बन्ध किसी तिथि से नहीं जोड़ा गया है। यही घटनाएँ और किम्वदंतियाँ बहुत कुछ इसी रूप में

परन्तु अधिकतः तिथियों के साथ बेनीमाधवदास के मूल गोसाईं चरित में उपस्थित हैं। कहीं २ तो पंक्तियों में भी साम्य है। बाबा बेनीमाधवदास को तुलसी का समकालीन, उनका शिष्य और सखा कहा जाता है, अतः इस रचना के प्रामाणिक होने की आशा है, परन्तु वह सत्य की तुला पर किसी भी तोल नहीं चढ़ सकी है। इस कृति के अनुसार तुलसी का जन्म—संवत् १५५४ श्रावण शुक्ला सप्तमी को (कालिंदी के तीर) हुआ। सं० १५६१ माघ शुक्ल ५ शुक्रवार को यज्ञोपवीत हुआ, सं० १५८३ ज्येष्ठ शुक्ल १३, गुरुवार को विवाह हुआ। उन्होंने सं० १६०७ माघकृष्ण १५, बुधवार को भगवान् राम के दर्शन किये और सं० १६३३ मार्गशीर्ष शुक्ल मंगलवार को रामचरितमानस को समाप्त किया। देहांत-तिथि १६८० संवत् श्रावण कृष्ण ३, शनिवार है। इनमें पहली और पाँच तिथियाँ गणना से अशुद्ध सिद्ध होती हैं। इस ग्रन्थ के आधार पर तुलसीदास का जीवन-चरित बनाने का प्रयास किया गया है, फल है इन्डियन प्रेस द्वारा प्रकाशित और बाबू श्यामसुन्दरदास और डा० पीतांबर दत्त बड़थ्वाल द्वारा संपादित 'गोस्वामी तुलसीदास'। ग्रंथ तुलसी के जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं को, उनकी रचनाओं और उनकी यात्राओं का संवत्-तिथि के साथ इतना ब्योरेवार उपस्थित करता है कि सहसा इस ग्रंथ के "आधुनिक" होने का संदेह होता है। इसमें कुछ अलौकिक घटनाएँ ऐसी हैं जो नाभादास की भक्तमाल की टीका में भी मिलती हैं जैसे प्रेत का दर्शन होना, विधवा स्त्री के पति को फिर जिला देना, पत्थर के नन्दी का हत्यारे के हाथ से प्रसाद पाना और कृष्ण का राम में रूपांतरित हो जाना। परन्तु कितनी ही ऐसी घटनायें यहाँ पहली बार मिलेंगी जैसे जन्म लेते ही तुलसी का रामनाम का उच्चारण; उनके बत्तीस दाँतों का होना; पांच वर्ष के बच्चे-समान दीखना। उनका अन्य बालकों की तरह रोना नहीं

माई का तुलसीदास पर कृपा करना, शिव का दर्शन और लड़की को लड़का बना देना। यह सब बातें प्रियादास की टीका या 'वार्ता' की शतश: मनगढ़ंतों की श्रेणी की हैं। इससे कवि के प्रति श्रद्धाभाव चाहे जितना बढ़े, इनका उसके जीवन-वृत्त के निर्माण में कोई स्थान होना कठिन है। साधारण जनता में लोकप्रिय नायक इसी रूप में प्रतिष्ठा पा जाते हैं जिस रूप में वार्त्ता, प्रियादास और मूल गोसाईं चरित तुलसीदास को हमारे सामने उपस्थित करते हैं—इसके लिए हम अपढ़, श्रद्धाजीवी और चमत्कार प्रिय जनता को क्या कहें? इसके अतिरिक्त कवि की कुछ ऐतिहासिक पुरुषों से भेंट का भी उल्लेख है? सूरदास (सं० १६१६), मीराबाई—पत्र द्वारा (सं० १६१६), केशवदास (१६४३-१६४४), बलभद्र (१६४२-१६४४), मुक्तामणि-दास (१६३४-३५) केशवदास का प्रेत (सं० १६५१), नन्ददास (१६४६-५०), दिल्लीपति अकबर (१६५१), मलूकदास (१६५१), जहाँगीर (१६७०), नाभादास (१६४६-५०)। इनमें से कुछ भेंटें असंभव हैं। इतिहास साक्षी है। केशवदास की समस्त रचनाएँ सं० १६५१ के बाद की हैं और इन सभी के आरम्भ में लेखक ने निर्भ्रान्त रूप से तिथि दे दी है, ऐसी अवस्था में इस संवत् में उनके प्रेत की भेंट कहाँ तक ठीक बात है? विद्वान लेखकों ने कुछ संभव हो सकने वाली भेंटों को असम्भव दिखा दिया है जैसे इतिहास में सं० १६७० के समीप जहाँगीर के बनारस आने का कहीं भी उल्लेख नहीं है—न स्वयं जहाँगीर के "तुज्क जहाँगीरी" में, न समकालीन इतिहासकारों की रचनाओं में कुछ बातों से यह साफ़ प्रगट होता है कि ग्रन्थ का आधार जन-श्रुतियाँ और कवि की कृतियाँ मात्र हैं परन्तु साथ ही किसी कारण से अनेक गढ़ी बातें जोड़ दी गई हैं :—

१—तुलसी केशवदास को प्राकृत कवि कहकर उनसे भेंट करने

से इंकार कर देते हैं, यह कदाचित् तुलसी की ही पंक्तियों की ध्वनि है।

कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुन गिरा लगत पछिताना ॥
(बाल० ११)

२—उनकी माता का नाम हुलसी थी, इसके विषय में तुलसी की पंक्ति है—

रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसीदास हित हियँ हुलसी सी ॥
(बाल० ३१)

परंतु हुलसी की एक अन्य पंक्ति से स्पष्ट है कि यहाँ हुलसी का अर्थ माता नहीं है—

शंभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी।
(बाल० ३६)

३—जन्म होते ही इन्होंने रामनाम का उच्चारण किया, इससे इनका नाम 'रामबोला' पड़ा। विनय पत्रिका में तुलसी ने अपने इस नाम का उल्लेख किया है। परन्तु वह कदाचित् आध्यात्मिक अर्थों में ग्रहण किया जा सकता है—

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम।
काह यहे नाम है हौं कबहुँ कहत हौं ॥
(विनय, ७६)

'रामबोला' नाम हौं गुलाम राम साहि को।
(कविता० उत्तर० १००)

४—तुलसी के गुरु नरहरि और शिक्षा-क्षेत्र सूकरखेत के उल्लेख भी मानस से प्राप्य हैं—

कृपासिंधु नर रूप हरि
(बाल० १)

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ॥
(बाल० ३०)

इस प्रकार हम मूल गोसाईं चरित द्वारा उपस्थित सामग्री को सन्देह की दृष्टि से देखे बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार का एक ग्रंथ बाबा रघुवरदास का तुलसी चरित है जिसका कुछ अंश कई बने हुए "मर्यादा" पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। परिचयकार के लेख से पता चलता है कि यह तुलसी के जीवन-सम्बन्धी ग्रन्थों में सबसे अधिक महत्काय होगा। परन्तु यह प्रकाशित नहीं हुआ है, न इसका कोई पता ही फिर लगा। प्रकाशित अंश की परीक्षा करने पर ही यह भ्रांतिपूर्ण सिद्ध होता है। प्रियादास की भक्तमाल की टीका (सं० १७६९) में तुलसी के जीवन से सम्बन्धित ७ घटनाओं का उल्लेख है—

१—तुलसीदास अपनी स्त्री से अत्यन्त प्रेम करते थे, उसी की भर्त्सना से विरागी होकर काशी चले गये (कवित्त ५०८)

२—काशी में उन्होंने एक प्रेत को प्रसन्न किया और उसके द्वारा हनुमान् जी की प्राप्ति की। प्रेत ने उन्हें रामदर्शन कराया। (५०९, ५१०)

३—एक हत्यारा रामनाम लेता हुआ आया। तुलसी ने उसके हाथ से भोजन कर लिया। इससे पंडितों में बड़ी हलचल मची। तुलसीदास ने हत्यारे के हाथ से पत्थर के शिवनन्दी को भोजन करा दिया, इस तरह उन्होंने पंडितों का समाधान किया। (५११, ५१२)

४—कुछ चोर तुलसी के घर चोरी करने आए। उन्होंने देखा कि दो गोरे साँवले बालक (राम-लक्ष्मण) तीर-कमान लेकर रक्षा करते हैं। प्रातः उन्होंने तुलसी पर यह बात प्रगट की। तुलसी ने धन-धान्य लुटा दिया। वे चोर रामभक्त हो गये। (५१३),

५—तुलसीदास विधवा को आशीष वचन देते हैं, अंत में उन्हें उसके मृत पति का जीवनदान देना पड़ता है। (५१४)

६—तुलसी के चमत्कारों की बात सुनकर अकबर उन्हें बुलाता है, उनके करामात दिखाने से इंकार करने पर उन्हें बंदी कर लेता है। कवि हनुमान से प्रार्थना करता है। बंदर प्रगट होकर उत्पात करने लगते हैं। यह उत्पात तब बंद होता है जब बादशाह क़िला छोड़ने पर राजी हो जाता है और तुलसी को मुक्त कर देता है। (५१५, ५१६, ५१७)

७—तुलसी दिल्ली से लौटकर वृन्दावन जाते हैं। वहाँ नाभादास से भेंट होती है (५१७)। वृन्दावन में वह मदनगोपाल की मूर्ति से प्रार्थना करके उसे राममूर्ति में बदल देते हैं। उपर्युक्त कथाओं में और वार्ता की अन्य संतो-भक्तों के सम्बन्ध में लिखी गई कथाओं में बहुत कुछ साम्य है। प्रियादास की तुलसी के स्त्री-प्रेम और तिरस्कार द्वारा भगवद्-विषयक-ज्ञानप्राप्ति की कथा वार्ता में यदुनाथदास से सम्बन्धित है (पृ० ८१) और प्रियादास की हत्यारेवाली कथा-वार्ता की 'लाहौर के पंडित की वार्ता' (पृ० ३१६) में मिलती है।

घट रामायण में तुलसीदास को कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहा गया है। वे यमुना किनारे राजापुर ग्राम में उत्पन्न हुए। तुलसीदास ने इस ग्रन्थ में तुलसी-संबन्धी ४ तिथियाँ दी है—जन्म-तिथि सं० १५८६ भाद्रपद, शुक्ला ११ मंगलवार; ज्ञानोदय तिथि सं० १६१४ श्रावण शुक्ला ६; काशी-आगमन-तिथि १६१५ संवत् चैत्र १२, मंगलवार और देहांत-तिथि सं० १६८० श्रावण शुक्ल ७। ये जन्म-मरण तिथियाँ लगभग वही हैं जो अधिकांश विद्वानों को मान्य हैं।

एक दूसरे प्रकार की सामग्री सोरों की सामग्री का समर्थन करती है। पहले हम "२५२ वैष्णवों की वार्ता" को ही लेंगे। इस ग्रंथ में हम तुलसी के सम्बन्ध में इतनी सूचनाएँ पाते हैं :—

१—तुलसीदास नंददास के बड़े भाई और रामचन्द्र जी के अनन्य भक्त थे। (पृ० २८)

२—तुलसीदास काशी में रहते थे। उन्होंने भाषा में रामायण लिखी। (पृ० ३२)

३—तुलसीदास जी नंददास जी से मिलने के लिए ब्रज आये। गोवर्धन में दोनों की भेंट हुई। दोनों गोवर्धननाथ जी के दर्शन को गए तो तुलसीदास ने माथा नहीं नवाया। इस पर नंददास ने यह जानकर अपने इष्टदेव से प्रार्थना की। उन्होंने रामरूप ग्रहण कर तुलसी को दर्शन दिये। (पृ० ३३, ३४, ३५)

इसमें से अंतिम बात स्पष्ट रूप से तुलसी के व्यक्तित्व और चरित्र के विरोध में जा पड़ती है। जो व्यक्ति कृष्ण गीतावली-जैसा ६० सुन्दर छन्दों का कृष्णचरित काव्य लिख सकता है, जिसके लिए राम (ब्रह्म) का एक अवतार कृष्ण रूप में हुआ है—

वृष्णि-कुल-कुमुद राकेस राधारमन कंस वंसाटवी धूमकेतू

(विनय० ५२)

वह किस प्रकार ऐसा कट्टर हो सकता है जैसा "वार्त्ताकार" ने उसे चित्रित किया है। 'वार्त्ता' की अनेक अलौकिक एवं चमत्कारिक घटनाएँ श्रद्धाभाव और 'पुष्टिमार्ग के प्रचार से ही प्रेरित हैं। अतः उसके साक्ष्य को सोलह आना सत्य नहीं माना जा सकता।

सोरों की सामग्री विपुल है। उसमें मुख्य हैं—(१) सूकर क्षेत्र-माहात्म्य; जिसे सं० १६७० में नंददास के पुत्र कृष्णदास ने रचा, (२) रत्नावली के दोहों के दो संग्रह (दोहा-रत्नावली और लघु दोहा-संग्रह—रत्नावली तुलसीदास की स्त्री प्रसिद्ध हैं), (३) रत्नावली की पद्यबद्ध जीवनी जिसे मुरलीधर चतुर्वेदी ने लिखा और जिसका रचनाकाल सं० १८८६ है। इस सामग्री की विस्तृत और निर्णयात्मक परीक्षा अभी नहीं हुई है और अभी बहुत कुछ अंधकार के गर्भ

में छिपा पड़ा है। इस सामग्री से कवि के प्रारंभिक जीवन पर उत्साहवर्द्धक नवीन प्रकाश पड़ता है।

'माहात्म्य' से 'वार्ता' के इस उल्लेख की पुष्टि होती है कि तुलसीदास नंददास के बड़े भाई थे, परन्तु यहाँ वे चचेरे भाई हैं।

इस सामग्री का एक अंश सोरों की जनश्रुति भी है। सोरों में योगकर्म के मुहल्ले में एक प्राचीन हवेली को तुलसीदास का जन्म-स्थान बताया जाता है। अब सदर द्वार तो वही है परन्तु शेष मकान कच्चा है जिसमें एक मुसलमान रहता है। सड़क पर कसाइयों की बस्ती है। आस-पास में कुछ सनाढ्य ब्राह्मणों के घर हैं। इसमें एक घराना है, जिसकी वंश-परंपरा नंददास तक चली कही जाती है। यहाँ एक मंदिर भी है जो नरसिंह जी महाराज का मंदिर कहा जाता है। जनश्रुति है कि "नरसिंह जी महाराज" से तुलसीदास के गुरु नरहरि का तात्पर्य है। इन नरसिंह महाराज के वंशधर आजकल इस मंदिर के मुख्या हैं। इन जनश्रुतियों की सत्यता सिद्ध करने के लिए हमारे पास कोई विशेष प्रमाण नहीं है। परन्तु यदि सोरों की दूसरी सामग्री सत्य है, तो ये जनश्रुतियाँ उसे पुष्ट करने के काम में आ सकती हैं।

परन्तु तुलसी के जीवनवृत्त के निर्माण के लिए सबसे प्रामाणिक सामग्री है स्वयं तुलसीदास का स्वकथित जीवनवृत्त। यह सामग्री तुलसी की कई रचनाओं में बिखरी पड़ी है। अपनी कविता में कवि ने यदि अपने व्यक्तित्व के संबंध में कुछ कहा है तो उस कथन को बहुत हद तक हमें प्रामाणिक मान कर ही चलना होगा। जन-श्रुति और बाह्यसाक्ष्य में अतिशयोक्ति हो सकती है, बाद के लोग उसके काव्य-चमत्कार से प्रभावित होकर कवि के चारों ओर लौकिक और दैविक शक्तियों से सम्पन्न कथाओं का ताना-बाना बुन सकते हैं, परन्तु यह तो ठीक ही होगा कि कवि को अपने जीवनवृत्त के

संबंध में कोई भ्रान्ति नहीं होगी और शायद ही उसे आगामी पीढ़ियों को धोके में डालने की इच्छा हो। इसी सत्य का सहारा लेकर हम गुसाईं तुलसीदास के जीवनवृत्त की खोज करते हैं। हमारे आधार उनके ग्रंथ होंगे।

इस अंतर्साक्ष्य की दृष्टि से कवितावली, बाहुक और विनय पत्रिका मुख्य हैं। इनके बाद मानस, दोहावली, रामाज्ञा प्रश्न, पार्वती मंगल और बरवै रामायण। अन्य ग्रन्थों से जीवनवृत्त बनाने में कोई सहायता नहीं मिलती।

तुलसी के जन्मकाल के संबंध में उनके किसी भी ग्रंथ में उल्लेख नहीं मिलता। माता-पिता के नाम का भी कहीं उल्लेख नहीं है। उनका नाम तुलसी था और कदाचित् वैराग्य धारण करने पर उन्होंने इसका तुलसीदास कर लिया—

नाम तुलसी भोंड़े भाग सो कहायो दास
किये अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज़ को।
(कवितावली उत्तर० १३)

अपने जीवन की संध्या में वे पूर्णतः रामाश्रित हो गये थे और अपने को 'रामबोला' कहने लगे थे, यह विनय पत्रिका से स्पष्ट है।

जाति की दृष्टि से तुलसीदास ब्राह्मण थे, यह निर्विवाद है। परन्तु उनका सम्बन्ध ब्राह्मणों की किस उपजाति से था, यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। श्री सुधाकर द्विवेदी और डाक्टर ग्रियर्सन उन्हें सरयूपारीण ब्राह्मण बताते हैं; मिश्रबंधु उन्हें कान्यकुब्ज ठहराते हैं; वार्ता ने उन्हें सनाढ्य लिखा है और इसकी पुष्टि कुछ लोग विनय पत्रिका की उस पंक्ति से करते हैं जिसमें उन्हें सकुल (शुक्ल) कहा गया है जो सनाढ्यों का एक गोत्र है—

दियो सुकुल जनम शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को
(विनय० १३५)

कुछ लोग विनय पत्रिका की एक पंक्ति (१०६) में 'वाजपेयी' शब्द के प्रयोग के आधार पर तुलसी को वाजपेयी भी कहते हैं। स्वयं तुलसी ने अपनी जाति-पाँति के संबंध में कुछ कहने से इंकार किया है—

१—मेरे जाति पाँति न चाहौं काहू की जाति-पाँति

२—काहू की वेटी सो वेटा न व्याहव,

काहू की जाति विगार न सोई

(कवितावली)

परन्तु ये पंक्तियाँ उनकी प्रौढ़ावस्था की हैं जब वे सन्यस्त हो चुके थे। ये उनकी उस समय की चित्तवृत्तियों को प्रगट करती हैं। उनका शब्दार्थ नहीं लिया जा सकता।

इनकी बाल्यावस्था बड़े कष्ट में बीती। अभुक्तमूल में जन्म लेने के कारण जननी-जनक का "परिताप" हुआ। कदाचित् कुछ काल बाद उनका देहांत भी हो गया और कवि अनाथ हो गया। तुलसी ने जो अनेक बार माता-पिता के त्याग की बात कही है, वह इसी तरह समझी जा सकती है। उपर्युक्त परिस्थिति की पुष्टि में हम कवि की रचनाओं से अनेक पंक्तियाँ उद्धृत कर सकते हैं—

(१) मातु-पिता जग जाय तजो विधिहू न लिखी कुछ भाई भलाई

(२) तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहू

(३) जननी जनक तज्यो जनमि

(४) जायो कुलमंगन वधावनो वजायो सुनि

भयो परिताप पाप जननी जनक को

ऐसी परिस्थिति में पड़ जाने के कारण उसका बाल और किशोर जीवन अत्यन्त आर्थिक तंगी में बीता और उसे पग-पग पर दरिद्रता और अपमान का सामना करना पड़ा—

(१) बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को
(२) द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ
(३) फिर्‌यो ललात बिनु काम उदर लगि दुखउ दुखित मोहिं हेरे
नाम प्रसाद लहत रसाल फल अबहौं बबुर बहेरे
(४) खायो खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे
तेरे बल बलि आजु लौं जग जागि जिया रे

बालक तुलसी ने घर-घर, मंदिर-मंदिर भीख माँगकर अपना पेट भरा। कदाचित् वह हनुमान्‌-मंदिरों के प्रसाद पर पलता रहा। बाहुक में तुलसी हनुमान को संबोधित करके कहते हैं—

पालो तेरो टूक को ३४
टूकनि को घर-घर डोलत कँगाल बोलि
बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो हैं २६

रामभक्त संतों ने (जो हनुमान्‌-मंदिरों में ही उन्हें मिले होंगे) उसे सान्त्वना दी और रामाश्रित होने का उपदेश दिया—

दुखित देखि संतन कह्यो सोचै जनि मन माहूँ
तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न सरन गये रघुबर ओर निबाहूँ
(विनय० २७५)

इसी समय उनके दीक्षा-गुरु से उनकी भेंट हुई होगी जिन्होंने सूकर-क्षेत्र में उन्हें रामकथा से बार-बार परिचित कराया—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ॥ ३० (क)
श्रोता बकता ज्ञाननिधि कथा राम कै गूढ़।
किमि समझौं मैं जीव जड़ कलिमल ग्रसित बिमूढ़ ॥३० (ख)

तदपि कही गुरु वारहिं वारा।
समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥

(वालकांड)

तुलसी के गृहस्थ-जीवन के संवंध में उनके ग्रंथों में कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। कवितावली के कुछ स्थलों से लोगों ने अर्थ निकाला है कि इनका विवाह नहीं हुआ था। परन्तु इसी ग्रन्थ में विवाह-संवंधी उल्लेख भी मिलते हैं। विवाह के निषेध-रूप जो संकेत मिलते हैं, वे या तो लोकोक्ति के प्रयोग हैं या संन्यासावस्था की विरक्त भावना। कदाचित् यौवन में विषयासक्ति अधिक थी, परन्तु कवि संयम की महिमा जानता था और अधिक-अधिक ऊपर उठने की चेष्टा कर रहा था। कवितावली में कई स्थानों पर इस आध्यात्मिक संघर्ष का अच्छा चित्रण है।

वाहुक के एक छंद में कवि लिखता है—

वालपने सूधे मन राम सनमुख गयो
रामनाम लेत माँगि खात टूक एक हौं।
पर्‍यो लोकरीति में पुनीत प्रीत रामराय
मोहवस बैठो तोरि नरक तराक हौं ॥

(वाहुक ४०)

इससे स्पष्ट है कि तुलसी ने "लोकरीति" का पालन किया। इशारा निःसन्देह विवाह और गृहस्थाश्रम की ओर है। जान पड़ता है तुलसीदास ने गृहस्थ-जीवन को अधिक काल तक नहीं निभाया। वचपन में ही रामभक्ति का स्वाद मिल गया था। सहानुभूति कहीं मिली ही न थी। विवाह के वाद किसी विशेष कारण से जीवन की कटुता और क्षणभंगुरता की भावना से प्रभावित हो गये। वैरागी

बन गये। वैराग्य साधन के बाद वे विशेषतया काशी में रहते थे; हाँ, कुछ दिनों के लिये दूर-दूर तीर्थयात्रा को चले जाते थे। उनकी कविताओं में चित्रकूट, वारिपुर-दिगपुर (सीतामढ़ी के पास), अयोध्या, प्रयाग और बद्रीनारायण के उल्लेख आते हैं। अवश्य ही इन स्थानों की यात्रा उन्होंने की होगी। राम के नाते चित्रकूट और अयोध्या उन्हें विशेष प्रिय रहे होंगे। जनश्रुति है कि वह ब्रज गये, परन्तु उनकी रचनाओं में इसका कोई संकेत नहीं मिलता। उनकी रचनाओं पर ब्रजभाषा और सूरदास का प्रभाव अवश्य स्पष्ट है; कितनी ही रचनाएँ मुख्यतः ब्रजभाषा में ही हैं।

रामचरितमानस की लोकप्रियता के कारण तुलसी को सम्मान मिलने लगा, ऐसा अनेक अवतरणों से सिद्ध किया जा सकता है—

रामनाम को प्रभाव पाउ महिमा प्रताप
तुलसी से जग मानियत महामुनी सो॥
(कविता, उत्तर० ७२)

परन्तु विरोध भी कम नहीं हुआ होगा। पंडित-वर्ग धर्मशास्त्रों को भाषा-रूप देने का विरोधी है, सदैव रहा है, इससे अपढ़ जनता से उसकी साख जाती रहती है। दोहावली में इसका स्पष्ट संकेत है—

तुलसी रघुवर-सेवकहिं, खल डाँटत मन माखि।
बाजराज के बालकहिं लवा दिखावत आँखि॥
(१४४)

अन्य रचनाओं में भी इस ओर संकेत है—

लोग कहैं पाँचु सो न सोच न सँकोच मेरे
ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं
तुलसी अकाज काज राम ही के रीझे खीझे
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं
(विनय० ७६)

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महाखल
बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है

(कविता उत्तर० १०८)

उसे काशी के शिवोपासकों के दुर्दांत विरोध का भी सामना करना पड़ा है। यह विरोध कदाचित् शिवमंदिरों के पुजारियों ने किया हो। कदाचित् उनसे मारपीट भी की गई हो—

गाँव बसत वामदेव कबहुँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे॥
बेगि बोलि बलि बरजिए करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूँध्यो चहै सठ साखि सिहोरे॥

(विनय० ८)

इस विरोध का कारण इसके सिवा क्या हो सकता है कि राम-भक्ति के प्रचार के कारण शिवमंदिरों की पूजानिष्ठा में कमी होने लगी। वैसे तुलसी ने तो शिव को राम का सेवक, सखा, मित्र और अपना गुरु माना है। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि तुलसी इन विरोधों के सामने अडिग रहे। उनका कहना था—

कौन की आस करै तुलसी जो पै राखिहैं राम तो मारिहै कोई

(कविता, उत्तर० ४८)

तुलसीदास रघुबीर करहु बल सदा अभय काहू न डरै

(विनय० १३७)

कवि ने पूर्ण वृद्धावस्था का उपयोग किया। वे बहुत दुर्बल हो गये थे। दृष्टि क्षीण हो गई थी। इसी वृद्धावस्था में जब वे काशी में

थे उन्हें कोई भयंकर रोग हो गया। १६७३ सं० में आगरा और बनारस में प्लेग हुआ था। विद्वानों का मत है कि तुलसीदास इस बीमारी से ग्रस्त हो गये थे, परन्तु हनुमान् की कृपा से रामाश्रय हो वे स्वस्थ हो गये (कवितावली उत्तर० १७६, १८३)। इसके कुछ कालांतर में वे बाहुपीड़ा और वात कष्ट से ग्रसित हुए जिनका विशद वर्णन दोहावली, कवितावली, विनय पत्रिका और बाहुक में मिलता है। पहले बाहु-पीड़ा हुई। उसके शमन के लिए तुलसी ने भगवान् राम, शिव और हनुमान् तीनों से प्रार्थनाएँ कीं। अंत में इस पीड़ा का शमन हो गया (बाहुक ३६), परन्तु इसके जाते-न-जाते कवि जिस वात रोग में फँस गया, वह उसके प्राणों के साथ ही गया। दोनों बीमारियों के भिन्न २ लक्षण स्पष्ट हैं—

तुलसी तनुसर सुख जलज भुजरुज गज कर जोर
दहन दयानिधि देखिये कपि केशरी किशोर
भुजतरु कोटर रोगअहि बरबस कियो प्रवेश
बिहँस राजबाहन तुरत काढ़िय मिटइ कलेश

(दोहावली)

पाँय पीर, पेट पीर, बाहु पीर, मुख पीर,
जरजर सकल शरीर पीरमई है
ताते तनु पेखियत, घोर बरतोर मिस,
फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को

(कवितावली)

इस बार भी कवि ने भगवान् राम, भगवान् शिव और परम भागवत हनुमान् की शरण ली, परन्तु वह प्रार्थना करता-करता थक गया, इन देवताओं और देवों में उसका विश्वास भी शिथिल हो

गया, रोग ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। उनकी एक कविता में स्पष्टतयः मरण-संकेत मिलता है—

पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच विमोचन छेमकरी है
(कवितावली)

अंतर्साक्ष्य से वहिर्साक्ष्य का संबंध जोड़कर डा० माताप्रसाद ने यह सिद्ध किया है कि काशी में आकर तुलसीदास गोसाइयों के किसी मठ में दीक्षित हो गये थे और कालांतर में स्वयं मठाधीश हो गये। जीवन के अंतिम दिनों में जब तुलसी बाहुरोग और बात रोग से पीड़ित हुए तो उन्हें उन ऐश्वर्यों की याद आई जो उन्होंने मठाधीश बनकर सेवन किये थे—

तुलसी गोसाईं भयो भोंड़े दिन भूलि गयो
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं
(बाहुक ४०)

इससे अधिक अंतर्साक्ष्य (तुलसी के ग्रंथ) हमारी सहायता नहीं करता।

यदि हम अब तक की सारी सामग्री को एक स्थान पर रखकर तुलसीदास के जीवन वृत्त का निर्माण करना चाहें तो उसकी रूपरेखा कुछ इस प्रकार होगी :—

तुलसीदास के पूर्व पुरुष सोरों या सूकरक्षेत्र (वर्तमान जिला एटा) के निकटवर्ती रामपुर ग्राम में निवास करते हैं। यह सनाढ्य शुक्ल थे। तुलसीदास के पिता आत्माराम और जीवाराम दो भाई थे। जीवाराम के दो पुत्र थे नंददास और चंद्रदास। तुलसी अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र थे। यह नंददास वल्लभ संप्रदाय के भक्त कवि नंददास हैं। चंद्रदास से हम अपरिचित हैं। इनमें तुलसी सबसे बड़े थे।

तुलसीदास अभी नितांत अबोध बालक थे कि उनके माता-पिता का देहांत हो गया। उनकी वृद्धा दादी ने उन्हें पाला। इन्हीं वृद्धा दादी के यहाँ रहकर तुलसी और नंददास नरसिंह चौधरी की पाठ-शाला में पढ़ने लगे जो चक्रतीर्थ के समीप है। दादी का घर योग-मार्ग में था जहाँ आजकल एक मुसलमान ग्वाला रहता है। तुलसी के गुरु नृसिंह भक्त वैष्णव थे। उन्होंने ही उन्हें रामकथा में दीक्षित किया। सूकरखेत में जिस राम-कथा के बारबार सुनने का उल्लेख तुलसी मानस में करते हैं, वह इन्हीं नृसिंह चौधरी के मुँह से ही सुनी गई होगी। तुलसी शीघ्र ही रामभक्ति में डूब गये। वे बराबर रामनाम का उच्चारण करते थे। इसी से उन्हें 'रामबोला' भी कहते थे।

इसी समय विवाह की चर्चा चली। कवि का विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से सम्पन्न हुआ। दीनबंधु पाठक गंगापार बदरिया ग्राम में रहते थे। विवाह के समय रत्ना केवल १२ वर्ष की कन्या थी। उसका सोलहवें वर्ष में गौना हुआ। दम्पति का जीवन बड़े सुख से बीतता था। विवाह के थोड़े दिनों बाद ही दादी का देहांत हो गया था और तुलसी आजीविका के लिए पुराण आदि कथाएँ कहते थे। कुछ दिन बाद तारापति नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ परन्तु वह छोटी आयु में ही काल-कलवित हो गया।

पंद्रह वर्ष के लंबे काल तक दम्पति गार्हस्थ्य-जीवन और दाम्पत्य का आनन्द लेते रहे। अब रत्ना को सत्ताईसवाँ साल लगा। इस वर्ष रत्नावली अपने पति की आज्ञा लेकर भाई के घर राखी बाँधने गई थी और तुलसी भी कहीं बाहर कथा बाँचने गये थे। ग्यारह दिन के बाद वे कथा बाँचकर घर लौटे। स्त्री के बिना घर सूना लगा। कुछ इतने बेचैन हुए कि अर्धरात्रि के समय ही बदरिया जाने की सूझी। अर्धरात्रि का समय था। आकाश काले-काले भयंकर बादलों

से भरा हुआ था। आगे नदी का विस्तृत पाट था। अँधेरी रात थी। परन्तु तुलसी के हृदय को लगी थी। अच्छे तैराक थे। कूद पड़े। ले-देकर गंगा पार की और बदरिया पहुँच गये। घर जाकर दस्तक दी। साले ने दरवाजा खोला और उन्हें अंदर बुलाकर बहन को उनके आने का समाचार दिया।

रत्नावली तुलसी की गहरी आसक्ति से परिचित थी। भाई सो गया तो वह पति के पास आई। पूछा ऐसे बेवक्त आने का कारण ? तुलसी ने कहा—तुम्हारा प्रेम। सती रत्नावली ने उसके इस प्रेमाधिक्य को गौरव और गर्व से देखा, परन्तु साथ ही उसे अपनी "अस्थि चर्म मय देह" की याद दिलाकर उच्च आध्यात्मिक प्रेमभूमि की ओर भी संकेत किया। रत्ना सो गई परन्तु तुलसी जागते रहे। बचपन के संस्कार जाग उठे। 'रामबोला' चेत गया। उसकी आत्मा ने उसे धिक्कारा। राम के सम्मुख होकर भी वह फिर इस 'लोकरीति' में क्यों पड़ गया ? आध्यात्मिक संस्कार इतने प्रबल हो उठे कि तुलसी ने रत्नावली को सोते छोड़कर विरागी भक्तों की राह ली। फिर आयु भर वह उस ओर नहीं गया।

और दुःखी सती रत्नावली ? क्या उसके ही वचनों ने कवि को गृहस्थ धर्म से विमुख नहीं बनाया था ? पतिवंचिता साध्वी रत्नावली ने इस दुःख को ही सुहाग समझा। वह पति के पदत्राण की पूजा करती रही। वह दूर से ही कवि की गति-विधि की खबर लेती और उनकी कीर्ति में आनन्द प्राप्त करती रही। एक बार कवि ने भी अपने भतीजे के हाथ उसे रामभक्ति का उपदेश भेजा। परन्तु सती रत्नावली तो पहले ही पतिरंग में रँगी थी। ५० वर्ष की आयु पाकर रत्नावली सतीलोक चली गई।

रत्नावली से विदा होकर कवि ने चित्रकूट, अयोध्या, काशी, सीतावट आदि तीर्थों की यात्राएँ कीं और सत्संग एवं शास्त्राध्ययन

के द्वारा अपने ज्ञान को बराबर विस्तीर्ण किया। उसकी रामभक्ति बराबर दृढ़ होती गई और राम-सम्बंधी ज्ञान में विकास होता गया। वह बराबर कुछ न कुछ लिखता और जो कुछ वह लिखता वह राम-भक्ति और रामकथा से संबंधित होता। उसका काव्य उसकी भक्ति साधना (हरिभक्ति पथ) की ही बाह्य अभिव्यक्ति है।

अयोध्या में तुलसीचौरा पर रहकर तुलसी ने मानस का प्रणयन आरम्भ किया परन्तु कदाचित् पहले दो मास के बाद उसे काशी जाना पड़ा और वह वहीं बस गया। वह वहाँ किसी गोसाईं सम्प्रदाय में दीक्षित हुआ और अपने ज्ञान बल के कारण एक दिन मठाधीश बन गया। परन्तु उसका विरोध बढ़ने लगा और अब उसका हृदय एक बार फिर अधिकार, धन और ऐश्वर्य के प्रति ग्लानिभावना से भर गया, तब उसने यह मठ भी छोड़ दिया और स्वतंत्र रूप से रहने लगा। काशी में उसके कई मित्र थे जिनके यहाँ वह समय-समय पर रहा।

उसके समय में काशी पर तीन बड़े प्रकोप आये—महामारी (ताऊन), दुर्भिक्ष और वात रोग। अब कवि वृद्ध हो गया था। उसका सारा जीवन राममय था, रामाश्रित था, रामरूप था। अतः उसने प्रत्येक कठिनाई के समय भगवान् राम या भागवत शिव और अंजनिकुमार (हनुमान्) के सिवा और किसी से सहायता की याचना नहीं की।

२

रचनाएँ और उनका संक्षिप्त परिचय

तुलसी की प्रामाणिक रचनाओं के सम्बन्ध में हम अब विशेष निर्णयों तक पहुँच गये हैं। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्टों में तुलसीदास की ३७ रचनाओं का विवरण है—१. आरती (खोज रिपोर्ट ११२०, २१, २२), २. अंकावली, ३. उपदेश दोहा, ४. कवित्त रामायण, ५. कृष्ण-चरित्र, ६. गीता भाष्य, ७. गीतावली रामायण (खो० १६०४), ८. छन्दावली रामायण (खो० १६०३), ६. छप्पय रामायण, १०. जानकी मंगल, ११. तुलसी सतसई (खो० १६०६, ७, ८), १२. तुलसीदास जी की बानी, १३. दोहावली, १४. ध्रुव प्रश्नावली, १५. पदावली रामायण (१६०६ १०, ११), १६. बरवै रामायण (१६०६, ७, ८), १७. बाहु सर्वांग (१६०३), १८. बाहुक (१६०६, १०, ११), १६. भगवद्गीता भाष्य (१६०६, ७, ८), २०. मंगल रामायण (१६०६, १०, ११) २१. रघुवर शलाका (१६२०, २१, २२), २२. रसकल्लोल (१६०६, १०, ११), २३. रसभूषण, २४. रामचरित मानस (१६०६, ७, ८), २५. राममुक्तावली या राममंत्र मुक्तावली (१६१७, १८, १६), २६. रामशलाका (१६०३), २७. रामाज्ञा (१६००), २८. विनय पत्रिका, २६. वैराग्य संदीपिनी (१६०६, ७, ८), ३०. बृहस्पतिकांड (१६०३), ३१. श्रीकृष्ण गीतावली (१६०४), ३२. श्री पार्वतीमंगल (१६०३), ३३. श्रीरामलला नहछू (१६०३), ३४. सगुनाली, ३५. सूरजपुराण, ३६. ज्ञान कौ प्रकरण (१६०६, १०, ११), ३७. ज्ञानदीपिका (१६०६, ७, ८)।

परन्तु यह सभी ग्रंथ न प्रकाशित हुए, न उन पर वैज्ञानिक अन्वेषण ही हुआ है। यह स्पष्ट है कि तुलसी की लोकप्रियता के कारण उनके नाम पर वहुत-सी रचनाएँ चल पड़ी होंगी। कवि के जीवनकाल के दो पीढ़ी वाद उनके सर्वप्रिय ग्रंथ रामचरितमानस में जो प्रक्षिप्त अंशों के समावेश करने की बाढ़ आ गई थी, उससे इस ग्रंथ-बाहुल्य का भी समाधान हो जाता है। इनमें से कई ग्रंथों में केवल ज्ञान-वैराग्य का प्रतिपादन है जैसे ज्ञान दीपिका, वैराग्य संदीपिनी, अंकावली। तुलसी के भक्ति पर विशेप आग्रह की वात देखते हुए इन ग्रंथों को तुलसी की रचना कह कर भी कुछ संकोच होता है।

अधिकांश विद्वान् इनमें से बारह ग्रन्थों को निर्विवाद तुलसी की रचना मानते हैं। ये ग्रंथ हैं मानस, रामलला नहछू, वैराग्य संदीपिनी, वरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, दोहावली, कवितावली, रामाज्ञा प्रश्न, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका। नागरी-प्रचारिणी-सभा ने इन्हीं ग्रंथों को प्रमाणिक मानकर 'तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, २ के रूप में इनका संपादन किया है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने वैराग्य संदीपिनी और सतसई के कुछ अंशों के संवंध में (उन दोहों के संबंध में जो तुलसी की अन्य रचनाओं में नहीं मिलते) सन्देह प्रकट किया, परन्तु अपने अध्ययन के लिए उन्होंने इन ग्रंथों को भी लिया है।

इन अपेक्षाकृत प्रमाणिक ग्रंथों के संबंध में भी कई समस्याएँ हैं :—(१) रचनाकाल की समस्या, (२) क्षेपक की समस्या, (३) पाठ-भेद की समस्या। नीचे हम इन पर विचार करेंगे।

रचनाकाल—ग्रंथों के निर्माण और उनके रचनाकाल के संबंध में अंतर्साक्ष्य से बहुत कम प्रकाश मिलता है। रामचरितमानस, रामाज्ञा-

प्रश्न, पार्वती मंगल, सतसई और विनय पत्रिका के नाम उनके ग्रंथों में मिलते हैं। रामचरितमानस, पार्वती मंगल और सतसई का रचना-काल भी ग्रंथों में ही उपलब्ध है। यह रचना-तिथियाँ कालक्रम से इस प्रकार हैं :—

१६२१ रामाज्ञा प्रश्न
१६३१ रामचरितमानस
१६४१ सतसई
१६४३ पार्वती मंगल

उपर्युक्त पहली तीन तिथियों में दस-दस वर्ष का अन्तर है। इस अंतर में कवि क्या करता रहा? स्पष्ट है कि उपर्युक्त ग्रंथों में से कुछ इस काल में लिखे गये होंगे। कवि की ओर से इनकी रचना-तिथि क्यों नहीं लिखी गई, यह नहीं कहा जा सकता। इन ग्रंथों में से दो रामलला नहछू और जानकी मंगल प्रबन्ध काव्य हैं, अन्य ग्रंथ स्फुट काव्य के संग्रह-मात्र जान पड़ते हैं। यदि कवि स्फुट ग्रन्थों में उनकी रचना के काल-विस्तार के कारण रचनातिथि नहीं दे सकता था तो उसने इन दो प्रबंध ग्रंथों में इस प्रकार की तिथियाँ क्यों नहीं दीं। इन रचनाओं की रचनातिथि के संबंध में विद्वानों का मतभेद है। डा० रामकुमार वर्मा दोनों रचनाओं की रचनातिथि १६३६ संवत् के लगभग रखते हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त उन्हें क्रमशः १६११ और १६२७ संवतों की रचना बताते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रकार की परिस्थिति में जितना चाहे मतभेद हो सकता है। अन्य संग्रह-ग्रंथों के संबंध में तो यह मतभेद और भी दूर तक चला जाता है। इनमें कुछ ग्रंथों में, जैसे कवितावली, ऐसी रचनाएँ संग्रहीत हैं जो कवि के किशोर जीवन से लेकर उसके अंतकाल तक चली गई हैं। विभिन्न भागों की रचना शैली इस बात का प्रमाण है। ऐसी अवस्था में इन ग्रंथों के विभिन्न अंशों को रचनाकाल भ्रम

के अनुसार अलग-अलग रखना होगा, परन्तु इसे जानने के लिए हमें कोई भी सहारा नहीं है। अतएव, हम अधिक-से अधिक इन ग्रंथों के संबंध में उनके रचनाकाल के विस्तार का ही निर्णय कर सकते हैं या यही निश्चय रूप से बता सकते हैं कि किस ग्रन्थ की सामग्री किस संवत् से लेकर किस संवत् तक की है। यहाँ भी हमें विद्वानों में मतभेद मिलता है। इसे हम तालिका देकर भी प्रकट कर सकते हैं :—

	डा० रामकुमार वर्मा	रामनरेश त्रिपाठी	डा० माताप्रसाद गुप्त
रामगीतावली	सं० १६२८	सं० १६१५-१६२०	सं० १६४३ के लग०
कृष्ण गीतावली	” ”	” १६२८-१६३०	” १६५८ ”
विनय पत्रिका	” १६३९(लग०)	१६४५-१६६८	” १६५३ ”
दोहावली	” १६४०	” १६१०-१६७१	” १६६१-८० ”
बाहुक	” १६६९	” १६१०-१६८०	” ” ” ”
वैराग्य संदीपिनी	” ”	” १६१५	” १६१४ ”
बरवै	” ”	” १६१०-१६४०	” १६६१-८० ”

इन दीर्घकालीन रचनाओं के संबन्ध में सविस्तृत खोज और कालक्रम-संबंधी आलोचना केवल डा० माताप्रसाद गुप्त ने की है और जब तक अधिक विस्तृत और व्यापक वैज्ञानिक खोज उपस्थित नहीं होती, तब तक उनके निर्णयों से सहमत होकर ही चलना पड़ेगा। डा० गुप्त की खोज का आधार अधिकतर तुलसी के दार्शनिक, मानसिक एवं रामकथा-संबंधी विचारों का विकास है। उन्होंने 'मानस' को कवि की रामसंबंधी धारणाओं की प्रौढ़तम अभिव्यक्ति मानकर आगे की भूमि पर चलना आरम्भ किया है। परन्तु जैसा तुलसी ने रामचरितमानस में लिखा है, यदि तुलसी की धारणा यह है कि—

हरि अनंत हरिकथा अनंता।
गावहिं भाँति अनेकन संता॥

तो यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की गवेषणा भ्रामक होगी। जो हो, अभी हम किन्हीं ऐसे निर्णयों पर नहीं पहुँच सकते जो सब प्रकार से पुष्ट और अकाट्य हों।

तुलसी के सबसे लोकप्रिय सर्वमान्य ग्रन्थ रामचरितमानस का रचनाकाल १६३१ संवत् निश्चित है, परन्तु न हम अभी यह जानते हैं कि यह बृहद् ग्रन्थ कितने समय में समाप्त हुआ, न हम यह कह सकते हैं कि इसके भिन्न-भिन्न भागों की रचना किस समय हुई। बाबा बेनीमाधवदास ने ग्रन्थ की समाप्ति-तिथि संवत् १६३३ लिखी है। यह हो सकता है कि यह तिथि ठीक हो क्योंकि तुलसी का ही उद्धरण देकर यह कहा जा सकता है कि ग्रन्थ के लिखने में अधिक समय न लगा होगा। बालकांड में भूमिका देते हुए वे कहते हैं—

भयउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥
चली सुभग कविता सरिता सी। राम विमल जस जल भरिता सी॥
(मानस० बाल०)

परन्तु फिर भी निश्चित तिथि देने के लिए हमारे पास कोई भी प्रमाण नहीं है। भिन्न-भिन्न भागों के रचनाक्रम को सुलझाने का पहला प्रयास भी डा० माताप्रसाद गुप्त ने किया है, परन्तु अभी बहुत कुछ भविष्य के गर्भ में छिपा है। रचनाक्रम को समझने के लिये 'तुलसीदास' पृ० २५४-२७० की सामग्री अत्यन्त उपादेय है।

क्षेपकों की समस्या—तुलसी के ग्रन्थों के संबंध में क्षेपकों की समस्या भी महत्त्वपूर्ण है। तुलसी के जीवनकाल में इस प्रकार के

क्षेपकों का निर्माण नहीं हुआ होगा, यह निश्चित है, परन्तु उनके निर्वाण के सत्तर वर्ष वाद ही हमें उनके सबसे लोकप्रिय ग्रंथ मानस की ऐसी प्रतियाँ मिलने लगती हैं जिनमें कितने ही नये प्रसंग क्षेपक रूप में जोड़ दिये गये हैं। यही नहीं वाल्मीकि के उत्तरकांड की लवकुश कथा को भी एक नये कांड के रूप में तुलसी के सिर मढ़ दिया गया है। मानस की ऐसी कोई भी प्रति प्रकाशित नहीं हुई है जिसके संबंध में हम नि:संकोच कह सकें कि इसमें क्षेपक नहीं है। तुलसी ने मानस के कथा-सूत्र में अनेक प्रासंगिक पौराणिक कथाओं का संकेत किया है, कथा की एकता वनाये रखने के लिए उन्होंने उन कथाओं को पाठक की जिज्ञासा पर छोड़ दिया है। परन्तु पौराणिक प्रवचनकार इस वात को समझ नहीं सके। इसलिए उन्होंने इन संकेतों को पूरा करने के लिए वाल्मीकि के आधार पर या पुराणों के आधार पर नवीन कथाओं का निर्माण किया। अयोध्याकांड के तापस प्रसंग की ही वात लीजिए। कुछ हस्तलिखित प्रतियों में यह प्रसंग नहीं मिलता। ऐसा क्यों है? जहाँ एक ओर परिस्थिति इतनी संदिग्ध है, वहाँ दूसरी ओर कुछ लोगों का मत है कि चित्रकूट-प्रसंग में इस तापस की ओट में तुलसीदास स्वयं राम के सम्मुख होने की अनुभूति प्राप्त कर रहे हैं।

प्रबंध-ग्रन्थों में क्षेपकों की समस्या चाहे कुछ दूर तक सुलझाई भी जा सके, संग्रह-ग्रन्थों में हमें और अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कौन पद, कौन कवित्त, कौन दोहा—सोरठा तुलसी का है, कौन वाद में उनके नाम पर संग्रह में जोड़ दिया गया है, यह कहना असंभव-सा है। इन ग्रन्थों का रचना-काल वड़ा विस्तृत है और यह भी संभव है कि स्वयं तुलसी ने ही भिन्न २ समयों पर अनेक नये पद, कवित्त, दोहे-सोरठे जोड़ दिये हों।

पाठ-भेद की समस्या—एक ही कवित्त, दोहे-चौपाई अथवा पद का भिन्न-भिन्न हस्तलिखित प्रतियों में भिन्न-भिन्न पाठ मिलता है। कहीं-कहीं इस प्रकार के पाठभेद से अर्थ-भेद भी हो जाता है। परन्तु जहाँ इस प्रकार का अर्थ-भेद नहीं होता, वहाँ पाठ-भेद की समस्या विशेषज्ञों की समस्या है, सर्वसाधारण से उनका कोई संबंध नहीं है। फिर भी हमारी चेष्टा यही होनी चाहिए कि हम कवि के अपने पाठ के अधिक-से-अधिक निकट पहुँच सकें। यह तो हो नहीं सकता कि कोई एक कवि किसी एक ग्रन्थ को अनेक प्रकार से लिखे, उसे स्वनिर्मित कुछ व्यापक नियमों का पालन करना आवश्यक होगा। अतः यह असंभव नहीं है कि हम अपने प्रयत्न में सफल हों।

३

रामकथा

तुलसी की रामकथा हमारी चिरपरिचित है और तुलसी के समय तक उसके आधार पर कितने ही ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी। अतः तुलसी उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं कर सकते थे। जो कथा जनता के इतने निकट हो गई थी जितना निकट उसका श्वास प्रश्वास है, उस कथा को पौराणिक या ऐतिहासिक कुछ भी कहा जाय, उसका व्यतिक्रम करना बड़े साहस का काम होता। जनता के रूढ़िबद्ध विश्वासों को शतशः बदला नहीं जा सकता। इसलिए तुलसी ने रामकथा में विशेष क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं किये। परन्तु यदि हम तुलसी की रामकथा की पूर्वरचित ग्रन्थों की रामकथा से तुलना करें तो हमें यह स्पष्ट हो जायगा कि तुलसी अनेक परिवर्तन करने से नहीं चूके हैं। इन परिवर्तनों का आधार मुख्यतः नाटक ग्रन्थ (प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक) हैं।

रामकथा का आदि ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण है। तुलसी ने ग्रन्थारम्भ में उन्हें श्रद्धा से याद किया है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने अपनी कथा को उसी पर आश्रित किया है। वाल्मीकि रामायण में हनुमान, लक्ष्मण और रामचन्द्र आदि के शौर्य का ही अधिक वर्णन है। वह निश्चय ही अनुलनीय वीरकाव्य है। परन्तु तुलसी अपने प्रमुख ग्रन्थ रामचरितमानस में वीरकाव्य की रचना नहीं कर रहे थे। वे मर्यादा पुरुषोत्तम (आदर्श पुरुष) की रूपरेखा बाँध रहे थे। साथ ही इष्टदेव का गुणगान करते थे।

अतः उसकी रामकथा तीन प्रवृत्तियों पर आश्रित थी। १—राम के शील, संयम, गांभीर्य आदि श्रेष्ठ मानव-गुणों का वर्णन। २—उनके सौन्दर्य, क्रीड़ा-केलि, हृदयहारी जीवन घटनाओं का वर्णन जिनका वीरकाव्य में कोई स्थान नहीं था। ३—उनके शौर्य का वर्णन। तुलसी के लिए तीसरी बात गौण थी पहली और दूसरी प्रधान। इसीलिए उन्होंने सुन्दरकांड और लंकाकांड को उतना विस्तार नहीं दिया है जितना वाल्मीकि ने। जहाँ वाल्मीकि बालक राम के ताड़का, मारीच और सुबाहू के युद्ध के विस्तृत वर्णन उपस्थित करते हैं वहाँ तुलसी इस प्रसंग को अत्यंत संक्षेप में रखते हैं :—

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥

× × ×

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई॥
होम करन लागे मुनि भारी। आपु रहे मख की रखवारी॥
सुनि मारीच निशाचर कोही। लेइ सहाय धावा मुनिद्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥
पावकसर सुबाहु मुनि मारा। अनुज निसाचर कटक सँघारा॥

उनके युद्ध-वर्णन भी इतने विशद, मौलिक, असमान और पुष्ट नहीं हैं जितने वाल्मीकि के इस प्रकार के वर्णन हैं। उन्होंने मानस के लंकाकांड के युद्ध-प्रसंगों का किस तरह संक्षेप किया है, यह हम आगे बतायेंगे। परन्तु इन सब प्रयत्नों से तुलसी का उद्देश्य स्थिर हो जाता है। उनके राम खलमर्दन, द्विजनिर्भयकारी रावणारि अवश्य थे, परन्तु अवतार के नाते, वीर पुरुष मात्र के नाते नहीं। उनके सारे युद्धों के पीछे परार्थ काम कर रहा था। वाल्मीकि में यह

बात नहीं है। वहाँ सीताहरण के बाद का युद्ध-प्रसंग वीरनायक की हुंकार है; उसकी चेतना का गर्जन है। तुलसी ने इस स्थल को एक विचित्र ढंग से निर्बल बना दिया है। उन्होंने सीता नहीं, सीता की छाया का अपहरण कराया है। राम के आदेश से ही यह चमत्कार होता है। यह चमत्कार आध्यात्म रामायण में भी नहीं है। इससे जहाँ एक ओर तुलसी की भक्ति-मर्यादा की रक्षा हो जाती है, वहाँ दूसरी ओर राक्षसवध के साथ राम का स्वार्थ भी कम लिपटता है, और राम केवल कोरे वीर नायक नहीं रह जाते।

वाल्मीकि के सारे पात्र उद्दंड हैं। वे तेजवान् हैं। परिस्थितियाँ उनमें विद्रोह जगा देती हैं। सीता और कौशल्या आत्महत्या करने की धमकी देती हैं। स्वयं राम भी आत्मसंयमी नहीं रह पाते। वीरता के साथ उद्दंडता अवांछनीय नहीं है, परन्तु तुलसी ने लक्ष्मण को छोड़कर शेष सारे पात्रों की उद्दंडता शांत कर दी है जिससे लक्ष्मण का चरित्र विशिष्ट रूप ग्रहण कर सका है। मंथरा पर प्रहार करनेवाले शत्रुघ्न को सामने लाते हुए तुलसी लक्ष्मण के वैशिष्ट्य को ही दृढ़ करते हैं—

लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥
हुमकि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भरि महि करत पुकारा॥

उनके राम तो शील सौजन्य के अवतार हैं। लक्ष्मण-परशुराम-संवाद में उनके शील और सौजन्य की अत्यन्त कठिन परीक्षा हुई है और वे उस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं। समुद्र के प्रति क्रोध करने से पहले वे उसके सँभलने की बड़ी प्रतीक्षा करते हैं। कथा-प्रसंग में स्थान-स्थान पर राम के शील सौजन्य के दर्शन होते हैं यह सौजन्य कई प्रकार प्रकट हुआ है—

१—गुरुजनों के सामने

२—समान वयवालों के सामने

३—सेवकों और निम्न-श्रेणी के व्यक्तियों के सामने
४—शत्रु के सामने
तुलसी राम के इस सौजन्य पर मुग्ध हैं वे कहते हैं—

सुनु सीतापति सील सुभाउ
मोद नयन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ,
सिसुपन ते पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम विधुवदन रिसौहैं सुपनेहुँ लख्यौ न काउ,
खेलत संग अनुज बालक नित जुगवत अनट अपाउ
जीति हारि चुचकारि हुलारत देत दिखावत दाउ।
सिला साप संताप विगत भइ परसत पावन पाउ,
दई सुगति सो न हेर हर्ष हिय चरन छुए पछिताउ॥

(विनय पत्रिका)

सारे अयोध्याकांड में राम के इस रूप के दर्शन बार-बार होते हैं—वनवास की बात सुनकर बनगमन तक और फिर चित्रकूट की सभा में। राम का यह रूप तुलसी की मौलिक कल्पना है। इस रूप में उन्होंने श्रेष्ठतम सामाजिक मनुष्य को अपने काव्य में प्रतिष्ठित किया है।

राम तुलसी के इष्टदेव हैं। अतः तुलसी उनके सौंदर्य, उनकी क्रीड़ा-केलि और उनकी हृदयहारी जीवन-घटनाओं का आविष्कार करते हैं। इन घटनाओं के आविष्कार करने में उन्होंने हिन्दी कृष्ण-काव्य, भागवत और प्रसन्नराघव से विशेप सहायता ली है। इस प्रकार के मौलिक स्थल हैं राम का बचपन (कृष्ण और भागवत), पुष्पवाटिका प्रसंग (प्रसन्नराघव); स्वयंवर प्रसंग (हनुमन्नाटक), लक्ष्मण परशुराम संवाद (वही), विवाह प्रसंग और वनपथ (मौलिक)। तुलसी ने राम के सौन्दर्य को कृष्ण के सौन्दर्य के ही

सम्मुख खड़ा किया है परन्तु कृष्णकाव्य में जिस प्रकार अनेक झाँकियों के दर्शन होते हैं, उस प्रकार की अनेकता लाने का भी प्रयत्न है। इष्टदेव के नाते राम के साथ कुछ अद्भुत घटनाएँ भी जोड़ दी गई है (देखिए, एक बार जननी अन्हवाये) जिनका आधार भागवत की कृष्णकथा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बालकांड की रामकथा को तुलसी ने वाल्मीकि से स्वतंत्र होकर भागवत के आधार पर खड़ा किया है और उसे कृष्णकथा के समकक्ष रखकर अत्यन्त हृदयग्राही और सौन्दर्यनिष्ठ कर दिया है। यदि हम ध्यान से अध्ययन करें तो हमें यह स्पष्ट हो जायगा कि तुलसी के बालकांड और अयोध्याकांड में विशेष सतर्कता, विशदता एवं मौलिकता का प्रदर्शन है और शेष कांडों की कथा में कोई मुख्य परिवर्तन न होने पर भी इन कांडों की वीथिका होने पर उनमें विशेषता आ गई है। इन कांडों में भी तुलसी ने पिछले कांडों की विशेषताओं की रक्षा की है एवं स्थल-स्थल पर इन विशेषताओं को पुष्ट किया है। यदि राम के अवतारी पुरुषवाले संदर्भ हटा भी दें तो भी वे अत्यंत सौंदर्यशील, अप्रतिम-शील-सौजन्य-युत, वीर नायक बने ही रहते हैं।

परंतु तुलसी राम के संबंध में निश्चित थे। वे अवश्य ही अवतारी पुरुष थे। यही नहीं, वे ब्रह्म का अवतार थे। अतएव उन्हें कथा में ऐसे प्रसंगों का भी समावेश करना था जो राम को इस रूप में प्रतिष्ठित कर सके। इसके लिए तुलसी को कई आयोजन करने पड़े। जैसे रामकथा की भूमिकाओं की मौलिक प्रतिष्ठा, आध्यात्म रामायण के अरण्य, किष्किंधा और लंकाकांडों की सामग्री का समावेश (स्तुतियाँ, गीताएँ, राम के लिए इन्द्र का मातलि को रथ के साथ भेजना जैसे प्रसंग) और रामजन्म की परिस्थिति (देखिए भागवत और आध्यात्म)। इस प्रकार राम के सौंदर्य, शील और शौर्य से

फिर हुई रामकथा को आध्यात्म रामायण के सूत्र में पिरोया गया है। इसीसे यह भ्रम होता है कि तुलसी का आधार आध्यात्म रामायण है। वास्तव में ऐसी बात नहीं है। तुलसी ने रामकथा की नवीन ढंग की उद्भावना की; और आध्यात्म रामायण की विशेपताओं का उसमें समावेश कर दिया जिससे उसने आध्यात्म रामायण का रूप ग्रहण कर लिया है। तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि तुलसी के मानस की गीताएँ और स्तुतियाँ आदि ठीक उन्हीं स्थानों पर होती हुई जिन स्थानों पर आध्यात्म में हैं विपय, विस्तार और लक्ष्य में भिन्न हैं। आध्यात्म में राम विष्णु के अतवार हैं, मानस में ब्रह्म के अवतार हैं। इसलिए तुलसी को कई ऐसे नवीन प्रयत्न करने पड़े हैं जो आध्यात्मकार के लिए अनावश्यक थे। (जैसे वालकांड २१७ वैठे सुर सव करहिं विचारा)। सच तो यह है कि तुलसी ने रामचरितमानस की रचना का आधार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रक्खा है :—(१) ब्रह्म निर्गुण और सगुण दोनों है और दोनों रूपों में अभिन्न है, (२) निर्गुण ब्रह्म ही विशेप कारणों से सगुण रूप धारण करता है, (३) राम सगुण ब्रह्म हैं, (४) सगुण ब्रह्म राम निर्गुण ब्रह्म की भाँति ही अगम्य और रहस्यमय हैं, (५) रामनाम निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म दोनों से बड़ा है। कलियुग में यही सुगम और सर्वोपयोगी है।

तुलसी की कथा की विशेपता यही है कि वह एक अत्यन्त गंभीर दार्शनिक प्रश्न के उत्तर में कही गई है और उस प्रश्न का समाधान उपस्थित करती है परन्तु साथ ही वह उच्चतम धार्मिक भावना को प्रकाशित करती हुई कथानायक राम को लोकनायक वीर पुरुप एवं इष्टदेव के रूप में भी हमारे सामने रखती है और उनके चरित्र के अत्यंत नवीन और हृदयग्राही स्थलों का उद्घाटन करती है। कथा का वीज अत्यंत सूक्ष्म होते हुए भी उसने अपने विस्तार

में दर्शन, धर्म, नीति और काव्य के श्रेष्ठतम स्थल उपस्थित किये हैं। जहाँ कहीं कवि ने आवश्यक समझा है, वह अपने इन स्थलों को पूर्व रचित ग्रंथों की सामग्री से पुष्ट करता है (देखिये रावण-अंगद संवाद और हनुमन्नाटक)।

तुलसी की रामकथा के संबंध में हमें एक बात और कहनी है। वह उसके आदि और अंत से संबंधित है। पूर्वकाव्यों की परंपरा से हटकर तुलसी ने रावण के अभ्युदय की कथा को रामजन्म की भूमिका में रख दिया है जिससे कथा का रूप सुष्ठु हो गया है। वाल्मीकि में हम रावण-वध के अंत में ही रावण के अत्याचारों की बात जान पाते हैं। तुलसी उनकी दृढ़ भित्ति देकर ही राम को उपस्थित करते हैं। सभव है कि इसमें भी उनका आधार भागवत की कृष्ण-कथा हो अथवा स्वयं उनके कलाज्ञान ने इस दिशा की ओर इंगित किया हो। जो हो, इस मौलिकता ने कथा को कलात्मक बना दिया है। तुलसी की कथा का अंत भी मौलिक है। वह कथा को खुला हुआ छोड़कर श्रेष्ठ कलाकार बन जाते हैं। उनकी धार्मिक भावना उन्हें एक विशेप दिशा में परिचालित कर रही है। (१) राम उनके इष्टदेव हैं। इनका निधन उन्हें अप्रिय विपय रहता (२) वे सीता के द्वितीय वनवास की कथा लिखकर राम को लांछित करना नहीं चाहते। इसी से वे राम और सीता का आदर्श कुटुम्ब दिखा कर परंपरा के विरुद्ध राजगृह में ही लवकुश का जन्म बता, राम को अयोध्या के बाहर एक आराम में छोड़ मानस की कथा का पटाक्षेप कर देते हैं।

परन्तु अभी तुलसी की रामकथा को हमें दो और दृष्टिकोणों से देखना है। उन दोनों का संबंध स्वयं कथा से नहीं है, परन्तु उस वीथिका से है जिसमें कथा रखी गई है। यह वीथिका कथा को नया अर्थ देती है। पहली वीथिका है रामभक्ति। सारी कथा बीज

रूप से रामभक्ति पर अंकित है और विस्तार में प्रत्येक पात्र रामभक्त है। राम सगुण ब्रह्म हैं परन्तु साथ ही उनका हमसे भक्ति का संबंध हो सकता है, यही कवि का ध्येय है। अपने इस उत्साह में उसने भक्ति को ज्ञान वैराग्य से उच्च प्रतिष्ठित किया है, भक्तों की महिमा गाई है और प्रत्येक पात्र को रामभक्त बना दिया है। एक अत्यंत उच्च कोटि की भक्ति सारे काव्य को ओत-प्रोत कर रही है और उसने रामकथा को भक्त की प्रेम पुकार बना दिया है। दूसरी वीथिका कागभुशुण्डि गरुड़-प्रसंग में दी गई है जिससे रामकथा को अपूर्व विस्तार मिल जाता है (उत्तर ११६-१२३)। वह केवल किसी एक युग के एक दाशरथि राम की कथा नहीं रह जाती। वह इतनी ही विशद, नानात्वपूर्ण और रहस्यमयी हो जाती है जितने स्वयं राम हैं।

तुलसी के उत्तरकांड (मानस) में विशेष रामकथा नहीं है। केवल १-१३ तक रामकथा है। शेष कांड रामकथा से परोक्ष रूप में ही संबंधित है। उसका लक्ष्य दार्शनिक और धार्मिक समस्याओं का निरूपण है। यद्यपि उसका रूप बहुत कुछ कथात्मक है।

तुलसी की मानसांतर्गत रामकथा के संबंध में हम ऊपर लिख चुके, परन्तु इस कथा की भूमिकायें भी महत्त्वपूर्ण हैं। वे भी कथात्मक हैं। ये भूमिकायें हैं (१) उमाचरित, (२) शंभुचरित, (३) नारद मोह की कथा, (४) स्वयंभू और सतरूपा की कथा, (५) जलंधर की कथा, (६) प्रतापभानु की कथा। पहली दो भूमिकाओं से रामकथा का केवल परोक्ष का संबंध है। तुलसी ने उन्हें विचित्ररूप से मुख्य कथा में गूँथ दिया है। इनका आधार पद्मपुराण, शिवपुराण और कुमारसंभव है। शेष कथाएँ रामावतार के कारण बताती हैं जैसे नारद का श्राप, स्वयंभू मनु और सतरूपा को वरदान, जलंधर की स्त्री का श्राप और रावण के जन्म

की भूमिका (प्रतापभानु की कथा)। परिशिष्ट में कागभुशुण्डि की कथा है जिसमें ज्ञान-विज्ञान प्रकरण को खोलने की चेष्टा की गई है और राम के ऐश्वर्य का चित्रण है।

परन्तु कथा को हम एक दूसरे दृष्टिकोण से भी देख सकते हैं। वह मुख्य कथा के साथ कुछ भागवतों की भी कथा है। ये भागवत हैं उमा, शंभु, नारद (बालकांड), भरत (अयोध्या का उत्तरार्द्ध), हनुमान (सुन्दर), कागभुशुण्डि (उत्तर)। इन सभी में रामभक्ति की पराकाष्ठा होना सिद्ध किया गया है। जो हो, रामचरितमानस लिखते समय तुलसी की दृष्टि इन भागवतों के चरित्र की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुई थी। उन्होंने इन्हें अत्यन्त आकर्षक रूप में विस्तारपूर्वक हमारे सामने उपस्थित किया है।

विनय पत्रिका के कुछ पदों में तुलसी ने रामकथा में सांगोपांग आध्यात्मिक अर्थ लगाने की चेष्टा की है—

मोह दश मौलि, तद्भ्रान्त अहंकार
पर कारिजित काम विश्रामहारी
लोभ अतिकाम, मत्सर महोदर दुष्ट,
क्रोध पापिष्ठ विबुधान्तकारी
द्वेष दुर्मुख दम्भ खर, अकम्पन कपट
दर्प मनुजाद, मद शूल पानी
अमित बल परम दुर्जय, निशाचर निकर
सहित षड्वर्ग गो जातुधानी
जीव भवदंघ्रि-सेवक विभीषण वसत
मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिन्ता
नियम यम सकल सुरलोक लोकेश
लंकेश-वस नाथ अत्यंत भीता (पद ५८)

———

४

राम ✓

तुलसी की राम की कल्पना अत्यंत महान् है। वह मानव भी हैं और मानवेतर भी हैं। इसी से उनके कुछ चरित प्रगट, कुछ गुप्त कहे गये हैं—

सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

ये गुप्त चरित इस प्रकार के हैं—

१—छन महँ सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना॥
२—गुरुहिं प्रणाम मनहिं मन कीन्हा।
३—सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दिये
४—कागभुशुण्डि की कथा (उत्तरकांड)
५—छाया सीता की प्रतिष्ठा (अरण्यकांड)

इस प्रकार गुप्त और प्रगट चरित्रों को लिये तुलसी की रामकथा दो धरातलों पर चलती है। प्रगट चरित्र को लेते हुए राम पूर्ण रूप से मानव हैं, परन्तु गुप्त चरित उन्हें क्षण भर में मानवेतर बना देता है। राम के प्रगट चरित में जो दोष दिखलाई पड़ते हैं, तुलसी राम की अलौकिकता दिखाकर उनका परिहार कर देते हैं। इस अलौकिकता की बात वे पग-पग पर कहते हैं—

अति विचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद विमोह बस, हृदय धरहिं कछु आन॥

उमा रामगुन गूढ़, पंडित भ्रमि पावहिं विरति।
पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि विमुख न धरम रति ॥

यहाँ हमें मानवेतर राम पर ही विचार करना है।

तुलसी के सारे रामचरितमानस की कथा में और अवांतर में भी रामतत्त्व और सीतातत्त्व की विशद व्याख्या की है। मानस का कोई भी पाठक उससे अपरिचित नहीं रह सकता। तुलसी के राम विष्णु के अवतार नहीं (जैसा वाल्मीकि और आध्यात्म में है)। वे परब्रह्म हैं जिन्होंने निज स्वरूप में दाशरथि राम होकर अवतार लिया है। इस प्रकार तुलसी जिसे रामनाम से संबंधित करते हैं वह दो तत्त्व हैं जो परिस्थिति-मात्र से भिन्न होते हुए भी मूल में एक हैं। तुलसी की विशेषता यही है कि उन्होंने राम को विष्णु से ऊपर उठाकर चिन्मय ब्रह्म बना दिया। ऐसा उन्होंने किस प्रकार किया, यह हम नीचे बतलाते हैं—

[१] मानसारंभ में राम की वन्दना करते हुए तुलसीदास कहते हैं—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः
यत्पादप्लव मेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेष कारण परं रामाख्यमीशं हरिम्

उसी प्रकार सीता को भी वे "प्रकृति" की परिभाषा में याद करते हैं—

उद्भवस्थिति संहारकारिणीं क्लेश हारिणीम् ।
सर्व श्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥

[२] अनेक अवसरों पर रामतत्त्व का वर्णन ब्रह्मतत्त्व के रूप में करते हैं जैसे—

सारद सेष महेश विधि आगम निगम पुरान ।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान ॥

× × ×

एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द परधामा ॥
व्यापक विश्वरूप भगवाना । तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ॥

[३] रामकथा का बीज ही रामतत्त्व की व्याख्या है—उसका उद्देश्य है परब्रह्म राम और दाशरथि राम में संबंध जोड़ना । तुलसी के सभी श्रोताओं को दाशरथि राम के विषय में संदेह है । याज्ञवाल्क्य पूछते हैं—

राम कवन प्रभु पूछउँ तोही । कहिअ बुझाय कृपानिधि मोही ॥
एक राम अवधेश कुमारा । तिन्ह कर चरित विदित संसारा ॥
नारि विरह दुख लहेउ अपारा । भयउ रोषु रन रावण मारा ॥

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि ।
सत्यधाम सर्वज्ञ तुम्ह कहहु विवेक विचारि ॥

[बाल० ४६]

इसी प्रकार उमा सीता विरहाकुल राम को देखकर उनके ब्रह्म होने में संदेह प्रगट करती हैं—

शंकर जगतवंद्य जगदीशा । सुर नर मुनि सब नावत सीसा ॥
तिन्ह नृप सुतहिं कीन्ह परनामा । कहि सच्चिदानन्द परधामा ॥
भये मगन छवि तासु बिलोकी । अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी ॥

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज सकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद ॥५०॥

विष्णु जो सुरहित नर तनु धारी । सोउ सर्वज्ञ यथा त्रिपुरारी ।
खोजइ सो कि अग्य इव नारी । ज्ञान धाम श्रीपति असुरारी ॥

[बालकांड ५१]

इसके उत्तर में शिव कहते हैं—

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत विमल मन जेहि ध्यावहीं ।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ॥
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाम पति मायाधनी ।
अवतरेउ अपने भगत हित निज तंत्र नित रघुकुल मनी ॥

इसी प्रकार पार्वती के प्रश्नों और शंकर के उत्तर में [जो सारे मानस में व्याप्त है] रामतत्त्व की ही रूपरेखा बाँधी गई है । पार्वती का प्रश्न है—

प्रभु जे मुनि परमारथ बादी । कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी ॥
सेस शारदा बेद पुराना । सकल करहिं रघुपति गुन गाना ॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती । सादर जपहु अनंग अराती ॥
राम सो अवध नृपति सुत सोई । की अज अगुन अलख गति कोई ॥

जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि विरह मति मोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमत बुद्धि अति मोरि ॥१०८॥

जौं अनीह व्यापक बिभु कोऊ । कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ॥

इसके उत्तर में भगवान् शंकर कहते हैं—

तुम्ह जो कहा राम कोउ आना । जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ॥

कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिशाच।
पाखंडी हरिपद विमुख जानहिं झूठ न साच॥

अग्य अकोविद अंध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी॥
लंपटी कपटी कुटिल विसेखी। सपनेहुँ संत सभा नहिं देखी॥
कहहिं ते वेद असंमत बानी। जिन्ह के सूझ लाभु नहिं हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥
जिनके अगुन न सगुन विवेका। जलपहिं कल्पित वचन अनेका॥
हरिपद वस जे जगत भ्रमाहीं। तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं॥
बातुल भूत बिवस मतवारे। ते नहिं बोलहिं वचन विचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं आना॥

[बालकांड ११५]

उत्तरकांड में गरुड़ उनका संदेह और कागभुशुण्डि का उत्तर भी इसी प्रकार की सामग्री को उपस्थित करता है—

व्यापक ब्रह्म विरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा॥
सो अवतार सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं।

भवबंधन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम।
खर्व निशाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥

[उत्तरकांड]

तुलसी से कुछ पहले कबीर दाशरथि राम का खंडन कर चुके थे। उन्होंने कहा था—

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
रामनाम का मरम है आना॥

मानस के श्रोताओं की शंकायें इसी श्रेणी की हैं। तुलसी ने सारे रामचरितमानस में इन्हीं का समाधान किया है और कबीर के निर्गुण अनवतारी ब्रह्म राम के स्थान पर, सगुण दाशरथि ब्रह्मपर राम की प्रतिष्ठा की है।

[४] तुलसी ने सब अवतारों को ही राम का अवतार कहा है।

[५] नारदमोह आदि प्रसंगों में जब-जब ब्रह्म या विष्णु साकार रूप में आते हैं, तब तक उनका स्वरूप दाशरथि राम की तरह है।

[६] बालकांड में पृथ्वी और देवताओं के साथ ब्रह्मा क्षीर-सिंधु के तट पर जाते हैं, परन्तु शिव वहाँ राम की सर्वव्यापकता की घोषणा करते हैं—

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिय पुकारा॥
पुर बैकुण्ठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥
जाके हृदय भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती॥
तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाय वचन एक कहेऊँ॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देश काल दिशि विदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

[बाल० १८५]

[७] स्तुतियाँ और स्तोत्रों में भी राम के हृदय रूप की ही स्तुति की गई है। सच तो यह है कि रामचरितमानस की स्तुतियों में आध्यात्म रामायण की स्तुतियों की तरह आध्यात्मतत्त्व की विशद

व्याख्या नहीं है। वे रामतत्त्व को प्रकाशित करती हैं और रामभक्ति की घोषणा करती हैं—यहीं वे उपादेय हैं।

[८] रामगीताओं में स्वयं भगवान राम अपने को ब्रह्म घोषित करते हैं और अपनी भक्ति का आदेश करते हैं।

[९] रामावतार में राम की अद्भुत लीलाएँ जैसे विराट दर्शन और सतीमोह इसी रहस्य को स्पष्ट करते हैं।

[१०] मानस के सभी पात्र राम को ब्रह्मपर जानते-मानते हैं।

यही परब्रह्मराम कई कारणों से देह रूप में अवतार लेते हैं। उनके अवतारों के रूप कई तरह के हैं—पर और स्व। दाशरथि राम स्व-रूप हैं। परंतु यहाँ हमें यह ध्यान देना चाहिए कि तुलसी ने राम को विष्णु का रूप दे दिया है। (देखिये नारद मोह, रामजन्म)। हो सकता है यह बात प्रमादवश हुई हो। तुलसी ने आध्यात्म रामायण को अपना आधार माना है जिसमें विष्णु के अवतार राम के स्वरूप का विशद वर्णन है। तुलसी ने इसे ही मानस में स्थान दिया है यद्यपि वहाँ राम विष्णु के अवतार नहीं, ब्रह्म के अवतार हैं। जो हो, तुलसी के परब्रह्म अवतार राम का स्वरूप ठीक वैसा है जैसा आध्यात्मकार के विष्णु के अवतार राम का। वास्तव में यह स्वरूप वही है जो सगुण ब्रह्म का है। यह सगुण ब्रह्म निर्गुण ब्रह्म की भाँति ही रहस्यमय और अगम्य एवं अचिंत्य है। साधारण ब्रह्म निर्गुण, व्यापक, अगम और अगोचर है, परन्तु भक्त के प्रेमवश वह सगुण ब्रह्म हो जाता है। इस समय उसका वही स्वरूप है जो राम का स्वरूप है। निर्गुण ब्रह्म इस रामरूप के सिवा अन्य रूपों में भी अवतरित हो सकता है, परन्तु सगुण ब्रह्म केवल रामरूप में ही अवतार लेता है। इस प्रकार तुलसी की रामविषयक कल्पना को यों लिख सकते हैं—

[१] निर्गुण ब्रह्म [राम] जो साधारणतः अज, अगम, अगोचर सर्वव्यापक हैं; स्वयम् अकर्ता हैं; उनकी प्रकृति काम करती है। परन्तु भक्त के वश में हो अथवा अन्य कारणों से यह निर्गुण राम सगुण राम का रूप ग्रहण कर लेते है अथवा २४ अवतारों में से कोई अवतार ग्रहण कर लेते हैं।

[२] सगुण राम का रूप ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार दाशरथि राम का। वह अनादि, अनंत, सर्वपर हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश उसकी पूजा करते हैं। वह काल और देश के परे हैं (देखिये कागभुशुण्डि प्रसंग)। इस रूप में प्रकृति या माया के स्थान पर सीता हैं। यह सगुण राम साकेत धाम में निवास करते हैं।

[३] यही सगुण ब्रह्म दाशरथि राम के रूप में अनेक देशों और अनेक कालों में अवतार लेता है और वह लीला करता है जो रामकथा के नाम से प्रचलित है। सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म में प्रकृत्यः कोई अंतर नहीं है—

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमवस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल विलग नहिं जैसे।

[बाल० ११६]

अतः दाशरथि राम को तुलसी ब्रह्म ही मानते हैं। इस तरह निर्गुण ब्रह्म राम, सगुण ब्रह्म राम और दाशरथि राम वस्तुतः एक हैं। ज्ञानी का लक्ष्य निर्गुण ब्रह्म राम है, भक्त सगुण ब्रह्म राम के नैकट्य का आनन्द प्राप्त करना परम तत्त्व समझता है और दाशरथि राम के रूप में उनके रूप, गुण और ऐश्वर्य का ध्यान करता है। तीनों में नाम की समानता है और सगुण राम और दाशरथि राम में नाम

और रूप की। लीलानन्द प्राप्त करने और गुणगान के लिए दाशरथि राम ही मात्र उपयोगी हैं।

इस प्रकार तुलसी ने राम को दशरथ के पुत्र राम से उठा कर सर्वोपर चिन्मय ब्रह्म बना दिया है। इसलिए जहाँ राम में सर्वश्रेष्ठ मानव गुण हैं, वहाँ ऐसे दैवीगुण भी हैं जो भक्त की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। ये गुण हैं (१) भक्तवत्सलता, (२) शरणागतवत्सलता, (३) दयालुता और (४) अमित ऐश्वर्य। इनके अतिरिक्त भक्त की भावना के विकास की दृष्टि से भगवान् का अलौकिक शील और उनका अलौकिक सौन्दर्य भी महत्त्वपूर्ण है। तुलसी ने रामचरितमानस में इन समस्त गुणों को स्वतंत्र-रूप से या कथारूप में पिरो कर विशद रूप से हमारे सामने उपस्थित किया है। उनका मानस राम के गुणगान (कथा) और ध्यान का भण्डार है।

परन्तु तुलसी राम नाम को स्वयं राम से भी अधिक महत्त्व देते हैं। मध्ययुग में नामभक्ति का जितना महत्त्व था, उतना पहले कभी नहीं हुआ। इस रामनाम की महत्ता की भूमिका ने तुलसी के राम को और भी महान् बना दिया है।

रामतत्त्व ही नहीं, सीता-तत्त्व की भी मानस में विशद व्याख्या है। स्वायम्भुव मनु की तपस्या से प्रसन्न होकर जब परात्पर ब्रह्म (राम) अवतीर्ण होते हैं तो—

वाम भाग शोभति अनुकूला। आदि शक्ति सब विधि जगमूला॥
जासु अंश उपजहिं गुन खानी। अगनित उमा, रमा, ब्रह्मानी॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम वाम दिशि सीता सोई॥

इसी तरह सतीमोह के प्रसंग में जिस प्रकार अनेक शिव, विष्णु और ब्रह्मा होते हुए भी राम एक ही दिखलाई पड़ते हैं उसी प्रकार

अनेक सती, विधात्री, इंदिरा के होते हुए सीता एक ही हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार राम परिवर्तनहीन एकमात्र सत्ता है, उसी प्रकार सीता उनकी चिन्मय शक्ति हैं। राम और सीता की अभिन्नता को तुलसी ने यह कहकर स्पष्ट किया है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।

महर्षि बाल्मीकि राम की प्रार्थना करते हुए सीता के विषय में कहते हैं—

श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाय कृपानिधानकी॥

इससे स्पष्ट है कि सीता राम की पराशक्ति है जिन्हें माया भी कहा गया है। इसके प्रमाण-स्वरूप हम स्वयं भगवान् के शब्दों को उद्धृत कर सकते हैं। ब्रह्मा और देवताओं के साथ जब पृथ्वी ब्रह्म की प्रार्थना करती है तो आकाशवाणी होती है—परमशक्ति समेत अवतरेउँ (बाल० १८७)। और रामकथा का अंत करते हुए स्वयं तुलसी यह बात कहते हैं—

उमा-रमा ब्रह्मानि-वंदिता। जगदम्बा, संततम वंदिता॥
जासु कृपा कटाच्छ सुर चाहत चितवन सोइ।
रामपदारबिंद-रत करति स्वभावहि खोइ॥

(उत्तर कांड)

विनय पत्रिका में भी तुलसीदास ने सीता का इसी रूप में परिचय दिया है (देखिये विनय०)

राम के ब्रह्मपर का निरूपण हम कर चुके। यहाँ हमें राम के मानवचरित पर प्रकाश डालना है। परन्तु तुलसी ने राम को अलौकिक और अत्यंत समर्थवान मनुष्य के रूप में चित्रित किया है। इससे उनके चरित्र चित्रण के दो धरातल हो जाते हैं—

१. अति मानव राम का चरित्र, २. मानव राम का चरित्र। अति मानव राम के चरित्र में अतिप्राकृत बातों का भी समावेश है। उनकी सामर्थ्य हमें आश्चर्य-चकित कर देती है—

मास दिवस का दिवस भा, मरम न जानेहु कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निशा कवन विधि होइ॥

(बाल०)

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े॥

(वही)

लछमन हू यह मरम न जाना। जो कुछ चरित रचे भगवाना॥
कर परसा सुग्रीव शरीरा। तनु भा कुलिस मिटी सब पीरा॥

(किष्किंधा०)

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी॥
अचल करउँ तन राखउँ प्राना

(कि०)

छन महँ सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना॥

(उत्तर०)

इस प्रकार की अनेक अलौकिक कथाएँ राम के चरित्र के साथ गुथी हुई हैं। इस अलौकिकता का सम्बन्ध राम के अवतारी रूप से है। तुलसी कहते हैं—

जो चेतन कर जड़ करै, जड़हि करइ चैतन्य।
उस समरथ रघुनायकहिं, भजहि जीव ते धन्य॥

(उत्तर०)

इन अलौकिक बातों के अतिरिक्त राम के साधारण मानवचरित में भी कुछ ऐसी बातें आती हैं जिन पर आश्चर्य हो सकता है। तुलसी ने उन बातों को राम और अलौकिकता और उच्च धर्मभूमि पर स्थापित कर उनके दोनों का परिहार किया है। वे कहते हैं—

अति विचित्र रघुपति चरित, जानहि परम सुजान।
जे मतिमंद विमोह वश, हृदय धरहि कछु आन॥
उमा रामगुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं विरति
पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि विमुखन धरम रति

राम के मानवस्वभाव का तुलसी ने विशद चित्रण (बाल०) किया है। परन्तु कुछ विशेष चौपाइयों में उनके स्वभाव का स्पष्ट उल्लेख है—

राम कहा सब कौसिक पाहीं। सरल स्वभाव छुआ छल नाहीं॥
(बालकांड)

पुरजन परिजन सुस पितुमाता। राम सुभाव सबहिं सुखदाता॥
(अयो०)

बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलन मिलन विनय मन हरहीं॥
(अयो०)

सुन सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥
(अयो०)

राम के वंशगत स्वभावों का भी तुलसी ने उल्लेख किया है—

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहिं पर वचन न जाई॥
रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरहिं न काऊँ॥
मोहि अतिशय प्रतीत मनकेरी। जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी॥
कही जनक जस अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुल मनि जानी॥

देखि कुठार बान धनुधारी । भई लरिकई रिस रनियधारी ॥
नाम स्वभाव स्वभाव न चीन्हा । वंस सुभाव उतर तेहु दीन्हा ॥
जो तुम अवतेउ मुनि की नाईं । पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं ॥
कहौं सुभाव न कुलहिं प्रसंसी । कालहु डरहिं न रन रघुवंसी ॥

तुलसी ने अनेक स्थलों पर राम के सम्पूर्ण रूप, गुण और चरित को समष्टि रूप से देखा है—

जानकी जीवन, जग जीवन, जगत हित,
रघुनाथ राजिव लोचन राम ।
सरद विधुवदन, सुखसील, श्रीसदन,
सहज सुन्दर तनु, सोभा अगनित काम ॥
जग-सुपिता, सुमातु, सुगुरु, सुहित,
सुमति, सबको दाहिनो, दीनबंधु, काहु न काम ।
आरति हरन, सरनद, अतुलित दानि,
प्रनतपालु, कृपालु, पतित पावन नाम ॥
सकल विस्व बंदित, सकल सुरसेवित,
अगम निगम कहै रावरेई गुन ग्राम ।
इहै जानि तुलसी तिहारो जन भयो
न्यारो कै डाकिबो जहाँ गने गरीब गुलाम ॥

(विनयपत्रिका)

५

तुलसी की भक्ति

जैसा हम कह चुके हैं, तुलसी मूलतः भक्त हैं, प्रकृत्यः कवि हैं, अतः उनके काव्य में भक्ति और कविता का ऐसा सम्मिश्रण है कि यह कहना कठिन है कि वह भक्तिकाव्य है या केवल काव्य। परन्तु हमने यह सिद्ध कर दिया है कि तुलसी के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ मानस का प्रतिपाद्य विषय भक्ति ही है। यहाँ हम स्वतंत्र रूप से तुलसी की भक्तिभावना पर विचार करेंगे।

भक्तिभावना के लिये जिस व्यक्तिगत ईश्वर की आवश्यकता थी, तुलसी ने उसे दाशरथि राम में पा लिया था। सूरदास की तरह "अविगत गति कछु कहत न आवै" सिद्धान्त के ही वे भी पोषक थे। उनके राम भी ब्रह्म ही थे—

व्यापक व्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघ सक्ति भगवंता॥
अगुन अरूप गिरा गोतीता। समदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मय निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥
प्रकृतिपार प्रभु सब उरवासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनासी॥
इहाँ मोह कर कारण नाहीं। रवि सम्मुख तम कबहुँ कि जाहीं॥

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥

(उत्तर० ७२ क)

परन्तु तुलसी ने अदम्य उत्साह से राम को यह स्थान दिला दिया। सारा मानस तुलसी के इस प्रयत्न का साक्षी है। इन्हीं दाशरथि राम से तुलसी ने अपना सम्बन्ध जोड़ा। विनय पत्रिका में वे कहते हैं—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो छाँड़िये कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी॥
बलि गुरु तज्यो, कन्त ब्रज बनितनि, भो सब मंगलकारी॥
नाते नेह राम के मनिअत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सों सब भाँति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो॥
जासो होय सनेह राम पद, ऐसे मतो हमारो॥

अनेक स्थान तुलसी ने अपना यही मत दुहराया है। कवितावली में वे कहते हैं—

राम हैं मातु-पिता गुरु बंधु औ सभी सखा सुत स्वामि सनेही।
राम की सौंह, भरोसे है राम को, राम रँग्यो रुचि राच्यो न केही॥
जीयत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहिं की गति जेही!
सोई जिये जग में तुलसी न तु डोलत और मुये धरि देही॥
सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुत सो हित मेरे।
सोई सगो, सो सखा, सोई सेवक, सो गुरु, सो सुर साहिब चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्रान समान, कहाँ लो बनाइ कहौ बहु तेरो।
जो तजि देह को, गेह को नेह सनेह सों राम को होइ सवेरो॥

मानस में तो उन्होंने भूमिका में ही कह दिया है—

सिया राम मय सब जग जानी
करौं प्रणाम जोरि जुग पानी

इसी भावना से प्रभावित होकर वे संत-असंत दोनों की बराबर अभ्यर्थना करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। इसी भावना को लेकर वे एकदम आत्मसमर्पण कर देने को तैयार हैं—

जो पै दूसरो कोउ होइ।
तौ हौं बारहिं बार प्रभु कत दुख सुनावैं रोइ।
काहि ममता दीन पर जो पतित पावन नाम॥
पापमूल अजामिलिहि केहि दियो अपनो धाम।
रहे संभु-बिरंचि सुरपति लोकपाल अनेक॥
सोक-सरि बूड़त करीसहि दई काहु न टेक।
विपुल भूपति सदसि महँ नर गिरि कह्यो "प्रभुपांहि"
सकल समरथ रहे काहु न वसन दीन्हों ताहि।
एक मुख क्यों कहौं करुनासिन्धु के गुनगाथ?
भगत हित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ?
आपसे कहुँ सौंपिये मोहिं जो पै अतिहि घिनात।
दास तुलसी और विधि क्यौं धर्‍यो परहरि जात॥

यह आत्म-समर्पण इसलिये है कि उन्हें भगवान् की उस अनुकंपा में विश्वास है जो भक्त के प्रयत्नों की उपेक्षा नहीं करती, न उसके दुर्गुणों या अवगुणों पर दृष्टि डालती है। इसी से तुलसी कहते हैं—

जौं पै हरिजन के औगुन गहते।
तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठि बैर बिसहते॥
जो जप जाग जोग व्रत वर्जित केवल प्रेम न चहते।
तौ कत सुर मुनिवर विहाय व्रज गोप गेह बसि रहते॥
तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं।
जौ जमराज काज सब परिहरि इहै ख्याल उर अनिहैं॥

चलिहैं छूट पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं।
देखि खलहु अधिकार प्रभू सों, मेरी भूरि भलाई मनिहैं॥
हँसि हरिहैं परतीति भगत की, भक्त सिरोमनि मनिहैं।
ज्यों-त्यों तुलसीदास कोसलपति अपनायेहि पर बनिहैं॥

राम तो स्वभाव से ही उदार और भक्तवत्सल हैं—

ऐसो को उदार जगमाहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी॥
जो संपति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो संपदा विभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तो भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो॥

परन्तु इस कृपा के प्राप्त होने पर भक्त तुलसीदास "मोक्ष" नहीं चाहते—भक्ति ही चाहते हैं—"दृढ़ भक्ति" का वरदान और भक्तिभावना का उत्तरोत्तर विकास। सारी विनयपत्रिका का संचालन इसी मूल भावना से हुआ है जहाँ तुलसी प्रत्येक देवी-देवता, राम के अनुचर भाइयों, सीता—सबसे रामभक्ति की याचना करते हैं और अत्यन्त मनोरंजक ढंग पर राम के दरबार में अपनी अर्जी (विनयपत्रिका) पेश करते हैं।

इस भक्ति का स्वरूप क्या है—प्रभु का निरंतर सान्निध्य और उनमें दैन्यभाव से निष्काम अनुरक्ति :—

थके नयन पद पानि सुमति बल संग सकल बिछुर्‌यो।
अब रघुनाथ सरन आयो जन भव भय विकल डर्‌यो॥

जेहि गुन तें बस होहु रीति करि सो मोहि सब बिसर्‍यो।
तुलसिदास निज भवन द्वार प्रभु दीजै रहन पर्‍यो॥

इस भक्तिदान की आवश्यकता है संसार के दुःख-सुखों के आघात से बचने के लिए जिनका कारण मायाजन्य भ्रम है। यदि इस भ्रम की हानि होकर हमें सच्ची वस्तु-स्थिति का ज्ञान हो जाये तो इन दुःख-सुख-जाल से मोक्ष मिल सकती है। तुलसी माया की भ्रमजाल के उत्पन्न करने की शक्ति को जानते हैं—

सून्य भीति पर चित्र रंग नहीं तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न मरै भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे॥

भ्रम कारण सही, परन्तु इससे दुखानुभव तो कुछ कम नहीं हो जाता "मानस" में माया के द्विविध रूपों का वर्णन करते हुए तुलसी यही बात दुहराते हैं—

एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा। जा बस जीव परा भव-कूपा॥

यह भ्रम जो अविद्या माया जन्य है, राम की कृपा से ही छूट सकता है जिनके बस में माया है—

जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।
सोइ प्रभु भ्रू विलास खगराया। नाच नटीइव सहित समाजा॥

और भी—

मायावस्य जीव अभिमानी। ईसवस्य माया गुनखानी॥

भगवान् की प्रेरणा से ही अविद्या का नाश होकर विद्या (सत्यज्ञान) की प्राप्ति संभव है—

हरि सेवकहिं न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या॥

यद्यपि भक्ति प्राप्त के लिये भक्त को विशेष आयोजन जुटाना नहीं पड़ता, हरिकृपा (पुष्टि) की ही आवश्यकता है, परन्तु अपनी ओर से प्रयत्न होना बुरा नहीं है—ये प्रयत्न क्या हों ? तुलसी कहते हैं कि ये प्रयत्न हैं—

(१) नामस्मरण—

ब्रह्म राम तें नाम बड़ बरदायक बरदानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जिय जानि॥

दूसरे स्थल पर तुलसी कहते हैं—

जोग न विराग जप जाप तप त्याग व्रत,
तीरथ न धर्म जानौं वेद विधि किमि है।
तुलसी सो पोच न भयो है नहिं ह्वै है कहूँ,
सोचैं सब याके अघ कैस प्रभु छमिहै॥
मेरे तो न डरु रघुवीर सुनौ साँची कहौं,
खल अनखैहै तुम्हैं, सज्जन न गमिहै।
भले सुकृती के संग मोहि तुला तौलिए तौ
नाम के प्रसाद-भार मेरी ओर नमिहै।

(२) रामकथा गान व श्रवण—

मध्ययुग में कथा-श्रवण और कीर्तन का विशेष महत्त्व था। कदाचित् इससे पहले कभी इन दो साधनों पर इतना बल नहीं दिया गया था, परन्तु यह तो कलियुग था, जब अन्य साधन दुष्प्राप्य थे। देश की अवस्था आर्थिक दृष्टि से इतनी हीन थी कि बड़े-बड़े यज्ञ-यागों का आयोजन हो ही नहीं सकता था, दूसरे शासकवर्ग अन्य मतावलंबी था, इस प्रकार के साधनों में उसकी दृष्टि विशेष रूप से आकर्षित होती। सूफी और संतों ने इन दो धर्मों (हिन्दू-मुसलमान) के भेद को मिटाने के लिए अंतस्साधना पर बल दिया, क्रिया कर्म-

योग आदि उनके लिए त्याज्य थे। परन्तु संतो की साधना से न साधारण जनभावना की तृप्ति हो सकती थी, न सामूहिक धर्मचेतना का विकास जो इस विपत्ति के युग में आवश्यक था। इसलिये भक्त साधकों ने जहाँ एक ओर कथाश्रवण, कीर्तन और नित्य एवं नैमित्तिक पूजन की सामूहिक विधियाँ निकालीं, वहाँ दूसरी ओर अंत-साधना का भावुक रूप (रूप सौन्दर्य का ध्यान) का भी विकास किया।

(३) सगुण रूप का ध्यान—

मानस में भगवान् श्री राम के रूप सौन्दर्य के अत्यन्त सुन्दर वर्णन हैं, विशेषत: बालकांड और अयोध्याकांड में। इन वर्णनों को हम रामध्यान के अंतर्गत रख सकते हैं। कई कांडों के मंगलाचरण में इस प्रकार का स्वरूप ध्यान है। विनय-पत्रिका के कई पदों में भी यही उद्देश्य तुलसी के सम्मुख है। तुलसी तो यहाँ तक कह देते हैं—

मन इतनोई या तनु को फल।
सब अंग सुभग बिंदु माधव छवि तजि सुभाउ अवलोक एक पल॥
तरुन अरुन अंभोज चरन मृदु नख दुति हृदय तिमिर हारी।
कुलिस केतु जव जलज रेखवर अंकुस मन गज बसकारी॥
कनक जटित मनि नूपुर मेखल कटितट रटति मधुर बानी।
त्रिवली उदर गँभीर नाभि सर, जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी॥
उर बनमाल पदिक अति सोभित बिप्र चरन चित कहँ करषै।
स्याम तामरस दाम बरन बपु पीत बसन सोभा बरसै॥
कर कंकन केयूर मनोहर देति मोद मुद्रिक न्यारी।
गदा, कंज दर चारु चक्रधर नागसुंड सम भुज चारी॥
कंबुग्रीव छबिसीव चिबुक द्विज अधर अरुन उन्नत नासा॥
नवराजीव नैन ससि आनन सेवक सुखद बिसद हासा॥

रुचिर कपोल स्रवन कुण्डल सिर मुकुट सुतिलक भाल भ्राजै।
लुलित भ्रकुटि सुन्दर चितवनि कच निरखि मधुप-अवली लाजै॥
रूप सील गुन खानि दच्छदिसि सिंधुसुता रत पदसेवा।
जाकी कृपा कटाच्छ चहत सिव विधि मुनि मनुज दनुज देवा॥
तुलसीदास भवत्रास मिटै तब जब मति येहि स्वरूप अटकै।
नाहित दीन मलीन हीन मुख कोटि जन्म भ्रमि भ्रमि भटकै॥

यह रूपपूजा पूजा का अंतिम चरण है। दूसरी शताब्दी के लगभग वैष्णव पुनरुत्थान के समय बौद्ध मंदिरों की होड़ में हिन्दू मंदिरों का आविर्भाव हुआ और 'त्रिमूर्ति' की स्थापना देश के कोने कोने में हो गई। अगली ५-६ शताब्दियों में मूर्तिपूजा का उत्तरोत्तर विकास हुआ और कला (स्थापत्य, मूर्ति, चित्र) को उपासना के इस वाह्य रूप को सँवारने का अच्छा मौक़ा मिला। फल हुआ भावुकता की वृद्धि। सुन्दर मूर्तियों ने इसमें सहायता दी। १०वीं शताब्दी के आस पास आध्यात्म और भागवत के समय भक्त की विह्वल रूपोपासना के दर्शन हमें पहली वार होते हैं। सूर और तुलसी के साहित्य में १६वीं शताब्दी में यह रूपोपासना चरमोत्कृष्ट रूप में मिलती है।

(४) गुरुभक्ति—उपासना, भक्ति और आध्यात्म-ज्ञान-लाभ के लिए गुरु के प्रति भक्तिभावना का उपदेश सदैव रहा है, विशेषकर अंत:साधना के लिए, वहाँ अनुभूति को समझने-समझाने का प्रश्न है। परन्तु मध्य युग में गुरु को नारायण मान लिया गया था। कुछ लोग इस प्रवृत्ति में इस्लामी प्रभाव ढूँढ़ते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। गुरुभक्ति के विकास का हमारा अपना इतिहास है। परिस्थितियों ने मध्ययुग में इसे चरमसीमा तक पहुँचा दिया। इस समय संस्कृति, भाषा और साहित्य सभी के नाते जनता धर्मग्रन्थों से दूर जा पड़ी

थी और इसलिए धर्म का परिचय गुरुमुख से ही होता था। ऐसी अवस्था में गुरुपूजा भी भगवत्प्राप्ति का एक साधन होना अनिवार्य था।

(५) सत्संग—सत्संग ईश्वरोन्मुख होने का प्रधान साधन है विशेषतः उन धर्मों में जो विधिविधानों को अधिक नहीं मानते और आध्यात्मिक साधना और वैयक्तिक भावविकास पर अधिक ध्यान देते हैं। इसीलिए भारतीय साहित्य में उपनिषदों में पहली बार सत्संग की महिमा मिलती है। निवृत्तिप्रधान धर्मों में सत्संग ही पहली सीढ़ी है। भक्तों, संतों और ज्ञानियों के साथ से ही माया-जाल से पीछा छूटता है—ईश्वरानुरक्ति तो बाद की बात है। सूफियों और संतों के काव्य में सत्संग की महिमा बढ़ी, ये दोनों ही अंतःसाधना पर बल देते थे। परन्तु भक्तों ने भी इसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। तुलसी ने मानस में स्थान स्थान पर सत्संगति की महिमा गाई है—

रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्हके सत्संगति अति प्यारी॥

(उत्तर० १२८)

× × संत मिलन सम सुख जग नाहीं॥
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥
संत सहहिं दुख परहित लागी। पर दुख हेत असंत अभागी॥
भूर्ज तरु सम संत कृपाला। परहित नित सह बिपति बिसाला॥

(वही. १२९)

संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥

(वही)

इस प्रकार के अवतरणों से मध्ययुग की धार्मिक मनोवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है जिसने मनुष्यता के श्रेष्ठतम आदर्शों को 'संत' में कल्पित किया था और जो सत्संगति को ईश-प्रेम की अनिवार्य भूमिका मानती थी।

विनय पत्रिका में तुलसी इन साधनों को एक ही पद में इस प्रकार रख देते हैं—

जो मन भजो चहै हरि सुरतरु।
तौ तजि विषय विकार सार भजु अजहूँ जो मैं कहौं सोई करु॥
सम संतोष विचार विमल अति सत्संगति चारिहु दृढ़ करि धरु।
काम क्रोध अरु लोभ-मोह-मद राग द्वेष निश्चय करि परिहरु॥
श्रवण कथा मुख नाम हृदय हरि शिर प्रणाम सेवा कर अनुसरु।
नैननि निरखि कृपा समुद्र हरि, अग-जग-रूप-भूप सीतावरु॥
यहै भक्ति वैराग्य ज्ञान यहै हरितोषन यह शुभ व्रत आचरु।
तुलसिदास शिवमत मारग यह चलत सदा सपनेहुँ नाहिन डरु॥

तुलसी की सारी साधना इसी पद के अनुसार अभिव्यक्त हुई है। इन सभी साधनाओं को रामचरित मानस में केन्द्रीभूत कर दिया गया है।

भगवान के प्रति तुलसी की भक्तिभावना केवल दो प्रकार से प्रकाशित हुई है—शांति और प्रीति। इसी से शांत और दास्य भावों का ही उनकी रचनाओं में प्रधानता मिलेगी। प्रेम (सख्य), अनुकंपा (वात्सल्य) और कान्ता या मधुर रति भाव (मधुर) केवल प्रसंगवश कृष्णगीता और रामगीता में पाये जाते हैं। तुलसी की भक्ति-पद्धति में इनका कोई स्वतंत्र स्थान नहीं है। उनकी भक्ति दास्य-भावना की है। इससे उन्होंने शरणागति को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। तुलसी के सुग्रीव और विभीषण शरणागतभक्त ही हैं। हाँ,

विनयपत्रिका में शांत रस का पूर्ण परिपाक है और मानस के भी सभी रसों का परिहार इस रस में है।

परन्तु यह जो कुछ हो, तुलसी की दास्यभावना ने राम को स्वामी के रूप में ही देखा है। वे कहते भी हैं—

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि

विनय पत्रिका में दास्यभावना का अत्यन्त उत्कृष्ट, साहित्यिक विशद विकास है। विनयभाव या दास्यभाव के लिए आवश्यक है (१) आलंबन के ऐश्वर्य की पूरी पूरी प्रतिष्ठा, (२) अपनी दीनता का प्रकाशन। तुलसी ने इस ऐश्वर्य को तीन रूपों में देखा है। (१) शौर्य—उनके राम में यह गुण सर्वोच्च मात्रा में मिलेगा, (२) शील—इसकी सर्वप्रथम प्रतिष्ठा तुलसी के ही काव्य में हुई है, अन्य रामोपासक कवियों में इसका अभाव है। (३) रूपः सौन्दर्य—स्वयं तुलसी ने बराबर इनका वर्णन किया है। रामचरितमानस में राम के शौर्य, शील और रूप-सौन्दर्य का बृहद् संग्रह है। वास्तव में, रामचरितमानस तुलसी की भक्ति की भूमिका है। विनयपत्रिका में अपरोक्ष रूप में यह भूमिका बराबर काम कर रही है। कृष्णभक्ति में केवल रूप की ही प्रतिष्ठा है। शौर्य केवल अद्भुत रस के प्रादुर्भाव के लिए आता है। शील का पता भी नहीं। जहाँ भागवत के भगवान् स्वयं अपने आनन्द के लिए लीला करते हैं, वहाँ तुलसी के प्रभु रामभक्तों के दुःख दूर करने के लिए अवतार लेते हैं। यही कारण है कि तुलसी के राम में माधुर्य का सर्वोत्तम संग्रह होते हुए भी वे शौर्य की अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा के रूप में भी चित्रित किये गये हैं। तुलसी और सूर दोनों ने अपने-अपने इष्टदेवों की तरुण छवि का वर्णन किया है, परन्तु तुलसी कहीं भी धनुष-बाण नहीं भूलते, शील-संग्रह से नहीं चूकते। रूप का फल

है आसक्ति। शील से तुलसी राम के निकट पहुँचते हैं और शौर्य स्वयं तुलसी के व्यक्तित्व को प्रकाशित करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी की साधना भगवान् राम की भक्ति, उनके नाम में रति और उनकी मानसिक पूजा को घेर कर चलती है। तुलसी का साधनामार्ग विरक्ति (वैराग्य) का मार्ग नहीं है। तुलसी स्पष्ट कहते हैं—

जा पर तृन लौं वारिये राग-विराग-सुहाग।
बड़े भाग सों पाइये सो अगाध अनुराग॥

अतः तुलसी की साधना रागात्मक है। उसमें संसार से विमुखता का उपदेश अवश्य है, परन्तु यह विमुखता इसीलिये है कि राम में अनुराग उत्पन्न हो। कलि में रामनाम ही एकमात्र साधन है इसे तो तुलसी ने अनेक बार कहा है—

कलि केवल मलमूल मलीना। पाप पयोनिधि जनमन मीना॥
नाम-कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जंजाला॥
रामनाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
नहिं नहिं करम न भगति विवेकू। रामनाम अवलंबन एकू॥

और

भले भली भाँति है जो मेरे काहे लागि है
मन राम नाम सों सुभाय अनुरागिहै।
रामनाम सों विराग जोग जागिहै
बाम विधि भालहुँ न कर्म दाग दागिहै॥
रामनाम मोदक सनेह सुधा पागिहै
पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै।
काम तरु रामनाम जोइ जोइ माँगिहै
तुलसीदास स्वारथ परमारथ न खागिहै॥

और

रामनाम को अंक है सब साधन हैं सून।
अंक गये कछु हाथ नहिं अंक रहे दस गून॥

वास्तव में ज्ञान और प्रेम (ईश्वर-विषयक रति) ये दोनों ही भगवद्भक्ति-प्राप्ति के साधन हैं, परन्तु तुलसी भक्ति को ही अधिक उपादेय समझते हैं। इस प्रेम-साधना के आदर्श हैं शंकर, भरत, जनक—

नेम प्रेम शंकर कर देखा। अविचल हृदय भक्ति कै रेखा॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लख परत भरत मत एहू॥
भरत सरिस को रामसनेही। जग जप रामु रामु जप जेही॥

स्वयं रामचन्द्र अपने मुख से कहते हैं—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानउँ एक भगति कर नाता॥

तुलसी का तो निश्चित मन्तव्य ही यह है—

रामहिं केवल प्रेम पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥

और

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किये जोग तप ज्ञान बिरागा॥

यह साधन अन्य वस्तु-निरपेक्ष है। तुलसी कहते हैं—

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

यह साधन सरल नहीं है—

अविरल भक्ति विशुद्ध तव, श्रुति पुरान जेहि गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभु-प्रताप कोउ पाव॥
(मानस)

साधक, साधना और साध्य का सम्बन्ध भी समझ लेना चाहिए। साधक भक्त है, उसकी साधना भक्ति है और साध्य भगवान् राम हैं।

साधक भक्त भगवान् से कुछ नहीं माँगता, केवल स्नेह की कामना रखता है—

कुटिल कर्म लै जाहिं मोहि जहँ-जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो कमठ-अंड की नाईं॥
(विनयपत्रिका)

साधना-सम्पन्न-साधक की स्थिति इस प्रकार है—

जानकी जीवन पर वलि जैहों।
चित कहै राम सीय-पद परहरि अब न कहूँ चलि जैहौं॥
उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख प्रभुपद विमुख न पैहौं।
मन समेत या तनु के वासिन्ह इहै सिखावन दैहौं॥
श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन विलोकत औरहिं सीस ईस ही नैहों॥
नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह वहैहों।
यह छर भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं॥
(विनयपत्रिका)

रामभक्ति की साधना का कोई एक निश्चित प्रकार नहीं है। तुलसी ने अनेक साधन कहे हैं जिनमें भक्तियोग (लक्ष्मण को भगवान् का उपदेश) और नवधाभक्ति (शबरी के प्रति रामगीता) प्रधान हैं। परन्तु उत्तरकांड के कागभुशुण्डि प्रसंग में पञ्चधा साधनों का वर्णन इस प्रकार आया है—

सद्‌गुरु वेद . बचन विस्वासा। संजम यह न विषय कै आसा ॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥
एहि विधि भलहिं सोग रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं ॥
जानिउ तब मन बिरुज गोसाईं। जब उरबल विराग अधिकाई ॥
सुमति छुधा-बढ़ई नित नई। विषय आस दुर्बलता भई ॥
विमल ज्ञान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई ॥

ये साधन हैं—१ श्रद्धा, २ ज्ञान, ३ मति, ४ इंद्रिय-संयम और ५ निष्ठा। सब साधनों का अंत एक ही है—

सब साधन कर सुफल सुहावा।
लखन राम-सिय दर्शन पावा ॥

(मानस)

इस प्रकार किसी साधन को छोटा-बड़ा नहीं कहा गया।

तुलसी साधारण धार्मिक क्रियाकलाप की निम्नभूमि से ऊपर उठ कर साधना के उच्च, उच्चतर, उच्चतम स्तरों में प्रवेश करते हैं। उन्होंने कोई संप्रदाय नहीं खड़ा किया। प्रत्येक सम्प्रदाय का आधार कुछ विशेष बाह्य अनुष्ठान या धार्मिक क्रियाकलाप होते हैं। तुलसी के रामभक्ति पथ (हरिभक्ति पथ) में इन बाह्य अनुष्ठानों को किञ्चित भी स्थान नहीं मिला है। अन्य सम्प्रदाय जहाँ बाह्य अनुष्ठानों का पालन करते हुए धीरे-धीरे अन्ततोगत्वा उच्च आध्यात्मिक

भूमि पर पहुँचते हैं जहाँ वाह्य साधन अनावश्यक हो जाते हैं अथवा साधन साध्य की एकता स्थापित हो जाती है, वहाँ तुलसी पहले से ही आध्यात्मिक बोध की उच्चतम भूमि से अपना संदेश शुरू करते हैं। सच तो यह है कि तुलसी का धर्म वाह्यानुष्ठान-निरपेक्ष है। सच्ची साधना के मूल में आध्यात्मिक बोध आवश्यक है। यह आध्यात्मिक बोध सभी को नहीं होता। इसके लिए आध्यात्मिक तत्त्वों में वास्तविक रुचि चाहिए। यहीं से तुलसी अपना काव्य और धार्मिक संदेश आरम्भ करते हैं। रामचरितमानस का मानस-सरोवर रूपक रखते हुए तुलसी का कथन है—

सदा सुनहिं सादर नर-नारी। तेह सुरवर मानस अधिकारी॥
अति खल जे विसई बग कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संबुल मेक सेवार समाना। इहाँ न विसय कथा रसपाना॥
तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत ऐहि सर अति कठिनाई। रामकृपा बिनु आइ न जाई॥
कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्हकें वचन बाघ हरि व्याला॥
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥
बन बहु विसम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयंकर नाना॥

जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ॥
(बालकांड)

श्रोता सुमति सुसील रुचि कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा अति गोप्यमयि सज्जन करहिं प्रकास॥
(उत्तरकांड)

आध्यात्मिक बोध होने पर राम की कथा में रुचि उत्पन्न होती है।

आध्यात्मिकतत्त्वों की ओर मन जाता है। तुलसी के मत में सर्वोच्च आध्यात्मिक भूमि रामभक्ति है—

नरसहस्र में सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्मब्रत धारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख विरागरत होई॥
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक् ग्यान सुकृत कोउ लहई॥
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी॥
धर्मसील विरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्म पर प्रानी॥
सब से सो दुर्लभ सुरराया। रामभगति रत गतमद माया॥

(उत्तरकांड)

तुलसी की साधना का अर्थ यही है कि इस उच्च आध्यात्मिक भूमि तक पहुँचा जाय जो भरत और शिव को प्राप्त थी। इस उच्च मानस-भूमि में पहुँचकर मनुष्य लोकपर और असाधारण हो जाता है।

इस साधना का रूप भी है रामभक्ति। जो साध्य है वही साधन है। साधन अंततः साध्य में मिल जाता है। गौरव रूप से तुलसी ने भक्ति प्राप्ति की सीढ़ियाँ भी कही हैं (देखिये लक्ष्मण और शबरी के प्रति रामगीताएँ)

तुलसी ने साधारण भक्ति प्राप्ति और दृढ़ भक्ति प्राप्ति में अंतर रखा है। दृढ़ भक्ति भक्ति की सर्वोच्च पराकाष्ठा है। उसकी प्राप्ति होने पर कुछ पाना नहीं रह जाता। आध्यात्मिक क्षेत्र मे, साधन और साध्य का रूप इतना निकट होता है कि साधन का अर्थ ही साध्य की आंशिक प्राप्ति होता है। अतः रामभक्ति के साधन राम-भक्ति के सोपान भी हैं।

भारतीय धार्मिक परम्परा में साधना के तीन मार्ग हैं। १. ज्ञान-मार्ग, २. कर्ममार्ग और ३. भक्तिमार्ग। तुलसी ने कर्ममार्ग को मानस

में स्थान नहीं दिया है। वे बाह्यानुष्ठानों से उत्पन्न विषमता से भली भाँति परिचित थे। उन्होंने कबीर की भाँति कर्मकांडों की असार्थकता को उत्तेजनापूर्ण शब्दों में याद नहीं किया परन्तु उन्होंने उनकी उपेक्षा की, यह प्रगट है। उन्होंने गौण तत्त्वों को छोड़कर मुख्य तत्त्वों को पकड़ा। रह गये ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग। उत्तरकांड में तुलसी ने इनकी विशद तुलना की है (देखिये ज्ञानदीपक और भक्तिमणि) और भक्ति को ज्ञान के ऊपर प्रतिष्ठित किया है। परन्तु ज्ञान से उनका कोई मूलगत विरोध नहीं था। वे उसे भक्ति की नींव समझते हैं। यह इस तरह कि उन्होंने रामभक्ति के पहले राम के समुचित स्वरूप का ज्ञान आवश्यक ठहराया है। वास्तव में राम के शुद्ध ब्रह्म पर रूप का ज्ञान होने से ही भक्त राम में भक्ति का अधिकारी हो सकता है (देखिये उमा-प्रसंग)। दूसरे, उन्होंने ज्ञान के साधनों को भक्ति का साधन बना दिया है :—

(१) वैराग्य—सांसारिक विषयों का त्याग। वैराग्य ज्ञान के साधक का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। तुलसी उसे भक्ति के लिये आवश्यक समझते हैं।

(२) ध्यान—तुलसी का ध्यान साकार है। उसका सम्बन्ध राम से है जो आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण व्यक्ति हैं। ध्यान के साथ प्रेम और आत्मसमर्पण के भावों का गहरा सम्बन्ध है। इससे साधक ध्येय की कृपा की कामना करता है। उस कृपा को लाभ करके वह साधक के अत्यन्त सन्निकट पहुँचना चाहता है। ज्ञान में निराकार ध्यान का विशेष महत्त्व है और उसके द्वारा साधक ध्येय के साथ तत्त्वत: एक हो जाना चाहता है।

(३) विवेक और अंतर्दृष्टि—तुलसी विवेक के निरन्तर विकास और अंतर्दृष्टि को अपनी साधनपद्धति में प्रमुख स्थान देते हैं। यहीं भक्ति के अन्दर ज्ञान की साधना आ जाती है। इस विवेक और

अंतर्दृष्टि के विकास के लिए आचरण की भूमि पर चलना पड़ता है। इसीसे तुलसी आचार-विचार पर बल देते है और अनाचार एवं उच्छृंखलता की भर्त्सना करते हैं (देखिये बालकांड का संत-असंत वर्णन और उत्तरकांड का कलियुग-वर्णन)। साधक की कसौटी तो आचरण ही है। भक्त भी आचरण-निरपेक्ष नहीं है। उसे तो आचरण का और भी अधिक ध्यान रखना पड़ेगा।

परन्तु भक्ति ज्ञान के इन अंगो को लेते हुए और भी अधिक महत्त्वपूर्ण इसलिये है कि उसमें ज्ञानमार्ग की कठिनाइयाँ नहीं हैं। वह प्रेम की साधना है, अन्तःकरण का परिष्कार है। उसके लिए न शास्त्रज्ञान की आवश्यकता है, न गुरु की। भगवत्भक्ति और भगवान् एक ही वस्तु हैं—भगवत्भक्ति भगवान् तक पहुँचने का साधन ही नहीं है, स्वयं साध्य है। परन्तु साधना की अंतिम अवस्था में भक्तिभाव ही भक्त का श्वास-प्रश्वास हो जाता है। वह साधना से होते हुए निःसाधना की अवस्था को प्राप्त हो जाता है। विनय-पत्रिका में तुलसी ने इसी निःसाधनता की अवस्था को प्राप्त कर लिया है। वहाँ उनके व्यक्तिगत जीवन का अंत हो गया है। उनका सारा व्यक्तित्व राम के चरणों में विछ गया है।

परन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि तुलसी अकर्मण्यता को प्रश्रय देते हैं। तुलसी ने आचरण पर बल दिया है और वर्णाश्रम का पोपण किया है, स्वयं उनसे नायक विरागी नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट है कि कर्मकांड की उपेक्षा करते हुए भी तुलसी कर्म का महत्त्व समझते हैं। इससे अच्छा आदर्श और क्या हो सकता है कि मनुष्य का जीवन विवेक के पथ पर चलता हो और उसमें ऊँची से ऊँची अंतर्दृष्टि की प्रेरणा हो (देखिये धर्मरथ रूपक और मानस के पात्र)। ज्ञान का अर्थ है विचार की साधना, कर्म का अर्थ है आचरण की साधना। तुलसी ने रामचरितमानस के कथासूत्र में ही आचरण की

साधना को गूँथ रखा है। परन्तु कर्म के साथ अहंकार लगा हुआ है। इसीसे तुलसी निष्काम कर्म का संदेश देते हैं।

मानसांतर्गत जिस भक्ति की प्रतिष्ठा है वह वैधी भक्ति है। वह साधन-निरपेक्ष नहीं है। वह शास्त्रोक्त नवधा भक्ति ही है। बन में जब भगवान् श्रीराम वाल्मीकि से रहने के लिये स्थान पूछते हैं तो उत्तर में महर्षि भक्ति के नौ अंगों का ही वर्णन करते हैं—

जिन्हके श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरन्तर होंहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे॥
(श्रवण)

जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुनगन चुनइ राम बसइ हिय तासु॥
(कीर्तन)

मंत्रराजु नित जपहि तुम्हारा।
(स्मरण)

कर नित करहिं रामपद पूजा। रामभरोस हृदय नहिं दूजा॥
(पादसेवन)

तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पर भूषन धरहीं॥
(अर्चन)

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि विनय विसेषी॥
(वंदन)

तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसर नाहीं। राम बसहु तिनके मन माँहीं॥
(दास्य)

स्वामि सखा पितु मातु गुरु जिन्हके सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्हके बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥

(सखा)

तुम्हहि छाँड़ि गति दूसर नाहीं।
राम बसहु तिन्हके मन माँही॥

(आत्मनिवेदन)

तुलसी ने "साधन सिद्धि रामपद नेहू" कहकर अपने समय की सभी साधनाओं को दृष्टि की ओट कर लिया। उनके समय में भक्ति की साधना के साथ चल रही थी योग की साधना, संतों की सहज-साधना, सूफी-संतों की प्रेम-साधना। तुलसी ने इन सबको छोड़कर भक्ति को ही अपनाया परन्तु उन्होंने रामभक्त होते हुए भी किसी विशेष इष्टदेव को बुरा नहीं कहा। उन्होंने विनय-पत्रिका में सभी देवी देवताओं की राम के नाते प्रार्थना की है और शिव, हनुमान् और कृष्ण की ओर तो उनका विशेष आग्रह है। उन्होंने इनका लीलागान विशद रूप से किया है और इनका स्तवन किया है। सम्प्र-दाय की दृष्टि से तुलसी स्मार्त वैष्णव थे, परन्तु उन्होंने सभी लोक साधनाओं को आदर और प्रेम की दृष्टि से देखा था। उनका हृदय भारत की जनता का धर्मप्राण हृदय था। शैवों और वैष्णवों के विरोध को हटाने का उनका स्तुत्य प्रयत्न तो स्पष्ट ही दिखलाई पड़ता है।

परन्तु साधना के सभी अंगों पर प्रकाश डालते हुए तुलसी ने मुख्यता नामस्मरण (भगवन्नाम-साधन) को दी है (देखिये बाल-कांड की भूमिका)। तुलसी के पात्र भी भजनानन्दी हैं—

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती।
सब तजि भजन करौं दिन राती॥

(सुग्रीव)

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू॥

और अंत में

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं राम गुन गाई॥

तुलसी ने मानस का अंत भी इसी रामगुन गान से किया है—

यह कलिकाल मायतन मन करि देखु विचार।
श्रीरघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार॥

एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग-यज्ञ जप-तप-व्रत-पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहिं। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

(उत्तरकांड)

विनयपत्रिका, कवितावली, मानस, बरवैरामायण और दोहावली में नामस्मरण-सम्बन्धी अनेक विचार और भाव प्रस्फुटित हुए हैं।

परन्तु केवल रामस्मरण-मात्र वाह्याचार बन जाता है। कागभुशुण्डि प्रसंग में इसकी निःसारता प्रकट है। नामस्मरण के साथ नीति और सदाचार के पालन की नितान्त आवश्यकता है। कागभुशुण्डि पूर्व जन्म में नामजप तो करते थे परन्तु अहंकार, दम्भ, क्रोध और अनीति के शिकार थे। उन्हें नारद का अभिमान दूर ही करना पड़ा। (देखिये नारदमोह-प्रसंग)

साधना के अंत में भक्तयोगी संत हो जाता है। उत्तरकांड में इस प्रकार के संत के लक्षण कहे गये हैं। तुलसी ने वन प्रकरण में एक

भक्त तापस विशेष का वर्णन किया है। वही आदर्श भक्त है। वर्णन इस प्रकार है—

तेहि अवसर एक तापसु आवा। तेज पुंज लघु वयस सुहावा॥
कवि अलखित गति वेसु विरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी॥

सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि॥

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारसु पावा॥
मनहुँ प्रेम परमारथु दोऊ। मिलत धरे तन कह यहु कोऊ॥
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरन धूरि धर सीसा। जननि जान्हि सिसु दीन्ह असीसा॥
कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पिअत नयन पुट रूपु पियूखा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥
(अयो०, १११)

यद्यपि तुलसी ने भक्ति साधना को ही अपनाया, परन्तु उन्होंने अपने समय की प्रचलित दो प्रधान धाराओं को भी आत्मसात करने का प्रयत्न किया। उन्होंने संतमत के राम (निर्गुण ब्रह्म) को एकदम अस्वीकार नहीं किया, सगुण राम को उससे अधिक महत्त्व दिया। दूसरे संतों की भाँति उन्होंने भी आचरण पर बल दिया, गुरु और नामस्मरण की महिमा गाई। इसी तरह उन्होंने योग को अस्वीकृत करते हुए भी भक्तियोगी (या तुलसी की परिभाषा में "संत") में गीतोक्त योगी के लक्षणों की ही स्थापना की (मानस और गीता की तुलना से साम्य दिखलाई पड़ जाता है)।

हरिभक्ति साधना मार्ग से चलने के लिये श्रद्धा और विश्वास की नितान्त आवश्यकता है। रामचरितमानस में कागभुशुण्डि ने कहा है—

कवनिहु सिद्धि कि विनु विश्वासा।
विनु हरिभजन न भवभय-नासा॥

विनु विश्वास भगति नहिं, तेहि विनु द्रवहिं न राम।
रामकृपा विनु सपनेहु, जीव कि लहइ विश्राम॥
अस विचारि मतिधीर, तजि कुतर्क संशय सकल।
भजहिं राम रघुवीर, करुनाकर सुन्दर सुखद॥

स्वयं भगवान् राम के वचन हैं—

मोर दास कहाय नर आसा। करइ तो कहहु कहाँ विश्वासा॥

स्वयं तुलसी की साधना दास्यभाव की है जिसका मूल मंत्र है शरणागति। तुलसी कहते हैं—

जग जाँचिअ कोउ न जाँचिअ तो
जिय जाचिय जानकि-जानहि रे।
जेहि जाँचत जाँचकता जरि जाय
जो जारत जोर जहानहि रे॥
गति देखु विचारि विभीषण की
अरु आनि हिये हनुमानहि रे।
तुलसी भजु दारिदु-दोप-दवानल
संकट कोटि कृपानहि रे॥
(कवितावली)

इसी आशय से उन्होंने अनेक बार भगवान् से प्रार्थना की है—

यह विनती रघुवीर गुसाईं।
और आस विस्वास भरोसो हरौ जीव जड़ताई॥
चहौं न सुगति, सुमति, सम्पत्ति कछु, रिधि-सिधि विपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग रामपद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥

कुटिल करम लै जाइ मोहिं जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़िये कमठ अण्ड की नाई॥
या जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाँई॥

इसी साधना की उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित हो तुलसी कहते हैं—

जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो सती कहाय विषयवासना न छंडै॥
जाय धनिक बिनु दान जाय निर्धन बिनु धर्महिं।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महिं॥

सुत जाय मातु-पितु-भगति बिनु तिय सो जाइ जेहि पत न हित।
सब जाय दास तुलसी कहैं, जो न रामपद नेह कित॥

परन्तु उनकी साधना दास्यभाव की है। 'मानस' में कागभुशुण्डि ने कहा है—

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।

और विनय पत्रिका तो दास्यरति का अमूल्य रत्न है। उसमें विनय की सप्त भूमिकाओं का अत्यंत विशद वर्णन है। कवितावली के भी कितने ही छन्द दास्यभाव की साधना से ओतप्रोत हैं—

मेरे जाँति-पाँति न चहौं काहू की जाति-पाँति
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को।
लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को॥
अति ही अयाने उपखानों नहिं बूझैं लोग
"साह ही को गोत, गोत होत न गुलाम को॥"

साधु कै असाधु कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को ॥
(कवितावली)

जिनकी ऐसी साधना नहीं है उनके विषय में तुलसी का मंतव्य है—

तिनतें खर सूकर स्वान भले, जड़ता वकते न कहे कुछवै ।
तुलसी जेहि राम सो नेह नहीं, सो सही पसु पूँछ विसानन है ॥
जननी कत भार-मुई दस मास, भई किन बाँझ गई बिन च्वै ।
जरि जाउ सो जीवन, जानकीनाथ ! जिये जग में मैं तुम्हारो विन है ॥

इसके विपरीत रामभक्त की महिमागाथा से उनकी जिह्वा थकती नहीं—

सो सुकृती, सुचिमन्त, सुसंत, सुसील, सिरोमनि स्वै ।
सुर तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत है वातन छ्वै ॥
गुन-गेह-सनेह को भाजन सो सवही सों उठाइ कहौ सुव है ।
सतिभाय सदा छल छाँड़ि सवै तुलसो जो रहै रघुवीर को है ॥

तुलसी के आश्रयतत्त्व सीताराम हैं। वास्तव में ये अभिन्न एक ही तत्त्व हैं—

गिरा-अरथ जल-बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥

सारे मानस में रामभक्ति को साधना के रूप में उपस्थित किया गया है और उसकी एक सरलतम पद्धति के आविष्कार की चेष्टा की गई है। इसे ही हम "भक्ति योग" कह सकते हैं।

इस भक्तियोग का रूप क्या है, यह देखना महत्त्वपूर्ण है। मानस में तीन स्थलों पर भक्ति के भेद-प्रभेद बताये गये हैं और

तुलसी के भक्तियोग का सत्य रूप समझने में इन्हीं स्थलों से सहायता मिलेगी :—

(१) लक्ष्मण के प्रति रामगीता

जाते वेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भक्ति भक्त सुखदाई ॥
सो स्वतंत्र अवलेस न आना। तेहि अधीन ज्ञान विज्ञाना ॥
भक्ति तात अनुपम सुखमूला। मिलै जो सन्त होहि अनुकूला ॥
भक्ति के साधन कहौं बखानी। सुगम पंथ मोहिं पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं विप्र चरण अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥
यहि कर फल पुनि विसै विरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा ॥
श्रवणादिक नवभक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं ॥
संत चरण पंकज अति प्रेमा। मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानैं दृढ़ सेवा ॥
मम गुण गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दम्भ न जाके। तात निरन्तर वश मैं ताके ॥

वचन कर्म मन मोरि मति, भजन करहिं निस्काम।
तिन्हके हृदय-कमल महँ, करौ सदा विश्राम ॥

भक्तियोग सुनि अति सुख पावा। लक्ष्मण प्रभु चरनन्हि शिर नावा।

(अरण्य)

यह अनन्य भक्ति की व्यवस्था है। मनुष्य ब्राह्मणों (विप्रों) के चरणों में प्रेम करे और सामाजिक वेद-मर्यादित व्यवस्था को मानता हुआ अपने-अपने वर्णानुसार कर्म करता रहे। इससे अनासक्ति भाव (विषय-विराग) का जन्म होगा। फलतः रामभक्ति धर्म में अनुराग उत्पन्न होगा। जब इतना हो जाये तो श्रवणादिक

नवभक्ति द्वारा इस भक्ति-भावना को दृढ़ किया जाय। अन्त में लीला-प्रेम की उत्पत्ति होगी। सत्संगति की ओर मन लीन होगा। भजन में दृढ़ता आयेगी। संसार के सब नाते राम से सम्बन्धित हो जायेंगे जैसा तुलसी का भाव था—

सियाराममय सब जग जानी।

अन्तिम अवस्था में पहुँचकर भक्त निष्काम भाव से अनन्या-न्याश्रित होकर भजन करेगा। काम-क्रोध-मद-लोभ उसे छोड़ देंगे। उसका भक्तिभाव इस हद तक पहुँच जायगा—

मम गुण गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥

तब भक्ति की पराकाष्टा हो जायगी।

(२) शबरी के प्रति रामगीता

नवधा भक्ति कहौं तोहिं पाहीं। सावधान सुनु धर मन माहीं॥
प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा। दूसरि रति मम कथा-प्रसंगा॥

गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भक्ति अयान।
चौथि भक्ति मम गुण, गण करइ कपट तजि गान॥

मंत्र जाप मम दृढ़ बिश्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा॥
छठि दम शील बिरति बहु कर्म्मा। निरत निरन्तर सज्जन धर्म्मा॥
सातवँ सब मोहि मय जग देखे। मोते संत अधिक कर लेखे॥
आठवँ यथा लाभ सन्तोषा। सपनेहुँ नहिं देखिय परदोषा॥
नवम सरल सब मन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना॥
नव कहँ एकौ जिन्हके होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे॥

तुलसी के मंतव्य "नवधाभक्ति" इस प्रकार हैं—

१. सत्संग, २. कथागान, ३. गुरुसेवा, ४. गुणगान, ५. मंत्र जाप, दृढ़ विश्वासपूर्ण भजन, ६. दम, शील, विरति आदि सज्जनधर्म का पालन, ७. संसार भर के पदार्थों में भगवान् को ही देखना: भगवान् को संत से भी बड़ा माने, ८. प्रत्येक स्थिति में सन्तोष, परदोष सपने में भी नहीं देखे, ९. भगवत्विश्वास, निष्कपटता, अनासक्तिभाव। इनमें से किसी एक से ही भगवान् की प्राप्ति संभव बताई जाती है। वास्तव में तुलसी की यह नवधाभक्ति शास्त्रीय नहीं है। न इसमें भावना का उत्तरोत्तर विकास है जैसा पंचरात्र और भागवत-कथित नवधा भक्ति-प्रकारों में है। वास्तव में तुलसी सभी संतगुणों को भगवान् की ओर ले जाता हुआ देखते हैं। यहाँ साधन ही कालान्तर में साध्य हो जाता है और उसके द्वारा भक्त लक्ष्य तक पहुँच जाता है। अच्छे भक्त में तो इनमें से सब ही गुण होंगे। इसीसे इसमें कोई क्रम-व्यवस्था नहीं है जैसी लक्ष्मण के प्रति कहे गये भक्तियोग में है।

(३) पुरवासियों के प्रति रामगीता

भक्ति स्वतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी ॥
पुण्य-पुञ्ज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता ॥
पुण्य एक जग में नहिं दूजा। मन क्रम वचन विप्र पदपूजा ॥
सानुकूल तिहि पर सब देवा। जो तजि कपट करै द्विज सेवा ॥

अवरौ एक गुप्त मत, सबहि कहौं कर जोरि।
शंकर भजन बिना नर, भक्ति न पावै मोरि ॥

कहहु भक्ति पथ कवन प्रयासा। योग न मख जप तप उपवासा ॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। यथा लाभ संतोष सदाई।

मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहा विश्वासा॥
बहुत कहौं का कथा बड़ाई। इहि आचरण वश्य मैं भाई॥
वैर न विग्रह आश न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोप दक्ष विज्ञानी॥
प्रीति सदा सज्जन-संसर्गा। तृण सम विषय स्वर्ग-अपवर्गा॥
भक्तिपक्षता नहिं शठताई। दुष्ट कर्म सब दूरि बहाई॥

मम गुण ग्राम नाम रत, गत ममता मदमोह।
ताकर सुख सोई जाने, परमानन्द सन्दोह॥

यहाँ मन, वचन, कर्म से द्विजसेवा को भक्ति का प्रथम सोपान कहा गया है जिसका फल सत्संगति है जिससे अन्तत: रामभक्ति की प्राप्ति होती है। दूसरा साधन है शंकरभजन। तुलसी के अभिधेय रामभक्ति पथ में योग, यज्ञ, जप, तप, उपवास निषिद्ध हैं। उसका आधार है सदाचरण। स्वभाव की सरलता, मन की निर्दोषता, यथा लाभ संतोष, निष्काम सेवाभाव और फल-प्राप्ति की ओर से अनासक्ति। वैर नहीं, विग्रह नहीं, आशा नहीं, भय नहीं। अक्रोधी, पुण्य-शील, अनघ, दक्ष, विज्ञानी, अनारम्भ, अनिकेत, अमानी, सत्संगी, अनासक्त, सुख-दुख में समभाव-शील—यहाँ तक कि भक्तिपथ में भी हठ नहीं करे (देखिये कागभुशुण्डि की कथा)। ये उच्चाचरण भगवत्प्राप्ति के साधन बताये गये हैं। यह "सरल भक्ति मार्ग" है (कहहु भक्तिपथ कवन प्रयासा)।

वास्तव में तुलसी का भक्तियोग अत्यन्त सहजमार्ग है। वेद-शास्त्रसम्मत. समस्त पुण्याचरणों का उपसंहार रामभक्ति की प्राप्ति में है—यह तुलसी का अभिधेय है। सब साधनों का फल रामभक्ति ही है—

जप तप नियम योग व्रत धर्मा। श्रुति संभव नाना विधि कर्मा ॥
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहै श्रुति सज्जन ॥
आगम निगम पुराण अनेका। पढ़े गुने कर फल प्रभु एका ॥
तव पदपंकज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर फल यह सुन्दर ॥

(उत्तर०)

इतना सब होते हुए भी तुलसी को कुछ साधन विशेष प्रिय हैं :

(१) रामगुणगान जो भजन, नामस्मरण, कथावार्त्ता आदि के रूप में कई प्रकार से हो सकता है।

(२) भगवान् का हृदय में ध्यान

(३) भगवान् के प्रति सेवक-सेव्यभाव

(४) शुद्धाचरण

(५) असन्तों का त्याग और सत्संग। तुलसी ने सत्संग को सबसे अधिक महत्त्व दिया है—

बिनु सत्संग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पर, होइ न दृढ़ अनुराग ॥

(उत्तर०)

स्पष्ट है कि तुलसी ने शास्त्रोक्त भक्तिपथ को अत्यन्त सहज रूप दे दिया है। जहाँ भागवत की नवधाभक्ति इस प्रकार है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥
इति पुन्सार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधतिमुत्तमम् ॥ २४ ॥

(१. श्रवण, २. कीर्तन, ३. नामस्मरण, ४. पादसेवन, ५. अर्चन, ६. वंदन, ७. दास्य, ८. सख्य, ९. आत्मनिवेदन)। वहाँ तुलसी विधि-विधानों से हटकर एकदम चारित्रिक एवं मानसिक स्तर पर आ ठहरते हैं। उनके भक्तिमार्ग में श्रवण, कीर्तन, नामस्मरण और दास्य को ही महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है यद्यपि विनयपत्रिका तो सम्पूर्णतया आत्मनिवेदन ही समझी जानी चाहिए। अर्चन, वंदन, सख्य, पादसेवन वल्लभ-कुल के भक्तों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और उन्होंने उपास्यदेव की पूजा के नित्य और नैमित्तिक विधि-विधानों को अत्यन्त रोचक और हृदयग्राही विस्तार दिया है। परन्तु तुलसी का भक्तिमार्ग इन बाह्याचारों को स्वीकार नहीं करता। सख्य तो उनके अनेक स्वामी-सेवक-भाव का विरोधी ही ठहरा। वस्तुतः श्रवण, कीर्तन, नामस्मरण को हमें भगवत्गुणगान के एक शीर्षक के भीतर ला सकते हैं। भगवान् के प्रति दास्यभाव रखते हुए उनका नामस्मरण और लीला-गान करना और उनमें आनन्द भाव रखना और अनासक्त रहना, निष्काम भक्ति करना—ये तुलसी के भक्ति-मार्ग की विशेषताएँ हैं।

यदि हम इस भक्तिमार्ग का सूक्ष्म अध्ययन करें तो हमें और भी बातें मालूम होंगी। तुलसी की भक्तिभावना का आश्रय है भगवान् का सगुण रूप जो रामावतार में प्रगट हुआ है और उसकी लीला का गान। राम की कथा ही रामभक्ति को दृढ़ करती है (उपजी रामभक्ति दृढ़—उत्तर०)

रामचरण रति जो चहैं अथवा पद निर्बान।
भावसहित सो यह कथा करै श्रवणपुट पान॥

(उत्तर०)

२—रामनाम का स्मरण—यहाँ राम का नाम दाशरथि राम से इतर एक सत्ता है जिसे तुलसी राम से भी ऊँचा मानते हैं। इसके सम्बन्ध में उनका मंतव्य है—

इहि कलिकाल न साधन दूजा। योग यज्ञ जप-तप-व्रत-पूजा ॥
रामहिं सुमरइ गाइअ रामहिं। सन्तत सुनिय रामगुण ग्रामहिं ॥

वस्तुतः नामस्मरण रामकथा प्रेम की भूमिका है, इसीसे तुलसी ने उसे रामचरितमानस की भूमिका के रूप में स्मरण किया है। इसके द्वारा उन्होंने संतों के निगुण ब्रह्म राम और भक्तों के सगुण दाशरथि विष्णु के अवतार राम में सामञ्जस्य अथवा बीच की पटरी बैठाने की चेष्टा की है। राम के सगुण रूप-चिन्तन और नामस्मरण में कौन बड़ा है, कौन छोटा है, यह नहीं कहा जा सकता; सम्भवतः एक दूसरे का पूरक है, यह तुलसी का मत है—

नामरूप दोउ ईश उपाधी। अकथ अनादि सु सामुहि ढाधी ॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुण भेद समुझिहैं साधू ॥
देखिय रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना ॥
रूप विशेष नाम बिनु जाने। करतल गत न परहिं पहिचाने ॥
सुमरिय नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह विसेखे ॥
नाम रूपगति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परत बखानी ॥
अगुण सगुण बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ॥
(बाल०)

तर्क को अंत तक ले जाते हुए तुलसी नाम को ब्रह्म राम से भी बड़ा कह देते हैं क्योंकि, एक, ब्रह्म के निगुण और सगुण दोनों रूप वास्तव में अचिन्त्य हैं। नाम के जप के कारण ही भक्ति का संस्कार जमता है और वे सुगम हो पाते हैं। दो, नामस्मरण के बल से ही व्यापक अविनाशी ब्रह्म साकार रूप धारण करता है। तीन, रूप-धारणा से

नामस्मरण सहजतर साधन है। (भाय कुभाय अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिशि दशहूँ ॥) चौथे, दाशरथि राम का क्षेत्र और स्वभाव सीमित था, नाम का अनन्त व्यापक और असीम (ब्रह्म राम से नाम बड़ वरदायक वरदानि) । पाँचवे, कलियुग में नाम ही आधार है। तुलसी ने कहा है—

ध्यान प्रथम युग मख युग दूजे। द्वापर परितोषित प्रभु पूजे ॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप-पयोनिधि जनमन मीना ॥
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत शमन सकल जंजाला ॥
(बाल०)

नामस्मरण के द्वारा जब साधक राम की अनुराग प्राप्ति कर लेता है स्वयम् राम का मधुर स्वरूप, उनका शील, उनकी भक्ति-वत्सलता, उनका शौर्य उसकी भक्तिभावना को विकसित करने में सहायक होते हैं। इससे उसके चरित्र का स्वतः विकास होता है। अब यदि वह ज्ञानी नहीं है तब भी "भक्त" होकर भगवान् को प्रिय है। यदि उसने भगवान् से ज्ञान का नाता भी जोड़ लिया, तो दुगना प्रिय है (ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा) ।

तुलसी कागभुशुण्डि की तरह भक्तिपक्ष पर हठ नहीं करते। इसी से उन्होंने अन्त में कागभुशुण्डि के दंड की कथा लिखी है—

भक्तिपच्छ हठि करि रहेउ दीन्ह महाप्रभु शाप।
पुनि दुर्लभ वर पायहूँ देखहु भजन प्रताप ॥
(उत्तर०)

परन्तु वह केवल ज्ञान, केवल तर्क-वितर्क द्वारा सत्य की प्राप्ति को एकदम असंभव कहने में जरा भी नहीं चूकते—

जो असि भक्ति जानि परहरही।
केवल ज्ञान हेतु श्रम करही॥
ते जड़ कामधेनु गृहत्यागी।
खोजत आक फिरहिं पय लागी॥
(उत्तर०)

यद्यपि बाद में भक्तिपक्ष के प्रति यह आग्रह कम करते हैं और एक सुन्दर सामञ्जस्य का मार्ग सामने लाते हैं (देखिये गरुड़ के प्रश्न "ज्ञानहि भक्तिहि अन्तर केता" का उत्तर)। वे कहते हैं कि—

ज्ञानहि भक्तिहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भवसंभव खेदा॥
(उत्तर०)

परन्तु (१) माया भक्ति को मोह नहीं सकती, ज्ञान को मोह लेती है अतः ज्ञान में गिर जाने का खतरा है। (२) राम को ज्ञान की अपेक्षा भक्ति प्यारी है। (३) दोनों ही हरि-कृपा से प्राप्य हैं, फिर भक्ति का पथ सरल है, ज्ञान का कठिन। (४) ज्ञान का लक्ष्य है मुक्ति; परन्तु भक्ति मुक्ति से भी बड़ी है। सामञ्जस्य इस प्रकार स्थापित होता है कि ज्ञानी भक्त राम को कोरे भक्त से विशेष प्रिय है। राम भक्तों के चार हैं—राम भक्त जग चारि प्रकारा (बाल०), परन्तु तुलसी स्पष्ट रूप से इनका नामोल्लेख नहीं करते केवल इतना कह देते हैं कि चारों का नाम ही आधार है। फिर भी भावुक भक्त और ज्ञानी भक्त की श्रेणियाँ तो स्पष्ट ही हैं। दूसरी दो श्रेणियाँ हो सकती हैं—कामनायुत भक्त और कामनाहीन निष्काम भक्त (देखिये, सकल कामनाहीन जे रामभक्ति रसलीन० बाल०)

तुलसीदास ने सारे रामचरितमानस में कहीं भी भक्ति की परिभाषा नहीं दी है यद्यपि सारा मानस भक्ति और भक्तों की महिमा से ओतप्रोत है। राम पुरवासियों से कहते हैं—

जासे वेगि द्रवौं मैं भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई ॥

और आगे इसी की व्याख्या करते हुए कहते हैं—

सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई ॥
ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका ॥
करत कष्ट बहु पावइ कोई। भक्तिहीन मोहि प्रिय नहिं सोई ॥
भक्ति स्वतंत्र सकल सुखखानी। बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी ॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता ॥
पुन्य एक जगमहुँ नहिं दूजा। मन क्रम वचन विप्र पदपूजा ॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करै द्विज सेवा ॥

औरउ एक गुपुत मत, सबहिं कहउँ कर जोरि।
शंकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि ॥

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा ॥
सील स्वभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई ॥
मोर दास कहाय नर आसा। करइ तो कहहु काह विस्वासा ॥
बहुत कहउ का कथा बढ़ाई। यहि आचरन बस्य मैं भाई ॥
वैर न विग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ विग्यानी ॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम विषय स्वर्ग अपवर्गा ॥
भगत पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूर बहाई ॥

मम गुनग्राम नामरत गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानइ चिदानन्द संदोह ॥

(उत्तर० ४६)

तुलसी ने भक्ति के प्रकारों का वर्णन किया है। दो प्रकार की नवधा भक्तियों का वर्णन मानस में मिलता है। एक प्रकार की नवधा भक्ति का वर्णन स्वयं राम ने शवरी से किया है जिसके ९ अंग इस प्रकार हैं—१. सत्संग २. हरिकथाश्रवण ३. सद्गुरु सेवा ४. कीर्तन ५. दृढ़-विश्वास पूर्वक जप ६. इन्द्रियदमन और परोपकार, ७. अद्वैतभाव, ८. संतोष, परछिद्रान्वेषण से विरति ९. समबुद्धिपूर्वक चराचर विश्व से सरल व्यवहार। लक्ष्मण के प्रति कही गई राम-गीता में लगभग शास्त्रोक्त नवधा भक्ति का वर्णन है जो भागवत में इस प्रकार है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

भेद का कारण है कि तुलसी का मत है कि—

जप तप जोग नियम निज धर्मा। श्रुति सम्भव नाना सुभकर्मा॥
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥
आगम नीति पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पदपंकज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर फल यह सुन्दर॥

और

सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पंडित। सोइ गुनज्ञ विज्ञान अखंडित॥
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाके पदसरोज-रति होई॥

और

सोइ गुनज्ञ सोई बड़भागी। जो रघुवीर चरन अनुरागी॥

और

वेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल रामसनेहू॥

और

भगतिहीन गुन सुख सब ऐसे । लवण विना वहु व्यंजन जैसे ॥
भगतिहीन सुख कोने काजा । अस विचारि बोलेउ खगराजा ॥

और अंतत:

जे अस भगति जानि परिहरिहीं । केवल ज्ञान हेतु श्रम हरहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजड़ आक फिरहि पय लागी ॥

भक्ति की उपादेयता ही यही है कि इस भक्ति चिन्तामणि के पास रहने से मानस-रोग (काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर) निर्बल हो जाते हैं ।

तुलसी के भक्त के लक्षण क्या हैं ? कामहीनता (जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम), विश्वास (यद्यपि जनम कुमातु तें मैं सठ सदा सदोस । आपन जानि न त्यागिहैं, मोहि रघुबीर भरोस), निश्चल भाव (करम वचन मन छाँड़ि छल जब लगि जन न तुम्हार । तब लगि सुख सपनेहुँ नहीं, किये कोटि उपचार), निरहंकारिता (देखिये नारदमोह कथा) । परन्तु अंत में तो भावना की ही अधिक आवश्यकता है । तुलसी कहते ही हैं—रामहिं केवल प्रेम पिआरा । जान लेहु जो जाननिहारा (अयोध्या०) और भाव सहित खोदइ जो प्रानी । परम भगति मनि सब सुख सानी ॥ इस साधना के अंत में जहाँ साधना इच्छा रहित और निष्काम होकर "जानत तुम्हहिं तुम्हहिं हो जाई ।" वह उसकी भगवत् भक्ति की पराकाष्ठा होने से उसकी यह दशा होती है—

अस कहि राउ सहित सुत रानी । परे चरन मुख आव न बानी ॥

(बालकांड)

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
(अरण्य० राम लक्ष्मण के प्रति)

रामबदन बिलोकि मुनि ठाढ़ा। मानेहु चित्र माँझि लिख काढ़ा॥
(अरण्य० सुतीक्ष्ण)

सुनत अगस्त्य तुरत उठि धाये। हरि बिलोकि लोचन जल छाये॥
(अगस्त्य०)

सुनि प्रभु वचन मगन सब भयऊ। को हम कहाँ बिसरि तन गयऊ॥
इकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे॥
(उत्तरकांड)

इस सिद्धावस्था को प्राप्त निष्काम योगी को साधन (रामभक्ति) ही साध्य (रामप्राप्ति) हो जाता है। तुलसी स्वयं कहते हैं—

साधन साध्य रामपद नेहू।

इसी से मानस के सारे पात्र इसी का वरदान माँगते हैं—

अर्थ न धर्म न कामरुचि, गति न चहौं निरबान।
जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन॥

उसे मुक्ति नहीं चाहिए—

अस विचारि हरि भगत सयाने। मुकुति निरादर भगति लुभाने॥

तुलसी का आदर्श है भगवान् में समर्पण-बुद्धि का उदय। इस अनन्य भक्तिभाव को लक्ष्मण ने इस प्रकार प्रगट किया है—

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ स्वभाव नाथ पति याहू॥
जहँ लगि नाथ सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम नित गाई॥
मोरे सबै एक तुम स्वामी। दीनबंधु उर अन्तरजामी॥

इसलिये तुलसी अपने भक्ति-दर्शन को संक्षेप में इस प्रकार लिख देते हैं—

भाववस्य भगवान, सुखनिधान करुनाभवन।
तजि ममता मदमान, भजिय सदा सीतारवन ॥
(उत्तर०)

उधर भगवान् के मुँह से भी वे कहला देते हैं—

सुनु मुनि तोहिं कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहिं तजि सकल भरोसा ॥
करउँ सदा तिन्हकी रखवारी। जिमि बालकहिं राखि महतारी ॥

परन्तु यह नहीं कि भक्त को संसार में कुछ करने को ही नहीं रह जाता। तुलसी स्पष्ट कहते हैं—

रामभगत परहित निरत परदुख दुखी दयाल।

तुलसी ने ४ प्रकार के भक्त कहे हैं—

रामभगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
चहूँ चतुर कहँ नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पिआरा ॥
(बालकांड)

भगवद्गीता में इन चार प्रकार के भक्तों के नाम हैं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। तुलसी ने कह ही दिया है कि ज्ञानी भक्त भगवान् को विशेष प्रिय है। तुलसी के मानस का आदर्श यही ज्ञानी भक्त है।

भक्ति से लाभ क्या है? पहला लाभ है चरित्र का विकास (देखिये, संत-असंत वर्णन)। दूसरा लाभ है विशेषाधिकारों की प्राप्ति। तुलसी कहते हैं—

राम सदा सेवक रुचि राखी।

(अयोध्याकांड)

जो अपराध भगत कर करई। राम रोस पावक सो जरई॥

(वही)

जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करहिं सब कोई॥

(किष्किन्धाकांड)

सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला। जापर होइ सुनट अनुकूला॥

(वही)

भगतहि सानुकूल रघुराया। तातें तेहि डरपति अति माया॥
हरि सेवकहिं न व्यापि अविद्या। प्रभु प्रेरित तेहि व्यापै विद्या॥
भगतिवंत अति साँचहुँ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय अस मम वानी॥

(उत्तरकांड)

मोरे मन प्रभु अस विस्वासा। रामतें अधिक राम कर दासा॥

(वही)

तीसरा लाभ है विश्राम प्राप्ति। रामचरितमानस के अन्त में तुलसी ने इसी "विश्राम प्राप्ति" की घोषणा की है।

रामभक्ति का रूप है तीव्र आसक्ति। तुलसी ने चकोर के चंद्रमा के प्रति प्रेम और चातक के मेघ के प्रति को आदर्श प्रेम माना है। जहाँ-जहाँ उन्हें रूपाकर्षण का वर्णन करना पड़ा है, वहाँ-वहाँ उन्होंने चकोर और चन्द्रमा को लेकर उपमायें दी हैं। और जहाँ उन्हें अत्यन्त तीव्र प्रेमासक्ति का वर्णन करना है वहाँ वह चातक, मेघ और स्वाति की बात सामने रखते हैं। चातक के अनन्य प्रेम के सम्बन्ध में उनके अनेक दोहे मिलते हैं। चातक-प्रेम तुलसी की रामभक्ति का प्रतीक है। उनकी चातक के प्रति कुछ सूक्तियाँ ये हैं—

उपल बर्षि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर॥
पवि पाहन दामिनि गरज झरि झकोर खरि खीझि।
रोषत प्रीतम दोष लखि तुलसी रामहिं रीझि॥
मान राखिबो माँगिबो पिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं जो चातक मत लेहु॥
तुलसी चातक ही फबै मान राखिबो प्रेम।
बक्र बुन्द लखि स्वातिहूँ निदर निबाहत नेम॥
तुलसी चातक माँगिबो एक-एक घन दानि।
देत जो भू भाजन भरत लेत जो घूटक पानि॥
चातक जीवन दाम कहि जीवन रामय कुरीति।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति॥
प्रेम न परखिअ परुषपन पयद सिखावन एह।
जगकह चातक पातकी ऊसर बरसै नेह॥
चरग चंचु गत चातकहिं नेम प्रेम की पीर।
तुलसी परबस हाड़ पर परिहैं पुहुमी नीर॥
जिअत न नाईं नारि चातक घन तजि दूसरहिं।
सुरसरिहू को बारि मरत न माँगेउ अरध जल॥
तुलसी के मत चातकहिं केवल प्रेम पिआस।
पिअत स्वाति जल जान जग जाचत बारह मास॥

(दोहावली)

६

धर्म और दर्शन

तुलसी कवि ही नहीं थे। वे महान् धार्मिक नेता थे। उत्कृष्ट तत्त्ववेत्ता थे। प्राचीन परिभाषा में हम उन्हें ऋषि कह सकते हैं। उन्होंने धर्म के व्यापक रूप को पहचाना था और परम्परागत दार्शनिक मतवादों का गहरा अध्ययन किया था। उनका काव्य धर्म और दर्शन से पुष्ट है और उनकी रचनाओं में धर्म और दर्शन के महान् सिद्धान्तों को काव्य का रूप मिला है।

धर्म वह है जो धारण करता है—जो सामाजिक स्थिति को बनाये रखता है। इस प्रकार स्वयं धर्म शब्द में उच्छृङ्खलता का निरोध है और मर्यादा का संदेश है। तुलसी का धर्म रामभक्ति है परन्तु इस रामभक्ति को समझने से पहले हमें तुलसी के राम की परिभाषा समझ लेना होगी। तुलसी के राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। तुलसी के इस आदर्श में ही श्रेष्ठ सामाजिक भाव सन्निहित हैं। राम के महान् मर्यादापूर्ण चरित्र को सामने रखकर तुलसी ने अपने युग के धर्म को उच्च धरातल पर उठाने की चेष्टा की है। उनके समय में समाज की स्थिति इस प्रकार थी—

बरन धर्म नहिं आश्रमचारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारम्भ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥

सोइ सयान सो परधनहारी। जो कर दंभ सो बड़ अधिकारी ॥
जो कह झूँठ मसखरी नाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना ॥
निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी। कलियुग सोइ ग्यानी सो विरागी ॥
जाकें नख अरु जटा विशाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥

असुभ वेप भूपन धरें, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥

(उ० ९८ क)

जे अपकारी चार, तिंह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम वचन लवार, तेइ वकता कलिकाल महँ ॥

(९८ ख)

नारि विवस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नर मर्कट की नाईं ॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥
सब नर काम-लोभ-रत क्रोधी। देव विप्र श्रुति संत विरोधी ॥
गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि परपुरुष अभागी ॥
सौभागिनी विभूषन हीना। विधवन्ह के सिंगार नवीना ॥
गुर सिख बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा ॥
मातु पिता बालकहिं बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ॥

ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसर बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहिं विप्र गुरु घात ॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखावहि डाटि ॥

(९९ ख)

राम के मर्यादाभाव में और शील-सौजन्य में धर्म के सामाजिक पहलू को आगे बढ़ाया है।

परन्तु वे यहीं नहीं रुक जाते। धर्म तो अधिकतर वैयक्तिक साधना ही है। इसीलिये तुलसी व्यक्ति की साधना, व्यक्ति के परिष्कार पर विशेष बल देते हैं। आदर्श व्यक्ति के रूप में उन्होंने संत की कल्पना की है—

षट विकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्यसार कवि कोविद जोगी ॥
सावधान मानद मदहीना। धीर धर्मगति परम प्रवीना ॥

गुनागार संसार दुख, रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय, तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥ ४५

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। बाल सुभाउ सबहिं सन प्रीती ॥
जप तप व्रत दम संजम नेमा। गुरु गोविन्द बिप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुनहिं सदा ममलीला। हेतु रहित पर हित रत लीला ॥

(अरण्य)

बिषय अलंपट सील गुनाकर। परदुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रानसम मम ते प्रानी ॥

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विजपद प्रीति धर्म जनयत्री॥
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुनमंदिर सुखपुञ्ज॥ ३८॥

(उत्तरकांड)

उन्होंने 'धर्मरथ' के रूपक के द्वारा श्रेष्ठ वैयक्तिक गुणों के संग्रह का उपदेश दिया है—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वाजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन को दंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

(लंकाकांड ८० क)

वास्तव में उन्होंने धर्म के तीनों विभागों में आश्चर्यजनक सामञ्जस्य उपस्थित कर दिया है। उन्होंने धर्म को व्यक्ति के प्रतिदिन के कार्यक्रम के भीतर से देखा है और उसे केवल परलोकचिंता तक ही सीमित नहीं किया है। उनका उद्देश्य 'इसी जीवन में विश्राम (आध्यात्मिक शांति) प्राप्त करना है। इसके लिये पहले श्रेष्ठ वैयक्तिक

एवं सामाजिक गुणों का संग्रह हो जाना चाहिए। यही रामभक्ति की पहली सीढ़ियाँ हैं। इन्हीं से होकर हम सच्चे अर्थों में धर्मनिष्ठ हो सकते हैं। परन्तु हमें याद रखना चाहिए कि तुलसी की परिभाषा में हम धर्मनिष्ठा को रामनिष्ठा कहेंगे। स्वयं तुलसी की रामनिष्ठ धर्म-भावना में बराबर विकास होता गया है। तुलसी राम के गुणगान और कथा-कीर्तन (सगुण परब्रह्म राम की भक्ति) से आरम्भ करते हैं और रामनाम की साधना (निर्गुण परब्रह्म राम का नामस्मरण) से होते हुए मानसिक पूजा तक पहुँचते हैं। विनयपत्रिका के एक पद में इस मानसिक पूजा का रूप इस प्रकार स्फुटित हुआ है—

ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन।
हरन दुख द्वन्द्व गोविन्द आनन्दघन ॥

अचर चर-रूप हरि सर्वगत, सर्वदा
बसत, इति बासना धूप दीजै।
दीपु निज बोधु गत कोह-मद-मोह-तम
प्रौढ़ अभिमान चित्तवृत्ति छीजै ॥
भख अतिसै बिसद प्रवर नैवेद्य सुभ
श्री रमण परम संतोषकारी।
प्रेम तांबूल गत सूल संसय सकल
विपुल भव वासना बीजहारी ॥
असुभ-सुभ कर्म-घृत-पूर्ण दस वर्तिका
त्याग पावक, सतोगुन प्रकासं।
भक्ति वैराग्य विग्यान-दीपावली
अर्पि नीराजनं जग निवासं ॥
विमल हृदि भवन कृत संगति परजंकसुभ
सयन विश्राम श्री राम रामा।

क्षमा करुना अमुख नत्र परिचारिका
जत्र हरि तत्र नहिं भेद, माया ॥
आरती-निरत सनकादि, श्रुति सेषु सिव,
देवरिषि, अखिल मुनि तत्त्वदर्सी।
करै सोइ तरै परिहरै कामहि भलै
वदति इति अमलमति दास तुलसी ॥

धर्म और दर्शन का अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। राम-भक्ति धर्म को उपस्थित करते हुए तुलसी को प्रसंगतः इस सम्बन्ध में भी विचार करना पड़ा है। दर्शन के अनेक विषय हैं, परन्तु तुलसी केवल मुख्य विषयों को लेकर ही चले हैं। ये मुख्य विषय हैं—१. जीव, माया और ईश्वर की परिभाषाएँ और इन तीनों का सम्बन्ध, २. संसार की स्थिति के सम्बन्ध में मत, ३. विशुद्ध ज्ञान और उसकी प्राप्ति के साधन।

तुलसी सगुण दाशरथि राम और निर्गुण ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं मानते। उनका दृष्टिकोण ठीक भागवत जैसा है जिसके अवतीर्ण कृष्ण निर्गुण ब्रह्म ही हैं। मानस का सारा ढाँचा परात्पर ब्रह्म और दाशरथि राम में एकात्म स्थापित करने के लिए ही खड़ा किया गया है। सती को भ्रम है—

ब्रह्म जो निर्गुण विरज अज, व्यापक अखिल अभेद।
सो कि देह धर होइ नर, जाहि न जानत वेद ॥

इसीलिए जहाँ अध्यात्म रामायण में पृथ्वी को साथ लेकर ब्रह्मा विष्णु-धाम पहुँचते हैं, वहाँ तुलसी शिवद्वारा तर्क उपस्थित करते हैं—

बैठे सुर सब करहिं विचारा। कहँ पाइय प्रभु करिय पुकारा॥
पुर वैकुण्ठ जान कहँ कोई। कोइ कह पयनिधि महँ बसु सोई॥
जाके हृदय भक्ति जस प्रीती। प्रभु तेहि प्रगट सदा यह रीती॥
तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाय वचन इक कहेऊँ॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना॥
देशकाल दिशि विदिशिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित विरागी। पवन ते प्रकट होहि जिमि आगी॥
मोर वचन सबके मन माना। साधु-साधु करि ब्रह्म बखाना॥

तुलसी को यह परिवर्तन इसलिये ही करना पड़ा है कि उन्होंने राम को विष्णु का अवतार नहीं माना है, जैसा अध्यात्म में है, वरन् परात्पर ब्रह्म का अवतार माना है; जो सर्वव्यापक है, किसी विशिष्ट लोक में निवास नहीं करता।

परात्पर ब्रह्म और दाशरथि राम के सम्बन्ध को तुलसी ने पग-पग पर स्पष्ट कर दिया है। उत्तरकांड में वे कहते हैं—

व्यापक ब्रह्म अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ एक भगवन्ता॥
सोइ सच्चिदानन्द घनश्यामा। अज विज्ञानरूप गुणधामा॥
अगुण अदम्य गिरा गोतीता। समदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्गुण निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनासी॥
इहाँ मोह कर कारण नाहीं। रवि सम्मुख तम कबहुँ न जाहीं॥

भक्त हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप॥
यथा अनेक भेष धरि नृत्य करै नट कोय।
जोइ सोइ भाव देखावै, आपु न होइ न सोय॥

परन्तु दाशरथि राम ब्रह्म से कम ऐश्वर्यशील नहीं हैं। कौशल्या, मंदोदरी और कागभुशुण्डि के विराट्-रूप-दर्शन-प्रकाशन सम्बन्धी स्थलों में राम का अमित ऐश्वर्य प्रगट हुआ है। दाशरथि राम के रूप में भी राम चिरलीलामय, अनन्त, चिर-एक हैं। उस रूप में भी वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश के ऊपर हैं, उनके आराध्य हैं—

उदर माझ सुनु अण्डज राया। देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया॥
अति विचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका॥
कोटिन चतुरानन गौरीशा। अगणित उडुगण रवि रजनीशा॥
अगणित लोकपाल यम काला। अगणित भूधर भूमि बिसाला॥
सागर सरि सर विपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि विस्तारा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥

एक एक ब्रह्माण्ड महँ, रहेउँ वर्ष शत एक।
इहि विधि देखत फिरउँ मैं, अण्ड कटाह अनेक॥
(उत्तरकांड ८० (ख))

लोक-लोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न विष्णु शिव मनु दिसित्राता॥
नर गंधर्व भूत वैताला। किन्नर निशिचर पशु खग व्याला॥
देव दनुज गण नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती॥
महि सर सागर सरि गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनहिं आना॥
अण्डकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा॥
अवधपुरी प्रति भुवन निहारी। सरयू भिन्न भिन्न नर नारी॥
दशरथ कौशल्या सुनु ताता। विविध रूप भरतादिक भ्राता॥
प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा। देखेउँ बालविनोद अपारा॥

भिन्न भिन्न मैं दीख सबु, अति विचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु, राम न देखेउँ आन॥
(उत्तरकांड ८१ (क))

सोइ सिसुपन सोइ सोभा, सोइ कृपालु रघुबीर।
भुवन-भुवन देखत फिरउँ, प्रेरित मोह समीर॥

(उत्तरकांड ८१ (ख))

शिव दाशरथि राम के भक्त हैं। ब्रह्मा, विष्णु, वेद, ऋषि, देवता उनकी स्तुति करते है। उनकी शक्ति की सीमा नहीं। त्रिलोकी में कहीं भी उनसे बचकर जाया नहीं जा सकता (देखिये कागभुशुण्डि-प्रसंग)। इस प्रकार वे परात्पर ब्रह्म से कम रहस्यमय नहीं। उनके चरित्र को तुलसी बार-बार रहस्य या "गुप्त" कहते हैं। जब यह दाशरथि राम इस लोक में लीला नहीं करते होते तब वे साकेतधाम में निवास करते हैं। इन साकेतवासी राम और दाशरथि राम में रूप-गुण किसी बात का अंतर नहीं।

तुलसी ब्रह्म और जीव में अभेदत्व के पोषक हैं। लक्ष्मण-गीता में इस भेद में अभेद की समस्या को स्वयं राम माया के अस्तित्व द्वारा सुलझाते हैं। जीव ब्रह्म है परन्तु माया के कारण वह यह बात नहीं जान पाता। जीव माया के वश में है। ब्रह्म मायाप्रेरक है, माया का स्वामी है।

माया ईश न आपु कहँ, जान कहिय सो जीव।
बंध मोक्षप्रद सर्वपर, माया प्रेरक सीव॥

यहाँ तक अद्वैत है। परन्तु जहाँ अद्वैतवादी माया को भ्रममात्र मानते हैं, उसकी केवल व्यावहारिक सत्ता को मानते हैं, पारमार्थिक सत्ता को नहीं, उस प्रकार तुलसी नहीं मानते। तुलसी माया के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं—

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बश कीन्हे जीव निकाया॥

(भेद-स्थापन माया का गुण है)

गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सोइ सब माया जानेहु भाई ॥

(प्रकृति माया है)

तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा । जा वश जीव परा भवकूपा ॥
एक रचै जग गुण वश जाके । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके ॥

(माया के दो रूप हैं विद्या और अविद्या । विद्या तत्त्वों का वह विकार है जिसने गुण-युक्त संसार की रचना की । अविद्या मन का विकार है जो जीव को सांसारिकता में फँसाये रखता है ।) ब्रह्म-विद्या माया को प्रेरित करके उस गुणात्मक संसार की रचना कराता है जो मनुष्यमात्र को देशकाल बंधन में बाँधता है । अविद्या माया के अंग हैं—१. मोह, २. काम, ३. कृष्ण, ४. क्रोध, ५. लोभ, ६. श्रीमद, ७. ममता, ८. मत्सर, ९. शोक, १०. चिन्ता, ११. मनोरथ, १२. सुत-वित-नारी-ईर्षणा ।

यह सब माया कर परिवारा । प्रबल अमित को बरनै पारा ।
शिव चतुरानन देखि डेराहीं । अपर जीव केहि लेखे नाहीं ॥

व्यापि रह्यो संसार महुँ, माया कटक प्रचंड ।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाषंड ॥ ७१ (क) ॥
सो दासी रघुबीर कै, समुझें मिथ्या सोपि ।
छूटै न रामकृपा बिनु, नाथ कहउँ पद रोपि ॥ ७१ (ख) ॥

सो माया सब जगहिं नचावा । जासु चरित लखि काहु न पावा ॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा । नाच नटी इव सहित समाजा ॥

(उत्तरकांड)

वास्तव में तुलसीदास ब्रह्म, जीव और माया की समस्त परिभाषाओं को अपूर्ण समझकर आपेक्षिक परिभाषाएँ देते हैं—

माया ईश न आपु कहँ, जान कहिय सो जीव। (जीव)
बंध मोक्षप्रद सर्वपर माया प्रेरक सीव॥ (ब्रह्म)

सो माया सब जगहिं नचावा।
जासु चरित लखि काहु न पावा॥ (माया)

इस प्रकार वे माया और जीव के सम्बन्ध से ब्रह्म को स्पष्ट करने में सफल हो सके हैं। अद्वैतवादी जहाँ माया को भेद-बुद्धि उत्पन्न करनेवाला जीव, ब्रह्म और प्रकृति के एकता पर आवरण मात्र मानते हैं जो स्वयम् असत्य या भ्रम है, वहाँ तुलसीदास माया को मन का भ्रम या असत्य आवरण मात्र नहीं कहते। माया सत्य है, वह "सियाराम" और "सब जग" की एकता के सम्बन्ध में उपासक को भ्रांत कर देती है। यह कुबुद्धि है। अविद्या है। माया-संभव-भ्रम के कारण ही मनुष्य ब्रह्म (राम) की शक्तियों को सीमित समझता है। भगवत्कृपा से इस भ्रम का, नाश होने पर अभेद-बुद्धि उत्पन्न होती है जो अंततः अद्वैत स्थिति को जन्म देती है। तुलसी ने लिखा भी है—

माया संभव भ्रम सब, अब न व्यापिहहिं तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि॥

(उत्तरकांड)

अभेद-भक्ति का फल है मोक्ष। परन्तु तुलसी अभेद-भक्ति से भेद-भक्ति को बड़ा मानते हैं जिसका फल स्वयम् अभेद-भक्ति है—

तातें उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद-भगति मन लायो॥
सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥

(अयोध्याकांड)

तुलसी ज्ञान को मोक्षप्रद मानते हैं। (ज्ञान मोच्छप्रद वेद बखाना—उत्तरकांड) और ज्ञानाश्रयी भक्ति या अभेदभक्ति में भक्त भगवान में लीन होकर सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है—

तजि जोग पावक देह हरिपद लीन यह जग नहिं फिरे।

परन्तु भेद-भक्ति के अंत में सान्निध्य प्राप्त होता है—

तातें मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति उर लयऊ॥

जीव-ब्रह्म के अभेद के सम्बन्ध में तुलसी अद्वैती हैं—

सो तैं ताहि ताहि नहिं भेदा। वारि बीचि इव गावहिं वेदा॥

यह पारमार्थिक स्थिति है। व्यवहार में मायाजन्य भेद हो जाता है—

परवस जीव स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥
सुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥

इस भेद का बोध है हरिकृपा।
ब्रह्म और प्रकृति के सम्बन्ध में भी तुलसी अद्वैती हैं—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा।
यत्सत्वाद् मृषैवभाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः॥

(रस्सी में साँप का भ्रम—इससे स्पष्ट है कि यह जगत् ब्रह्म, सत्य है: यह जो जगत जान पड़ता है सो मिथ्या है)

> रजत सीप महँ भास जिमि, जथा भानुकर बारि।
> जदपि मृषा तिहुँ काल महँ, भ्रम न सकइ कोइ टारि॥

एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जो अपने सिर काटै कोई। बिन जागे न दूरि दुख होई॥

और

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥

यह है ब्रह्म और जगत् का परस्पर सम्बन्ध। ज्ञान से—जागने से—सपने का भ्रम दूर हो जाता है और हम सच्ची वस्तुस्थिति से परिचित होते हैं। परन्तु यह ज्ञान पांडित्य द्वारा प्राप्त नहीं होता। यह ज्ञान तो जीव, ब्रह्म और प्रकृति के अभेदत्व का आत्मानुभव है। भगवान् ही चाहे तो इस प्रकार का आत्मानुभव हो सकता है—

सोइ जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरि कृपा तुम्हहिं रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत-उरचन्दन॥

अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तुलसी ने मूलतः शंकराद्वैत को ही स्वीकार किया है परन्तु कई दृष्टिकोणों में वे फिर भी उससे भिन्न हो जाते हैं :—

१. तुलसी माया को भ्रम मात्र नहीं मानते। वे उसकी सत्ता को यथार्थ समझते हैं। माया का अपना अस्तित्व है। वह भगवान् की

शक्ति है। उन द्वारा ही प्रेरित होती है। उनके वश में है। शंकराद्वैत में माया की सत्ता भ्रममूलक है। ब्रह्म मे उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

२. तुलसी जगत की स्थिति को व्यावहारिक सत्य नहीं मानते, न जीव-ईश्वर के भेद को व्यावहारिक सत्य मानते हैं। यह तो भेद-बुद्धि है ही जो मायाजन्य है। यह भेद-बुद्धि सत्य है, भ्रम नहीं।

३. तुलसी ज्ञान से इस भेद-बुद्धि का नाश उसी तरह मानते हैं जिस तरह शंकर ज्ञान से व्यावहारिक दशा का बोध होकर मोक्ष प्राप्ति को स्वीकार करते हैं। परन्तु वे ज्ञान को ब्रह्म की अनुकंपा से जोड़ देते हैं। जीव के कुछ करने-धरने से यह "ज्ञान" नहीं मिलता। यह तो आत्मानुभव है जो ईश्वर की कृपा के बिना असम्भव है। इस प्रकार तुलसी का यह ज्ञान शंकर के "ज्ञान" से भिन्न है। यद्यपि फल दोनों का मोक्ष है।

४. यह "ज्ञान" हो जाने पर भी कि सारा जगत "सियाराममय" है, तुलसी साधना के लिए उपासक-उपास्य और सेवक-सेव्य की भेदबुद्धि को ही स्वीकार करते हैं जिसका अंत होता है "भेद-भक्ति" में (जिससे सायुज्य की नहीं, सान्निध्य अविरल भक्ति की ही प्राप्ति होती है)। तुलसी इस "अविरल रामभक्ति" को "मोच्छ" से अधिक अच्छी स्थिति मानते हे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी शंकर के "विवर्तवाद" को पूर्णतः स्वीकार नहीं करते। माया जितनी सत्य है, उतना जगत भी सत्य है। यह सत्यता भेदबुद्धि के कारण है जो मायाजन्य है। भेद-

बुद्धि के दूर होने पर जगत् और ब्रह्म एक हो जाते हैं। परन्तु भेद-बुद्धि का सर्वथा नाश असंभव है। अतः जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध में इतनी भेद-बुद्धि बनी रहे कि उपासक-उपास्य का नाता जोड़ा जा सके तो तुलसी को कुछ कहना नहीं है। इतनी भेदबुद्धि से उन्हें लक्ष्य प्राप्ति में सहायता ही मिलेगी। इस प्रकार उनके लिए उपास्य-उपासक का सम्बन्ध व्यावहारिक दशा का सम्बन्ध नहीं है, जीव ब्रह्म का अन्तिम वांछनीय सम्बन्ध है। इसी दृष्टिकोण के कारण जहाँ अद्वैतवादी ज्ञान को श्रेय देते हैं, वहाँ तुलसी ज्ञान को स्वतंत्र पथ नहीं मानते, वे भक्ति को स्वतंत्र पथ मानते हैं, ज्ञान से ऊँचा मानते हैं—

जाते वेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो स्वतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ज्ञान विग्याना॥

ज्ञानदीपक और भक्तिमणि की तुलना से उन्होंने भक्ति की ज्ञान की अपेक्षा अधिक उपादेयता सिद्ध की है। ज्ञान का फल है मुक्ति, भक्ति का फल है स्वयं भक्तिभावना का उत्तरोत्तर विकास—मुक्ति तो उसके पीछे ही दौड़ती है। हरिभक्ति के विना मोक्ष सुख भी अधिक देर नहीं टिक सकता। ज्ञान और भक्ति का भी यही सम्बन्ध है—

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥

और—

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥
अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भक्ति लुभाने॥

ज्ञान और भक्ति के विषय में तुलसी एकदम निश्चित हैं—

... अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावै कोऊ। भक्तिहीन मोहि प्रिय नहि सोऊ॥

माया सत्य है परन्तु ब्रह्म से अलग नहीं है। वास्तव में वह ब्रह्म ही की शक्ति है। इसीलिए असत्य भी नहीं हो सकती। ब्रह्म से जो अलग है वह ब्रह्म के सम्बन्ध से ही सत्य है, वरन् है ही नहीं। इसीसे तुलसी कहते हैं—

जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव सो रघुराया॥

तुलसी ने जानकी को भी माया कहा है—

आदि शक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥

श्रुति सोइ पालक राम तुम्ह जगदीश माया जानकी।

जानकी कारणमाया हैं। कार्यमाया हैं विद्या, अविद्या। विद्या माया गुणात्मक संसार की सृष्टि करती है, स्वयं उसमें कोई बल नहीं, वह हरिप्रेरित है। अविद्या-माया असंख्य विकारों की जननी है। वह भी हरि की दासी है। तुलसी ने सीता और राम को अभिन्न कहा है—

गिरा अरथ जल बीच सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीतारामपद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

यही वस्तुतः ब्रह्म और उसकी माया की स्थिति है।

परन्तु तुलसी यह कहकर भी कि यह जगत आदि अंत मध्य में भगवान् है—

आदि मध्यांत, भगवंत! तं सर्वगत मीश
पश्यन्ति ये ब्रह्मवादी।

जथा पट-तंतु, घट-मृत्तिका, पुष्पस्त्रग,
दारुकरि, कनक कटकांगदादी ॥

(विनयपत्रिका)

अंत में इस अनिर्वचनीयवाद पर उतर आते हैं—

केशव कहि न जाइ, का कहिए।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहि, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटै न मरइ भीति दुख पाइअ एहि तनु हेरे॥
रविकर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं॥
कोउ कह सत्य झूठ कह कोई, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसीदास परिहरैं तीनि भ्रम सो आपनु पहिचानै॥

(विनयपत्रिका)

संक्षेप में, तुलसी जगत की स्थिति को ब्रह्म (राम) के नाते सत्य समझते हैं और ऐसा समझकर उसे प्रणाम भी कर लेते हैं, परन्तु जीव जिसे संसार समझता है (अर्थात् जीव जिसे ब्रह्म से भिन्न स्वतंत्र सत्ता समझता है), वह आभास-मात्र है—

यत्सत्त्वाद् मृषैवभाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।

(जिसकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति सारा जगत सत्य-सा प्रतीत होता है)। स्पष्ट है कि तुलसी ने माया की स्थिति को स्वीकार किया है, परन्तु उसे परतंत्र बनाकर भी एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान कर दिया है। शंकर के मतवाद से तुलसी का मतवाद स्पष्टतः भिन्न है। तुलसी ईश्वर, माया, जीव की स्वतंत्र

स्थिति में विश्वास करते हैं. परन्तु यह स्वतंत्रता भी आपेक्षिक है क्योंकि वास्तव में—

ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँधेउ कीर मरकट की नाईं ॥
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी ॥

× × ×

जीव हृदयँ तम मोह बिसेखी। ग्रन्थि छूटि किमि परइ न देखी ॥

उत्तरकांड के अंतर्गत ज्ञानदीपक के रूपक में तुलसी ने विशुद्ध ज्ञान और उसकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन किया है—

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपा हृदयँ बस आई ॥
जपतप व्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा ॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई ॥
नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परमधर्म मय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै ॥
मुदिताँ मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥

जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ॥
तब बिग्यान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ ॥

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥
ऐहि बिधि लेसै दीप तेज रासि विग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। उर गृहँ बैठि ग्रन्थि निरुआरा॥
छोरन ग्रन्थि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई॥

(उत्तरकांड ११७-११८)

परन्तु तुलसी ज्ञानमार्गी नहीं, भक्तिमार्गी थे। इसलिये उन्होंने ज्ञान और भक्ति में कौन उपादेय है, इस प्रश्न को दूर तक चलाया है। इस प्रश्न को उपस्थित करते हुए उन्होंने धर्म और दर्शन का गठबंधन किया है :—

(१) राम ही ईश्वर (ब्रह्म) हैं।

(२) ज्ञान और भक्ति दोनों से उनकी प्राप्ति हो सकती है, परन्तु भक्ति में ज्ञान की अपेक्षा कुछ विशेषताएँ हैं, अतः वह सुगम है। ज्ञान के साधक को पगपग पर कठिनाई पड़ती है, उसे कृपाण की धार पर चलना होता है जिस पर से गिरते हुए देर नहीं लगती। भक्ति का पथ सुगम राजपथ है। ज्ञानी माया के जाल में पड़कर साधना भ्रष्ट हो जाता है, परन्तु भक्त को इस प्रकार का डर नहीं है। इसे ही तुलसी ने ज्ञानदीपक और भक्ति चिन्तामणि के रूपकों से स्पष्ट किया। ज्ञान के दीपक को माया की फूँक पल भर में बुझा देती है, परन्तु भक्तिमणि तो निरन्तर देदीप्यमान है। माया का परिवार उसके निकट फटक ही नहीं पाता—

रामभगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधा सम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
ब्यापहिं मानस-रोग न भारी। जिन्हके बस सब जीव दुखारी॥

इन मानस रोगों की एक सूची तुलसी ने स्वयं इस प्रकार दी है—मोह, काम, लोभ, क्रोध, विषय-मनोरथ, ममता, ईर्ष्या, हर्ष-विषाद, पर सुख देखि जरनि, दुष्टता, अहंकार, दंभ, कपट, मद, मान, तृष्णा, मत्सर, अविवेक। —(उत्तर १२१)

परन्तु तब प्रश्न यह आता है कि रामनिर्गुण ब्रह्म से सगुण अवतारी पुरुष कैसे हो गये और ब्राह्मण के इन दोनों रूपों में कौन उपार्जनीय है। तुलसी के मत में सगुण दाशरथि राम सुगम है परन्तु वे अपनी मौलिक सामञ्जस्य प्रवृत्ति के कारण रामनाम को निर्गुण और सगुण राम दोनों से बढ़कर रख देते हैं। जो हो, तुलसी की आसक्ति सगुण रामभक्ति की ओर ही है। रामकथा का आरम्भ विशुद्ध दार्शनिक प्रश्नों से ही होता है।

(१) राम कौन हैं ?

(२) क्या दाशरथि राम ही निर्गुण ब्रह्म हैं ?

(३) निर्गुण ब्रह्म अवतारी पुरुष राम कैसे हुए और क्यों हुये ? तुलसी ने जहाँ इन सब प्रश्नों का समाधान उपस्थित किया है वहाँ रामभक्ति के प्रतिपादन और रामकथा के वर्णन सविस्तार हैं। इस प्रकार वे दर्शन को काव्यभूमि पर स्थापित कर जनमन-रंजन और सर्वोपयोगी बना सके हैं।

७

काव्य

तुलसी हिन्दी के श्रेष्ठतम कवि हैं। उनके काव्य के सम्बन्ध में दो मत हो ही नहीं सकते। उत्कृष्ट काव्य के गुण हैं ईमानदारी, विषय में तन्मयता, कला की सादगी, अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता और कल्पना की उच्चता। तुलसी के काव्य में इन गुणों के सिवा कितने ही अन्य गुण है। तुलसी ने कोई भी पंक्ति ऐसी नहीं लिखी है जिसका सम्बन्ध राम या रामाश्रित जीवन से न हो—यही उनकी ईमानदारी का काफ़ी सबूत है। वे नर-गुणगान करनेवाले "प्राकृत" कवियों के युग में होते हुये भी उनसे प्रभावित न हुए, यह कितने बड़े आत्मबल की बात है। भले ही आज राम के ईश्वरत्व से इंकार कर दिया जाय, परन्तु तुलसी की शतशः पंक्तियाँ जिस श्रद्धा और भक्ति के साथ राम का नाम लेती हैं, उनका प्रभाव उसी तरह बना है। कवि अपने नायक के मानवेतर गुणों और उनके ईश्वरत्व के सम्बन्ध में इतना निश्चित है कि विनयपत्रिका के कुछ पदों को छोड़कर हम कहीं भी उसे डिगता हुआ नहीं पाते। विषय में तन्मयता की बात मानस और विनयपत्रिका के पाठक मात्र जानते होंगे। तुलसी ने दोहे-चौपाइयों के सीधे-सादे कलाहीन वृत्तों को लेकर प्रतिदिन की भाषा में गहरे-से-गहरे भाव भर कर कला को धन्य कर दिया है। झोपड़ियों में रहने वाले अक्षरज्ञान से रहित किसान तक तुलसी की पंक्तियों में अर्थ और भाव का आनन्द ले लेते हैं। प्रसाद-गुणभूषित तुलसी का काव्य मंत्र हो गया है। अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता देखना हो तो उत्तरकांड के

दार्शनिक और धार्मिक मतवादों को पढ़िये। कवि की कल्पना कितनी ऊँची जाती है इसके लिये दूर नहीं जाना पड़ेगा। सीता की उपमा देते हुए तुलसी कल्पना की पराकाष्ठा तक पहुँच जाते हैं—

सिय सोभा नहिं जाय बखानी। जगदम्बिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृति नारि अंग अनुरागी॥
सीय बरनि तेहि उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई॥
जौं पटतरिय तीय सम सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिस-बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही॥
जौं छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथइ पानि पंकज निज मारू॥

एहि बिधि उपजइ लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय-सम तूल॥

—(बालकाण्ड २४७)

वास्तव में तुलसी का काव्य प्रत्येक प्रकार से महान् है।

रामचरित मानस एक बृहद् कथाकाव्य है, जिसमें काव्य कथा के बाहर की वस्तु नहीं रह सकती। उसका उपयोग कथा के भीतर ही है। इसलिये यह आवश्यक है कि कवि काव्योपयोगी कथास्थलों को भली भाँति पहचानता हो। तुलसी ने ऐसे स्थल पहचाने ही नहीं हैं, जहाँ उनकी आवश्यकता हुई है, वहाँ उनका निर्माण भी किया है। काव्योपयोगी स्थल मुख्यतः बालकांड और अयोध्याकांड में हैः राम-जन्म (वर्णन, अलंकार), राम का बचपन (वात्सल्यरस), पूर्वराग (वर्णन, शृंगार, अलंकार), स्वयंवर और विवाह (वर्णन),

परशुराम लक्ष्मण संवाद (संवाद), दशरथ का संघर्ष (वर्णन, संवाद, मनोविज्ञान) वनवास (वर्णन, मानसिक संघर्ष) वनपथ (वर्णन), भरत का संघर्ष (मनोविज्ञान), चित्रकूट (वर्णन, कूट-नीति, राजव्यवहार, भरत का चरित-चित्रण)। इन कांडों के अतिरिक्त अन्य कांडों में भी काव्योपयोगी स्थल चुने गये हैं—अरण्य (राम का विरहोन्माद, वसंत-वर्णन, पंपावर्णन), किष्किंधा (वर्षा शरद् वर्णन), सुन्दर (वीर रस) लंका (युद्ध वर्णन, अलंकार), उत्तर अलंकार) इस प्रकार हम यह देख सकते हैं कि तुलसी की रामकथा रस, अलंकार, वर्णन, मनोविज्ञान और व्यवहार ज्ञान, गुण—सभी काव्यगुणों से पुष्ट है।

१. रस—वाल्मीकि की रामकथा वीर रसात्मक है, आध्यात्म की कथा इतने संक्षेप में है कि रसपरिपाक का अवसर ही नहीं आता। तुलसी की विशेषता यह है कि जहाँ उन्होंने सारी रामकथा में भक्ति-रस भर दिया है, वहाँ अंगी के रूप में नवरसों में से प्रत्येक को उचित स्थान मिला है। वाल्मीकि की भाँति वे एक ही रस को लेकर नहीं बैठ गये।

(१) वात्सल्य—किसी भी रामकथा-ग्रंथ में राम के बचपन का उल्लेख नहीं है। तुलसी की रामगीतावली में कृष्णकथा के समकक्ष राम की बाललीला का सुन्दर वर्णन किया है परन्तु वह रामचरितमानस में भी इस मौलिक प्रसंग का समावेश करना नहीं भूले हैं। —(बालकांड २३५)

(२) शृंगार—वाल्मीकि आदि में रामसीता के संयोग शृंगार का वर्णन नहीं है परन्तु तुलसी ने प्रसन्नराघव से इंगित लेकर पूर्वराग को उपस्थित किया है (बाल०)। विप्रलंभ बहुत कुछ वाल्मीकि के ढंग पर है, अंतर इतना है कि तुलसी के संयोग और विप्रलंभ

दोनों मर्यादित हैं। वास्तव में तुलसी ने आदर्श दाम्पत्य प्रेम का मर्यादा पूर्ण चित्रण किया है। राम-सीता का प्रेम लोकलज्जा का भाव लेकर चलता है, वह उच्छृंखल नहीं है, न वह राधाकृष्ण के प्रेम की भाँति एकांतिक है। तुलसी की रामायण को छोड़ कर गृहपति-गृहिणी के स्वस्थ प्रेम का ऐसा विशद चित्रण और कहीं नहीं है।

(३) वीर रस—मानस की कथा मूलतः वीरकाव्य का विषय है। वाल्मीकि के प्रत्येक कांड में वीरता के प्रसंग हैं परन्तु तुलसी ने ऐसे कितने ही प्रसंग हटा दिये हैं (जैसे ताड़का सुबाहु-वध) और कितने ही संक्षेप कर दिये हैं (देखिये लंकाकाड), परन्तु प्रसंगवश नये प्रकरण उपस्थित करने में भी वे नहीं चूके हैं जैसे लक्ष्मण का जनक सभा में क्रोध, निषाद का भरत-सेना देख कर क्रोध, लक्ष्मण का भरत-सेना देख कर क्रोध, राम का समुद्र पर क्रोध। सुन्दरकांड और लंकाकांड तो वीर रसपूर्ण हैं ही।

(४) रौद्र—वीरतापूर्ण प्रकरणों में वीर रस के साथ कहीं-कहीं रौद्र रस भी आ जाता है।

(५) वीभत्स—युद्धवर्णन के प्रसंग में वीर और भयानक रसों के संचारी के रूप में वीभत्स रस भी मिलता है, परन्तु स्वभावतः ऐसे स्थल कम हैं। मानस में कवि की दृष्टि उतनी रसोद्रेक पर नहीं, जितनी चरित्रनायक पर। हाँ, कवितावली के कुछ सवैयों में जैसे, "ओझरी की झोली काँधे" आदि, कवि ने इस रस का भी सफल चित्रण किया है।

(६) भयानक—भरत के प्रवेश के समय अयोध्या का बड़ा प्रभावोत्पादक वर्णन है जो भयानक रस के अंतर्गत आता है—

असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥
खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषु भयंकर लागा॥

खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम वियोग कुरोग बिगोए॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबनि सब संपति हारी॥

पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गवँहि जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय, विषाद मन माहिं॥

—(अयोध्याकांड १५८)

(७) करुण रस—करुण रस के कई प्रसंग मानस में हैं जिनमें मुख्य है दशरथ-मरण, राम-वनवास, लक्ष्मण को शक्ति लगना और अशोकवाटिका में सीता। सीता की करुणापूर्ण विरह दशा को हम करुण विप्रलंभ के अंतर्गत भी रख सकते हैं।

(८) अद्भुत रस—राम में देवत्व स्थापन से अद्भुत रस की सृष्टि हुई है। तुलसी बालक राम में ही अलौकिक घटनाओं का आरोप कर देते हैं—

एक बार जननी अन्हवाए। करि सिंगार पलना पौढ़ाए॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई॥
गै जननी सिसु पहिं भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कंप मन धीर न होई॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोर कि आन विशेषा॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी॥

देखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मंड॥

—(बालकांड २०१)

अगनित रवि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन॥
कालकर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ॥
देखी माया सब विधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही॥
तन पुलकित मुख वचन न आवा। नयन मूँदि चरननि सिर नावा॥
बिसमयवंत देखि महतारी। भये बहुरि सिसु रूप खरारी॥

—(बालकांड २०२)

भगवान् के विराट रूप के कई दर्शन मानस में मिलेंगे। इसी प्रकार परशुराम के दिए धनुष का आप चढ़ जाना—

देत चापु आपहिं चढ़ि गइऊ।

जैसे कितने ही प्रसंग इस रस की सृष्टि करते हैं।

(६) हास्य रस—तुलसी की प्रकृति में हास्य का सुन्दर पुट था। नारद-प्रसंग, शिव-बरात, लक्ष्मण-परशुराम संवाद, अंगद-रावण-संवाद और विवाह के अवसरों पर हास्यरसोपयोगी स्थल उन्होंने ढूंढ निकाले हैं और उनसे अपने काव्य को अलंकृत किया है। कवितावली में उन्होंने विन्ध्य के उदासी संतों की भी चुटकी ले ली है और उनका केवट (निषाद) अपने प्रभु से हँसी करने से नहीं चूकता।

सारी रामकथा के नव रसों का पर्यायवसान शांत रस में हुआ है और सारे रस भक्ति रस पर आश्रित हैं। इस प्रकार मानस रस-परिपाक की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। परन्तु मानस के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में विशेष रसों का सुन्दर चित्रण हुआ है जैसे विनयपत्रिका में दासतापूर्ण भक्ति, कवितावली में वीर रस,

भयानक रस और वीभत्स रस गीतावलियों में वात्सल्य, करुणा और शृंगार।

२. अलंकार अलंकारों की ओर तुलसी का आग्रह नहीं है उनको चमत्कार विशेष प्रिय नहीं है परन्तु सहज रूप से ही उनके काव्य में स्थल-स्थल पर अलंकार आ गये हैं। साधारणतः तुलसी प्रसाद गुण पर ध्यान रखते हुए कथा-प्रवाह में बहते चले जाते हैं परन्तु जहाँ मनोवैज्ञानिक स्थल आते हैं वहाँ निरलंकारिक भाषा-शैली को छोड़ कर आलंकारिक शैली को ग्रहण कर लेते हैं जैसे राम के धनुष तोड़ने पर—

सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई। पैरत थके थाह जनु पाई॥
श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छबि छूटे॥
सीय सुखहिं बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥
रामहिं लखनु बिलोकत कैसे। ससिहि चकोर किसोरकु जैसे॥

—(बालकांड २६३)

या कैकेयी-प्रसंग में दशरथ की दशा की अभिव्यंजना—

सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू॥
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु-सोचन॥
मोर मनोरथ सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥

—(अयोध्याकांड २९)

ऐसे स्थलों पर वे अलंकारों का प्रयोग रख कर अनुभूति को तीव्र एवं गहरा कर देते हैं।

परन्तु तुलसी के अलंकारों का प्रयोग कई ध्येयों को सामने रख कर हुआ है :—

१—मन:स्थिति का चित्रण—

सियहिं बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु ब्यालहि जैसे॥

—(बालकांड २५६)

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥
लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसे परम कृपन कर सोना॥

(वही)

२—सौन्दर्य का चित्रण—

छवि गृह दीप शिखा जनु बरई। (सीता)

प्रभुहिं चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिजु मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥

—(बालकांड २५८)

३—परिस्थिति का चित्रण—

अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि, भए नृपति बलहीन॥

—(बालकांड २३८)

नृप सब नखत करहिं उजिआरी। टारि न सकहिं चाप तम भारी॥
कमल कोक मधुकर खगनाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥
ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटे धनुष सुखारे॥
उयउ भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेजु प्रकासा॥
रवि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रतापु सब नृपहिं दिखाया॥
तव भुजबल महिमा उद्‌घाटी। प्रगटी धनु विघटन परिपाटी॥

—(बालकांड २३९)

उदित उदयगिरि मंच पर, रघुबर बाल पतंग।
बिकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग॥

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥

—(बालकांड २५५)

४—क्रिया का चित्रण—

लंका द्रौ कपि सोहहिं कैसे। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसे॥

—(लंकाकांड ४५)

परन्तु कुछ अलंकारों का इतना सार्थक प्रयोग नहीं हुआ है। उनमें चमत्कार प्रदर्शन और उक्ति-वैचित्र्य की प्रतिष्ठा करने की ही प्रवृत्ति अधिक है और ये काव्य रूढ़ियों पर आश्रित हैं जैसे—

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि, मृगपति सरिस असंक॥ ११(ख)

लिये भी वे दर्शन और मानव-स्वभाव और नीति की गहराइयों में उतर जाते हैं जैसे—

भूमि परत भा डाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥

वैसे तो तुलसी के मानस से लगभग सभी अलंकारों के उदाहरण इकट्ठे किये जा सकते हैं परन्तु उन्होंने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्त का ही प्रयोग अधिक किया है। इन अलंकारों के सुन्दर, सार्थक और सुष्ठु प्रयोगों में वे अद्वितीय हैं।

परन्तु हमें यह समझ लेना चाहिये कि तुलसी अलंकार लिखने के लिए अलंकार नहीं लिखते। वे इनके द्वारा रामकथा में काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं, परन्तु काव्य-सौन्दर्य धर्म-भावना को विकसित करने ही का साधन है। स्वयम् तुलसी के लिए उसका यही मूल्य है। उस युग में जब अलंकार, रस, रीति और छंद ही प्रधान हो रहे थे, जब कविता के बाह्यपक्ष ने कवि की सारी शक्तियों का ग्रास बना लिया था, तुलसी ने इनकी अवहेलना कर शुद्ध काव्य रस (या भक्ति रस) को ही लक्ष्य माना और अपने काव्य में इस आदर्श को निवाहा।

२. **वर्णन** कथात्मक काव्य मूलतः वर्णनात्मक होता है परन्तु यहाँ हमारा उद्देश्य विशेष वर्ण्य वस्तुओं का उद्घाटन है। वर्णन के कई भेद हो सकते हैं। १. सौन्दर्य वर्णन २. प्रकृति वर्णन ३. मनुष्य निर्मित वस्तुओं का वर्णन (नगर, सरोवर, ईर्ष्या) ४. उत्सव वर्णन ५. कथावर्णन ६. मनोभावों का वर्णन।

१—सौन्दर्य वर्णन—तुलसी ने सीता का सौन्दर्य केवल परोक्ष रूप में इंगित किया है परन्तु राम के सौन्दर्य के अनेक उत्कृष्ट चित्र

उपस्थित किए हैं। इनमें से अधिकांश बालकांड में हैं। तुलसी राम-भक्त हैं। भक्तिभावना के दृढ़ करने को ही वे अपने आराध्य राम के रूप-शील का बार-बार सविस्तार वर्णन करते हैं। मानस के बाल-कांड में राम के शिशु, बाल और किशोर रूपों के बहुत हृदयाकर्षक वर्णन मिलेंगे। इन्हें हम "नख-शिख" में अंतर्गत रख सकते हैं। मध्ययुग के कृष्णभक्त कवियों ने राधाकृष्ण के शतशः नख-शिख लिखे हैं। तुलसी अपने समय की इसी नखशिख-लेखन-परिपाटी से भी प्रभावित हुए होंगे। गीतावलियों के अनेक गीतों में राम का नख-शिख अत्यन्त सुन्दरता से कहा गया है।

२—प्रकृतिवर्णन—शुद्ध प्रकृति वर्णन का लगभग अभाव है परन्तु जैसा हम पहले कह चुके हैं धर्मतत्त्व से मिले हुए प्रकृति-चित्र बराबर मिलते हैं अथवा कभी-कभी रूपकों के रूप में उनका प्रयोग होता है :—

ऋतु (वर्षा, शरद, वसंत)

तडाग (पंपा सरोवर)

समुद्र (विनयपत्रिका में धर्मकष्टों की अभिव्यंजना के लिए)

मेघ (विनयपत्रिका में रूपक रूप में)

नदी (चित्रकूट)

सूर्योदय (बालकांड में दो बार प्रभाव सृष्टि के लिए)

चंद्रोदय (बालकांड में उद्दीपन के रूप में और लंकाकांड में ऊहापोह)

संध्या (बालकांड में अयोध्या के अगरुधूमाच्छादित सौन्दर्य के लिए)

वास्तव में तुलसी की दृष्टि राम को छोड़ कर दूसरी वस्तुओं की ओर कम जाती थी। वे शुद्ध कवि नहीं थे। भक्त-कवि थे। यदि वे

चाहते तो वाल्मीकि की भाँति अनेक सुन्दर प्रकृति चित्र दे सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। रामकथा का अधिकांश विकास वनों, पर्वतों और नदियों के सन्निकट हुआ है और वह भी एक दो वर्ष नहीं, चौदह वर्ष परन्तु हमारे दुर्भाग्य से तुलसी ने इतने बड़े अवसर रहते हुए भी प्रकृति की अवहेलना की।

३—मनुष्य-निर्मित वस्तुओं का वर्णन—तुलसी में नगरों, उपवनों, और प्रासादों के भी वर्णन प्रसंगतः आये हैं। रामकथा तीन नगरों में चलती है अयोध्या, जनकपुरी और लंका।

रामचरितमानस में इन तीनों का वर्णन इस प्रकार है—

अवधपुरी सोहइ एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥
अगर धूप वहु जनु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहु अरु नारी॥
मंदिर मनि समूह जनि तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥
भवन वेद धुनि अति मृदु वानी। जनु खग मुखर समय जनु सानी॥

—(वालकांड १९५)

पुरजन जावत अकनि वराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता॥
निज निज सुन्दर भवन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे॥
गली सकल अरगजाँ सिचाई। जहँ तहँ चौके चारु पुराई॥
वना वजारु न जाइ वखाना। तोरन केतु पताक विताना॥
सफल पूग फल कदलि रसाला। रोपे वकुल कदंव तमाला॥
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आल वाल कलकरनी॥

विविध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहि सब, रघुवर पुरी निहारि॥ ३४४॥

भूप भवन तेहिं अवसर सोहा। रचना देखि मदन मनु मोहा॥
मंगल सगुन मनोहर ताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई॥
जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृह छाए॥

—(बालकांड ३४५)

लंका का वर्णन कवि सुन्दरकांड में इस प्रकार करता है—

कनक कोट विचित्र मनि कृत सुन्दरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥
बन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नरनाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥
करि जतन भट कोटिन्ह विकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥

—(सुन्दरकांड ३)

पूर्व राग प्रसंग में उसने उपवन का भी सुन्दर वर्णन किया है। (बालकांड २२७)

४—उत्सव वर्णन—रामजन्म, राज्याभिषेक और राम के वनवास लौटने पर अयोध्यावासियों के आनन्दोत्सवों का स्वतंत्र सुन्दर वर्णन है। यहाँ हमें राम सीता विवाहोत्सव को नहीं भूलना चाहिये जो पूर्णतः मौलिक कृति है और बालकांड की रामकथा का आधा विस्तार जिसे दिया गया है (२८६—३६१)। पार्वती मंगल और जानकीमंगल में भी शिव-पार्वती और राम-सीता के विवाह के इसी

प्रकार के सूक्ष्म, विस्तृत और आकर्षक वर्णन हैं। राम-सीता लक्ष्मण वनवास को निकलते है तो सारे वनपथ में भीड़ लग जाती है। सब इन्हें देखने आते हैं। इस वनपथ के वर्णन को भी हम उत्सव वर्णन की श्रेणी का ही समझते हैं (अयोध्याकांड ११०—१३४)

५—कथा-वर्णन—कथावर्णन में तुलसीदास की पटुता सारे रामचरित मानस के निर्माण सौष्ठव और फुटकर कथाओं में विषय, परिस्थिति और वर्णन के ग्रहण और त्याग से भली भाँति प्रगट होती है। सारी कथाएँ अलग-अलग होकर भी एक सूत्र में अत्यन्त चतुरता से गूँथ दी गई हैं। ऐसा लगता है कि प्रत्येक प्रसंग अवांतर प्रसंग का उचित विकास है। कथा-संगठन में तुलसी ने इस बात का ध्यान रखा है कि वे कम से कम घटनाओं, कार्यव्यापारों और शब्दों का प्रयोग करें जिससे उसका रूप सुष्ठु बना रह सके। उन्होंने पौराणिक शैली को (कम-से-कम जहाँ तक रामचरितमानस का सम्बन्ध है) ग्रहण किया है, परन्तु उन्होंने पुराणकारों की भाँति अंतर्कथाओं को महत्त्व नहीं दिया है। जहाँ-जहाँ वाल्मीकि में इस प्रकार की अंतर्कथाएँ है (जिनका विस्तार कभी-कभी कई सर्गों तक चला गया है) वहाँ-वहाँ उन्होंने इनका निर्देश मात्र कर दिया है। उदाहरण के लिए—

भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे विप्र जद्यपि प्रभु जाना ॥ २०१ ॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा विशेषी ॥२०१॥
चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहाँ जगपावनि गंगा ॥
गाधि सुवन सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥२२२॥
तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई ॥१५५॥

६—मनोभावों का वर्णन—इस पर हमने मनोविज्ञान शीर्षक के नीचे विचार किया है।

४. मनोविज्ञान—तुलसीदास की आलोचना करते हुए बा० श्यामसुन्दरदास लिखते हैं—"मेरी समझ में तुलसीदास की सर्व-प्रियता और मनोहरता का कारण उनका चरित्र-चित्रण और मानवीय विकारों का स्पष्टीकरण है। इन दोनों बातों में वे इस पृथ्वी के जीवधारियों को नहीं भूलते। उनके पात्र स्वर्ग के निवासी नहीं, पृथ्वी से असंपृक्त नहीं। उनके कार्य, उनके चरित्र, उनकी भावनाएँ, उनकी वासनाएँ, उनके विचार; उनका व्यवहार सब मानवीय हैं। यही कारण है कि वे मनुष्यों के मन में चुभ जाते, उन्हें प्रिय लगते और उन पर अपना प्रभाव डालते हैं।"

मनोविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से अयोध्याकांड सर्वोत्तम है। वास्तव में मनःविकारों का द्वन्द्व यहीं चलता है। इस कांड में मनोविज्ञान अनेक दिशाओं में प्रगट हुआ है, (१) कथा में, (२) कथोपकथन में, (३) आलंकारिक वर्णन में। रामचरितमानस के लगभग सभी भागों की इस कांड में कड़ी परीक्षा हो जाती है और विभिन्न स्वार्थों के घात-प्रतिघात चलते हैं। इससे तुलसी को मनोवैज्ञानिक स्थलों को खोलकर ही आगे बढ़ना होता है। राम-बनवास की एकान्त समस्या को लेकर मनोविज्ञान का एक महल ही खड़ा कर दिया गया है। यह मनोविज्ञान निरूपण तीन दिशाओं में सबसे अधिक पूर्णता प्राप्त कर सका है। मंथरा-कैकेई (१४—२४), कैकेई-दशरथ (२७—३७) और भरत की आत्म-ग्लानि (१६१-१७६)। अन्य कांडों में न मनोविज्ञान प्रगट करने के अवसर आये हैं, न वह विकसित ही हो सका है। उनमें रसों के निरूपण की ही विशेष प्रधानता हो सकती है। कुछ पंक्तियों में तुलसी का मनोवैज्ञानिक कौशल स्पष्ट हो जायगा। कैकेई जब दशरथ से वरदान माँगती है तो धीरे-धीरे उनकी गूढ़ता और भयंकरता राजा की समझ में आती है और उन पर उत्तरोत्तर गम्भीर प्रभाव पड़ता है—

सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू॥
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरुतालू॥
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥
मोर मनोरथ सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥

—(अयोध्या० २६)

इस प्रकार के कुछ थोड़ी ही पंक्तियों में दशरथ के क्षुब्ध-मनः-भवन की झाँकी हमें दिखला देते हैं। काव्य उपन्यास नहीं है जहाँ पात्र के मनोविज्ञान को स्पष्ट करने के लिए पन्ने रँगे जायँ, वहाँ कला की सब से कड़ी परीक्षा यहीं होती है।

५. तुलसी का व्यवहार-ज्ञान—तुलसी का लौकिक ज्ञान बहुत विस्तृत था। उनके ग्रन्थों में उनके प्रकृति-सम्बन्धी ज्ञान, मानव-स्वभाव ज्ञान, आचार-विचारों का ज्ञान और भौतिक एवं सैद्धान्तिक आदर्शों का ज्ञान कूट-कूटकर भर दिया गया है। इस ज्ञान से पुष्ट होकर ही रामचरितमानस साधारण जनता, ग्रामीणों और मजदूरों के अति निकट की चीज़ हो गया है। उनकी सूक्तियाँ, कहावतें, अन्योक्तियाँ, अलंकार, वर्णन—सभी को उनके व्यवहार-ज्ञान से बल मिला है और अनेक स्थलों पर इसी के कारण वे काव्य की उच्चभूमि पर उठे हैं। ग्रन्थ-ज्ञान (शास्त्र) के साथ व्यवहार-ज्ञान का इतना सुन्दर मेल हिन्दी के किसी कवि में नहीं है, संस्कृत के किस कवि में है, यह ढूँढना सरल काम नहीं है। भाई-भाई और गुरु का सम्बन्ध देखिये—

मुनिवर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥

बार बार मुनि आज्ञा दीन्ही। रघुवर जाय सयन तब कीन्ही ॥
चापत चरन लखन उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता ॥

उठे लखनु निसि बिगति सुनि, अरुन सिखा धुनि कान।
गुरु तें पहिलेहिं जगतपति जागे राम सुजान ॥

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए ॥

—(बालकांड २२६, २२७)

अयोध्याकांड के उत्तरार्द्ध में चित्रकूट के प्रसंग के अंतर्गत पारस्परिक शिष्टाचार का जैसा चित्रण है, वह तुलसी के व्यवहार-ज्ञान और आदर्शभावना का सुन्दरतम चित्र है। कौन किससे किस प्रकार मिले, किसका सम्मान किस प्रकार हो, इसमें कहीं जरा भी भूल-चूक नहीं हुई है। इस मिलन भेंट के प्रसंग को सरसता बढ़ाने और शिष्टाचार का व्यवहार-ज्ञान देने के लिए ही इतने विस्तार से स्थान दिया गया है। जीवन की प्रत्येक परिस्थिति के तुलसी जानकार थे। यह कहा जाता है कि उन्हें राजकीय शिष्टाचार का विशेष ज्ञान नहीं था—उदाहरण के लिए अंगद-रावण-सम्वाद सामने रखा जाता है। परन्तु वास्तव में तुलसी रावण के सामने होते ही अपनी रामभक्ति के प्रवाह में बह जाते थे, तब शिष्टाचार की बात ही कौन पूछता। यहाँ अज्ञान की बात नहीं, भावना की बात है। जहाँ-जहाँ उन्होंने मर्यादा और शिष्टाचार का उल्लंघन किया (जैसे मंदोदरी-रावण-संवाद में) वहाँ-वहाँ वे रामभक्ति के प्रवाह में बह गये हैं, नहीं तो अन्य स्थलों पर उनका व्यवहार-ज्ञान ही काव्य का बल है।

६. तुलसी के काव्य में संयम—भाषा, रस, सामाजिक व्यवहार,

कवित्वपूर्ण चित्रण (अलंकारों का प्रयोग और मूर्त्तिमत्ता) इन सभी में तुलसी ने अत्यन्त कौशल और संयम से काम लिया है। उनका रामचरितमानस इस विषय में अद्वितीय है। तुलसी के नायक भगवान् राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं, अतः तुलसी उच्छृङ्खल हो ही नहीं सकते थे। वे काव्य की भूमि पर अत्यन्त सतर्कता से खड़े होते हैं जहाँ दूसरों के पैर के नीचे से धरती खिसक जाती है।

हम रस की बात ही लें। रसों में शृंगार-रस का मर्यादित चित्रण बहुत कठिन है। शृंगार में ऊहापोह ही विशेष रहता है, परन्तु तुलसी साहित्य शास्त्र का पूरा सहारा लेते हुए भी लेखनी पर बंधन स्वीकार करते हैं। प्रसंग पूर्वराग का है जो तुलसी ने "प्रसन्न-राघव" से लिया है, परन्तु तुलना करने पर तुलसी का संयम स्पष्ट हो जायगा। नीचे हम इस वाटिका प्रसंग के मर्यादापूर्ण स्थलों पर प्रकाश डालते हैं—

(१) राम लक्ष्मण के साथ गुरु की आज्ञा से फूल लेने जाते हैं।

समय जान गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

—(बालकांड २२७)

यहाँ गुरु की आज्ञा है, अतः दम्पति-मिलन की भूमिका में विश्वामित्र की अनुमति प्रतिष्ठित है। दूसरे लक्ष्मण छोटे भाई साथ हैं जिससे राम उच्छृङ्खल नहीं हो सकते।

(२) पूजा के लिए फूल चुनते हैं। यह भी पूत भावना है।

(३) बाग में जाकर भी उच्छृङ्खलता नहीं बरतते, वरन् माली से पूछकर ही फूल लेते हैं।

चहुँ दिसि चितइ पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥

—(बालकांड २२८)

उद्दीपन के रूप में जनक का बाग है जिसका तुलसी ने संक्षेप में वर्णन किया है—

लागे विटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज सम्पति सुर रूख लजाए॥
चातक कोकिल कीरि चकोरा। कूजत विहग नटत कल मोरा॥
मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान विचित्र बनावा॥
विमल सलिल सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥

—(बालकांड २२७)

(४) सीता जी उस राजोपवन में गिरिजा (पार्वती) की पूजा करने आती हैं और पूजा करती हैं, इससे भी प्रसंग में पूत-भावना की प्रतिष्ठा होती है और शृंगार-भाव का संयमन हो जाता है (गिरिजा पूजन जननि पठाई। २२८ पूजा कीन्हि : वही)

(५) स्वयम् अकस्मात् भेंट नहीं हो जाती। सखियों में से एक सखी अचानक युगल कुमारों को देखकर लौटती है—

एक सखी सिय संगु विहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेहिं दोउ बंधु-बिलोके जाई। प्रेमबिवस सीता पहिं आई॥

तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक गात जलु नैन।
कहु कारनु निज हरष कर, पूछहिं सब मृदु बैन॥ २२८॥

देखन बागु कुँअर दुइ आए। वय किसोर सब भाँति सुहाए॥
श्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हिय अति उतकंठा जानी॥
एक कहइ नृप सुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली॥
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हें स्ववस नगर नरनारी॥
बरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू॥
तासु वचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥

—(बालकांड २२६)

इस "प्रीति" के स्वाभाविक विकास के बाद भी कवि 'प्रीति पुरातन लखइ न कोई' २२६ और 'सुमिर सीय नारद वचन' कहकर अपनी शृंगार-भावना को मर्यादित कर देता है।

(६) राम अपने मन की बात को सहज रूप से लक्ष्मण से कह देते हैं—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदभी दीन्हीं। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्हीं॥

—(बालकांड २३०)

तात जनकतनया यह सोई। धनुषजज्ञ जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखी लै आई। करत प्रकाशु फिरइ फुलवाई॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सब कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहु परनारि न हेरी॥

—(बालकांड २३१)

अंतिम पंक्तियों से वातावरण को साधारण ऐन्द्रियकता से कहीं ऊँचे

नैतिक धरातल पर उठा दिया गया। परन्तु शृंगार-भाव बना रहे इसलिए तुरन्त आता है—

करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरंद छवि, करइ मधुप इव पान॥

यहाँ सखी लता की ओट से राम को दिखाती है—

लता ओट तब सखिन लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥

उपर्युक्त पंक्तियों में "हरषे जनु निज निधि" से सीताराम की एकता का आध्यात्मिक संकेत है। तुलसी शृंगारात्मक शब्दावली (रोमांच, कंप, विपथु आदि) प्रयोग में नहीं लाते। सीधे हर्ष के बाद जड़ता-भाव का उल्लेख करते हैं—

थके नयन रघुपति छवि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥

(७) अब राम का सौन्दर्य-वर्णन आता है—

सोभा सीवँ सुभग दोउ वीरा। नील पीत जल-जात सरीरा॥
मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के॥
भाल तिलक श्रमबिन्दु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छवि छाए॥
बिकट भृकुटि कच घूँघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे॥
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला॥
मुख छवि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं॥
उरमनि माल कंबुकल ग्रीवा। काम कलभ कर भुजबल सींवा॥
सुमन समेत वाम कर दोना। साँवर कुँअर सखी सुठि लोना॥

सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हिय अति उतकंठा जानी॥
एक कहइ नृप सुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली॥
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हें स्वबस नगर नरनारी॥
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू॥
तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥

—(बालकांड २२९)

इस "प्रीति" के स्वाभाविक विकास के बाद भी कवि 'प्रीति पुरातन लखइ न कोई' २२९ और 'सुमिर सीय नारद बचन' कहकर अपनी शृंगार-भावना को मर्यादित कर देता है।

(६) राम अपने मन की बात को सहज रूप से लक्ष्मण से कह देते हैं—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदभी दीन्हीं। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्हीं॥

—(बालकांड २३०)

तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहु परनारि न हेरी॥

—(बालकांड २३१)

अंतिम पंक्तियों से वातावरण को साधारण ऐन्द्रियकता से कहीं ऊँचे

नैतिक धरातल पर उठा दिया गया। परन्तु शृंगार-भाव बना रहे इसलिए तुरन्त आता है—

करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरंद छवि, करइ मधुप इव पान॥

यहाँ सखी लता की ओट से राम को दिखाती है—

लता ओट तब सखिन लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥

उपर्युक्त पंक्तियों में "हरषे जनु निज निधि" से सीताराम की एकता का आध्यात्मिक संकेत है। तुलसी शृंगारात्मक शब्दावली (रोमांच, कंप, विपथु आदि) प्रयोग में नहीं लाते। सीधे हर्ष के बाद जड़ता-भाव का उल्लेख करते हैं—

थके नयन रघुपति छवि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥

(७) अब राम का सौन्दर्य-वर्णन आता है—

सोभा सीवँ सुभग दोउ वीरा। नील पीत जल-जात सरीरा॥
मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के॥
भाल तिलक श्रमबिन्दु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छवि छाए॥
विकट भृकुटि कच घूँघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे॥
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास विलास लेत मनु मोला॥
मुख छवि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो विलोकि बहु काम लजाहीं॥
उरमनि माल कंबुकल ग्रीवा। काम कलभ कर भुजबल सींवा॥
सुमन समेत बाम कर दोना। साँवर कुँअर सखी सुठि लोना॥

केहरि कटि पट पीत धर, सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुल भूषनहिं, बिसरा सखिन्ह अपान ॥२३३॥

यहाँ भी तुलसी लक्ष्मण को नहीं भूले हैं। "दोउ बीरा" से यह बात स्पष्ट है।

(८) प्रसंग की समाप्ति हास्य में होती है—

धरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किसोर देखि किन लेहू॥
सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे॥
नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा॥
परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता॥
पुनि आउब एहिं बिरियाँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली॥
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ बिलंबु मातु भय मानी॥
धरि बड़ि धीर रामु उर आने। फिरी अपनपउ पितु बस जाने॥

देखन मिस मृग बिहग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥२३४॥

(९) अब सीता लौटकर राम की प्राप्ति के लिये गौरी से प्रार्थना करती हैं।
—(बालकांड २३५-२३६)

(१०) इधर राम-लक्ष्मण गुरु के पास पहुँचते हैं। राम सब बात निःसंकोच मन होकर कह देते हैं और गुरु से भी आशीर्वाद पाते हैं। स्पष्ट है कि इस योजना से राम की सीता विषय उत्कंठा वासना का रूप धारण नहीं कर पाती—

हृदयँ सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्हीं। पुनि असीस दुहुँ भाइन्ह दीन्हीं॥
सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। रामु लखनु सुनि भए सुखारे॥
—(बालकांड २३७)

इस पूर्वराज प्रसंग का अंत चन्द्रोदय के उद्दीपन वर्णन में होता है—

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा॥
बहुरि विचारु कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं॥

जनमु सिंधु-पुनि बंधु बिसु, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक॥ २३७॥

वियोग की अवस्था में भी राम लक्ष्मण से कह देते हैं परन्तु पद-पद पर सँभलते जाते हैं जहाँ वाल्मीकि में लक्ष्मण को बराबर उन्हें समझाना और सँभालना पड़ता है (सीताहरण-प्रसंग)। तुलसी स्थान-स्थान पर राम के स्वरूप का वर्णन करते हैं, परन्तु कोलिनी-किरातिनियों में उस प्रकार की प्रीति रति का जन्म नहीं होने देते जो कृष्ण के रूप दर्शन से गोपियों में हुआ था (बनपथ)। वे राम के सौन्दर्य पर मुग्ध हैं, परन्तु मधुर रस (शृंगार) का भाव नहीं आने पाता। समाज की मर्यादा बनी रहती है। आकर्षण व्यक्तिगत धर्मभावना तक ही रहता है।

इसके अतिरिक्त तुलसी ने सीता के सौन्दर्य को अत्यन्त मर्यादा-भाव से हमारे सामने उपस्थिति किया है (देखिये लक्ष्मी और दीप-शिखा रूपक)। केवल सीताहरण के बाद शृंगार का पुट आ जाता है, परन्तु लक्ष्मण पर प्रगट होने के कारण वह भी मर्यादित ही माना जायगा। इसी प्रकार सीता के विरह में भी मर्यादा है। केवल अशोकवाटिका प्रसंग में "प्रलाप" रूप में उसके दर्शन होते हैं—

देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावक मय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहिं जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम विटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥

—(सुन्दरकाण्ड १२)

इस प्रकार हम तुलसी के काव्य में पग-पग पर संयम और मर्यादा को उच्छृंखल कल्पना के पंख कतरते देखते हैं। सच तो यह है कि इसी कठोर संयम के कारण तुलसी प्रत्येक जाति और प्रत्येक संस्कार को प्रिय हो सके हैं।

७—पात्रों का चरित्र-चित्रण—तुलसी ने अपने पात्रों को दो विशेष धरातलों पर खड़ा किया है। एक धरातल का सम्बन्ध राम की मानव लीलाओं से है और दूसरे का राम के मानवेतर रूप से। अधिकांश कथा में यह दोनों धरातल एक दूसरे को लपेटे हुए चलते हैं। पहले हम उस धरातल पर विचार करेंगे जिसका सम्बन्ध राम के मानवेतर रूप से है।

मानस के सभी पात्र रामभक्त हैं। यह हो सकता है कि उनकी भक्ति स्पष्ट रूप से हमारे सामने नहीं आती—अप्रकट रह जाती हो। परन्तु प्रकट रूप से या अप्रकट रूप से तुलसी के समस्त पात्र रामभक्त हैं, विशेषत: रामचरितमानस के पात्र। तुलसी की राम-भक्ति उनके पात्रों में भी व्याप्त हो गई है। मानस का कोई भी पात्र राम को छोड़कर अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखता। वह शरीर है तो राम आत्मा हैं। राम के परिवार के स्वजन और आत्मीय, देव, ऋषि, भक्त, ऋक्ष, वानर, पुरजन-परिजन, विरोधी राक्षस सभी राम के स्वरूप से परिचित हैं और प्रगट या अप्रगट रूप से उनके भक्त

है। रावण और मेघनाद राम के सबसे बड़े प्रतिद्वन्दी हैं। उन्होंने जीते-जीते राम की ब्रह्मसत्ता को स्वीकार नहीं किया परन्तु मरते समय किसी भी भाव से दोनों ने रामनाम का उच्चारण कर मुक्ति पाई। राम-रावण युद्ध में मरे हुए राक्षसों के सम्बन्ध में तुलसी का मंतव्य है—

रामाकार भए तिन्ह के मन।
मुक्त भए छूटे भव-बन्धन॥

तुलसी के सब चरित्रों में से कितने ही चरित्र तो केवल भक्त ही हैं अथवा राम के सत्य रूप को जाननेवाले ही हैं। उनकी अवतारणा इसलिए की गई है कि उनसे तुलसी का एक विशेष उद्देश्य पूर्ण होता है। वे कथा-प्रसंग को किसी भी प्रकार आगे नही बढ़ाते। उन्हें स्पर्शमात्र करके चले जाते हैं। सुतीक्ष्ण, अत्रि, सरभंग, शबरी, वाल्मीकि, भरद्वाज ऐसे ही चरित्र हैं। अध्यात्म रामायण में इन्हें इसी रूप में रखा गया है। अंतर इतना ही है कि वहाँ वे ब्रह्मज्ञानी हैं, यहाँ भक्त।

अन्य पात्रों की रामभक्ति उनके चरित्र अथवा व्यक्तित्व का एक आवश्यक अंग है। राम के साथ उनके मानवीय सम्बन्ध में उनका जो चरित्र प्रकाशित होता है, वह अलग बात है। अब हम मानस के पात्रों के चरित्र पर विचार करेंगे।

ऊपर हम देख चुके हैं कि तुलसी ने सभी पात्रों में रामभक्ति का समावेश करके एक विचित्रता ला दी है; परन्तु साधारण चरित्र-चित्रण में भी उन्होंने मौलिकता से काम लिया है। यह मौलिकता कई प्रकार की है :—

(१) उन्होंने वाल्मीकि के चरित्र-चित्रण के दोषों को ग्रहण नहीं किया है। वे आदर्श की ओर वाल्मीकि की अपेक्षा अधिक ध्यान रखते हैं। इससे वे काव्य की भूमि पर अत्यन्त सतर्कता से चलते हैं। ऐसा वे इस तरह करते हैं। वे उन विशेष उक्तियों को स्थान नहीं देते जो उनके चरित्रों को लांछित करती हैं। वाल्मीकि के अयोध्याकांड के २३वें सर्ग में श्रीरामचन्द्र सीता से कहते हैं—

ऋद्धियुक्ताहि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् ।
तस्मान्न ते गुणाः कथ्या भरतस्याग्रतो मम ॥

(ऋद्धियुक्त पुरुष दूसरे की प्रशंसा नहीं सह सकते, इसलिए तुम कभी भरत के सामने मेरी प्रशंसा मत करना) या ऐसे स्थलों पर संकेतमात्र से काम लेते हैं। लक्ष्मण जी की उग्रता की बहुत कुछ रक्षा तुलसीदास ने भी की है परन्तु उन्हें मर्यादा से बाहर जाना प्रिय नहीं था। लक्ष्मण जी सुमंत्र के हाथ यह पिता को भेजते हैं—

अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये ।
भ्रातः भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः ॥

(हम महाराज में कोई पितापने का लक्षण नहीं देखते, इत्यादि) तुलसी ने इसे यों लिखा है—

पुनि कछु लखन कही कटु बानी । प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी ॥
सकुचि राम निज सपथ देवाई । लखन संदेसु कहिअ जनि जाई ॥

सुमंत्र पहुँच कर लक्ष्मण की बात यों कहते हैं—

लखन कहे कछु बचन कठोरा । बरजि राम पुनि मोहिं निहोरा ॥
बार बार निज सपथ देवाई । कहबि न बात लखन लरिकाई ॥

तुलसी भी राम से सहमत हैं। वे लक्ष्मण के व्यवहार को "अनु-
चित" और "लरिकाई" (लड़कपन) कहते हैं।

(२) इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक प्रकार के परिवर्तन किये हैं। वाल्मीकि में भरद्वाज भरत पर संदेह करते हैं परन्तु तुलसी के भरद्वाज तो भरत पर मुग्ध हैं।

(३) तुलसी में भरत का चरित्र संदेह से परे है। वाल्मीकि में जहाँ वे शपथ खा-खा कर ही कौशल्या को आश्वस्त कर पाते हैं, वहाँ तुलसी की कौशल्या को उनमें कोई लांछन दीखता ही नहीं।

(४) यही बात सीताहरण के अवसर पर है। लक्ष्मण सीता को छोड़ना नहीं चाहते तो सीता उस समय लक्ष्मण से अत्यन्त कटु वचन कहती है, यहाँ तक कि उन्हें भ्रातृघाती और लोलुप बताती है (देखिये वाल्मीकि अरण्य० सर्ग ४५) परन्तु तुलसी केवल कहते हैं—

मरम वचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥

और रावण विजय के बाद जहाँ वाल्मीकि में राम स्वयं सीता को लांछित करते हुए कहते हैं कि वे उन्हें सती नहीं मान सकते (देखिये युद्धकांड सर्ग ११५), वहाँ तुलसी—

"तेहि कारन करुनानिधि, कहे कछुक दुर्वाद'

कहकर राम के शील-सौजन्य की रक्षा कर लेते हैं।

यही नहीं, तुलसी ने राम और उनके परिवार की मर्यादा की रक्षा करते हुए उसके सदस्यों की उग्रता को कम किया है। (लक्ष्मण वा० सर्ग २२; कौशल्या सर्ग ६१) फल यह हुआ कि तुलसी के चरित्रों का गठन स्वाभाविक होते हुए भी आदर्श हुआ है। ऐसा होने में यदि नए प्रकरणों को जोड़ने की आवश्यकता पड़ी है, तो तुलसी ने

ऐसे प्रकरण जोड़ भी दिए हैं। उदाहरण के लिए राम लक्ष्मण के शील सौजन्य को प्रगट करने के लिए ही तुलसी ने ये पंक्तियाँ लिखी हैं—

सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ।
गुरु पद पंकज नाइ सिर, बैठे आयसु पाइ ॥ २२५ ॥

निसि प्रवेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं सन्ध्या वंदनु कीन्हा ॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥
मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई ॥
जिन्हके चरन सरोरुह लागी। करत विविध जप जोग विरागी ॥
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरु पद कमल पलोटत प्रीते ॥
बारबार मुनि आज्ञा दीन्हीं। रघुबर जाइ सयन तब कीन्हीं ॥
चापत चरन लखनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जल जाता ॥

उठे लखनु निसि विगत सुनु, अरुण सिखा धुनि कान।
गुरु तें पहलेहिं जगतपति, जागे रामु सुजान ॥ २२६ ॥

इस प्रकार तुलसी ने परंपरागत चरित्रों को संस्कृत एवं परिष्कृत करके ही हमारे सामने रखा है।

विनयपत्रिका की एक परख

विनयपत्रिका में तुलसी के उन विचारों को ही स्तोत्रात्मक और गीतात्मक रूप मिला है जो उनके मानस की आधारभूमि हैं। परन्तु जहाँ मानस में उनका रूप वर्णनात्मक है या वे तर्क-समन्वित हैं वहाँ विनयपत्रिका में उनका रूप भावात्मक है और वे सिद्धान्त तुलसी के प्रेम-विश्वास को पाकर जगमगा उठे हैं।

१. राम [ब्रह्म]—राम सच्चिदानन्द हैं। उनके दो रूप हैं—निर्गुण और सगुण। सगुण रूप में वे नरदेह-धारी भूप-रूप दाशरथि हैं—

अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म
सुमिरामि नर भूप रूपं (विनय० ५०)

वे क्षीरसागर निवासी विष्णु भी हैं इसी से पुराणों में विष्णु के जितने अवतार हैं, वे सब प्रकारांतर में राम के ही अवतार हैं—

उरग नायक तरुन सयन पंकज नयन क्षीर सागर अयन सर्ववासी ॥

—(विनय ५५)

वामनाव्यक्त पावन परावर विभो

—(विनय ४६)

वृष्णि-कुल कुमुद राकेस राधा रमन कंस वंसाटवी धूमकेतू
—(विनय ५२)

बुद्ध अवतार वन्दे कृपालं (विनय ५२)

दितिसुत त्रास त्रसित निसिदिन-प्रह्लाद प्रतिज्ञा राखी

—(विनय ६३)

तुलसी राम के परे कुछ देखना ही नहीं चाहते। या वे राम को देखते हैं या रामभक्त (भागवत) को। वे विन्दुमाधव को भी राम कहते हैं (विनय ६१)। परन्तु यही राम विष्णु के भी पोषक, विष्णुपर भी कहे जाते हैं तो आश्चर्य होता है। परन्तु दोनों बात ही तुलसी के लिए ठीक हैं।

अवतार लेने के कारण तो अनेक हैं जिन्हें तुलसी ने मानस की रामकथा की भूमिका में रखा है, परन्तु विनयपत्रिका में भगवान के भक्तवत्सल रूप की ही प्रधानता होनी चाहिए थी। इसी लिये तुलसी यहाँ केवल एक कारण लेते हैं—

जब जब जग जाल व्याकुल करम काल
सब खल भूप भए भूतल-भरन
तब तब तनु धरि भूमि-भार दूरि करि
थापे मुनि सुर-साधु-आस्रम सरन

—(विनय २४८)

२. जीव और ब्रह्म—तुलसी जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध में यहाँ भी मानस की तरह अपेक्षा-भाव रखते हैं—

हौं जड़ जीव ईस रघुराया।
तुम मायापति हौं बस माया ॥

—(विनय० १७६)

यही जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध तात्त्विक निरूपण है। तुलसी इससे अलग जीव की परिभाषा देना नहीं चाहते।

३—सृष्टि या जगत्—सृष्टि वस्तुतः राम-रूप है। यह माया (या मूल प्रकृति) का ब्रह्म पर आवरण मात्र ही है—

प्रकृति महत्तत्त्व शब्दादि गुन देवता व्योम मरुदग्नि अमलांबु उर्वी।
बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्रान, चित्तातमा काल परमानु चिच्छक्ति गुर्वी ॥
सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमनि व्यक्तमव्यक्त गतभेद विष्णो।
भुवन भुवदंस कामारि वंदित पदद्वन्द्व मंदाकिनी जनक जिष्णो ॥

या राम स्वतः सृष्टि हैं—

आदि मध्यांत भगवंत त्वं सर्वगतमीस ये ब्रह्मवादी।
यथा पटतंतु घटमृत्तिका सर्पस्रग दारुकरि कनक कटकांगदादी ॥

—(विनय० ५४)

इसी सम्बन्ध से ब्रह्म जगत् का उपादान कारण भी है। कर्त्ता तो वह है ही।

इसीलिए जहाँ तक हम इस सृष्टि (जगत्) को राम से भिन्न समझते हैं, वहाँ-वहाँ हम गलती करते हैं। है केवल एक रामतत्त्व। राम के सम्बन्ध से तो जगत् शून्य मात्र है—

जग नभ वाटिका रही है फल फूलि रे।
धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि रे॥

—(विनय० ६६)

इस जगत् का सुख-दुख "सपनों के संताप" की तरह है—

सोवत सपने सहैं संसृति संताप रे।

—(विनय० ७३)

इस संताप के मूल में ब्रह्म और जगत् की द्विविध सत्ता के सम्बन्ध में भ्रम है। इस भ्रम को तुलसी विस्तार के साथ इस प्रकार रखते हैं—

केसव कहि न जाइ का कहिए।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए।

—(विनय० १११)

हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी॥
अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं।
बिनु बाँधे निज हठ सठ परवस पर्‍यो कीर की नाईं॥
सपने व्याधि विविध बाधा भइ मृत्यु उपस्थित आई।
वैद्य अनेक उपाय करहिं जागे बिनु पीर न जाई॥

—(विनय० १२०)

४—माया—इसी भ्रम को माया कहा है। यही जीव का बंधन है। भगवान् की कृपा से ही इसका बाध होगा—

तुलसिदास यहि जीव मोहरजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरै ॥
—(विनय० १०२)

इस माया का पाश अत्यन्त कड़ा है, भगवान् की कृपा के बिना इससे छूटना असम्भव है। तुलसी कहते हैं—

माधव, असि तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया ॥
सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुन भव बिपति सतावै ॥
ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसीदास हरिकृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं ॥
—(विनय० ११६)

जीव ब्रह्म विषयक द्वैत के नाश से ही माया का परिहार हो सकता है। इसके लिए साधन है साधुसेवा और उसके द्वारा रामभक्ति की प्राप्ति—

सेवत साधु द्वैत भय भागे।
श्री रघुबीर चरन लय लागे ॥
—(विनय० १३६)

इसके बाद है आत्मबोध या ज्ञान। तुलसी ने ज्ञान को भक्ति की भूमिका ही माना है, यद्यपि इसके बिना भी काम चल सकता है और रामकृपा के बिना "ज्ञान" की भी प्राप्ति असम्भव है ;—

रामकृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥
जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥

यहाँ यह "जानना", यह "परतीती" ही ज्ञान है। ब्रह्म, जीव और माया के सम्बन्धों को जाने बिना न राम की प्रभुता ही पूरी तरह हृदयस्थ होगी, न भक्तिभाव का उदय ही होगा। यहाँ कवि साधक को दर्शन की गहन गुत्थियों में उलझा देना नहीं चाहता, परन्तु अज्ञानी भक्त किस काम का ? ज्ञानी भक्त ही तुलसी का आदर्श है।

परन्तु ज्ञान का साधन कठिन है—

जोग मख विवेक विरति वेद विहित करम।
करिवे कहँ कटु कठोर सुनत मधुर नरम॥

—(विनय० १३१)

इसीसे तुलसी भक्ति और उसके साधनों को श्रेय देते हैं जो कठिन तो हैं; परन्तु भगवत्कृपा होने पर सुलभ भी है—

रघुपति भक्ति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि वनि आई॥

यद्यपि भगवत्प्राप्ति के अनेक साधन हैं—

नाहिन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधन तरु है स्रम फलनि फरो सो॥
तप तीरथ उपवास दान मख जेहि जो रुचै करौ सो।
पाएहि पै जानिबो करम फल भरि भरि वेद परो सो॥
आगम विधि जप जाग करत नर सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहु न जोग सिधि साधन रोग वियोग धरो सो॥

काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि ज्ञान विराग हरो सो।
विगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो॥
बहुमत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहिं लगत राज डगरो सो॥

—(विनय० १७३)

परन्तु जैसा उपर्युक्त पद में कहा गया है, तुलसी के मंतव्य में राम-भक्ति पथ ही राजपथ है जिस पर सर्वसाधारण भी चल सकते हैं और जिस पर चलने के लिए अधिक सम्बल-बल की आवश्यकता नहीं है। फिर प्रश्न यह होता है कि रामभक्ति ही क्यों? तुलसी ने इसके उत्तर में राम के स्नेह, शील, भक्तवत्सलता, दयार्द्रता का बार-बार उल्लेख किया और रामचरित के ऐसे स्थलों का बार-बार उदाहरण स्वरूप उद्‌घाटन किया जिनमें राम के ये गुण चरितार्थ हुए हैं। इस सम्बन्ध में तुलसी की भावधारा का पता अनेक पदों से चल सकता है—

देव दूसरो कौन दीन को दयालु।
सील निधान सुजान सिरोमनि सरनागत प्रिय प्रनतपालु॥
को समर्थ सर्वज्ञ सकल प्रभु सिय सनेह मानस मरालु।
को साहिब किए मीत प्रीति खग निसिचर कपि भील भालु॥
नाथ हाथ नाना प्रपंच सब जीव दोष गुन करम कालु।
तुलसिदास भलो पोच रावरो नेकु निरखि कीजै निहालु॥

—(विनय० १५४)

जग सुपिता सुमातु सुगुरु सुहित सुमीत
सब को दाहिनो दीनबन्धु काहू को न वाम

आरत हरन सरनद अतुलित दानि
प्रनतपाल कृपालु पतित पावन नाम

—(विनय० ७७)

सील सिंधु सुन्दर सब लायक समरथ सद्गुन खानि हौ।
पाल्यो है पालत पालहुगे प्रभु प्रनत प्रेम पहिचानि हौ॥

—(विनय० २२३)

विनयपत्रिका राम के गुणशील के गौरव-गान के पदों से भरी हुई है।

५—भक्ति के साधन—भक्ति के अनेक साधनों का वर्णन मानस में विस्तारपूर्वक लिखा गया है, परन्तु प्रसंगगत: विनय-पत्रिका में भी इनका वर्णन है। मुख्य साधन हैं :—

(१) भजन (नामस्मरण)

सदा राम जपु राम जपु राम जपु राम जपु राम जपु मूढ़ मन बारंबारं
सकल सौभाग्य सुखखानि जियजानि सठ मानि विस्वास बद वेदसारं

—(विनय० ४६)

राम राम रटु राम राम रटु राम राम जपु जीहा।

—(विनय० ६५)

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे।
घोर भव नीरनिधि नाम निजु नाव रे॥

एकहि साधन सब रिधि साधि रे।
ग्रसे कलि रोग जोग संयम समाधि रे॥

—(विनय० ६६)

(२) शरणागत भाव

नाहि नं नाथ अवलंब मोहिं आन की
करम मन वचन पन सत्य करुनानिधे एक गति राम
भवदीय पदत्रान की

—(विनय० २०६)

(३) चरित्र-श्रवण, मनन, कीर्तन (यशगान)
(४) सत्संग

रघुपति भगति संत संगति बिनु को भवत्रास नसावै।

—(विनय० २२१)

बिनु सत्संग भगति नहिं होई।

—(विनय० १३६)

(५) संत-स्वभाव की ओर संक्रमण

देहि सत्संग निज अंग श्री रंग भव भंग करन सरन सोकहारी।

× × ×

साधुपद सलिल निर्धूत कल्मप सकल स्वपच यवनादि कैवल्य भागी। शांतनिरपेक्ष निर्मम निरामय अगुन शब्द ब्रह्मैक परब्रह्म ज्ञानी आदि।

—(विनय० ४५७)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपाल कृपा ते संत स्वभाव गहौंगो॥
यथा लाभ संतोप सदा काहू सो कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर मन क्रम-वचन नेम निवहौंगो॥
परुप वचन अति दुसह स्रवन करि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन परगुन नहिं दोप कहौंगो॥
परिहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो॥

—(विनय० १७२)

(६) राम के स्वरूप का ध्यान (स्वरूपासक्ति)। विनय-पत्रिका में राम के सौन्दर्य के अनेक पद हैं यद्यपि तुलसी के कुछ अन्य ग्रंथ (जैसे मानस, गीतावली) स्वरूपासक्ति के सुन्दरतम उदाहरण उपस्थित करते हैं।

(७) उन तीर्थों आदि का सेवन जिनका सम्बन्ध राम के चरित्र से है, जैसे गंगा, चित्रकूट।

(८) ब्राह्मण-सेवा

(९) आत्मग्लानि की भावना

कैसे देउँ नाथहिं खोरि।
काम लोलुप भ्रमत मन हरिभगति परिहरि तोरि॥

बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि।
देव सिख सिख्यो न मानत मूढ़ता असि मोरि॥

—(विनय० १५८)

रामचन्द्र रघुनायक तुम सो हौं विनती केहि भाँति करौं।
अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरौं॥
पर दुख दुखी सुखी पर सुख तें संतसील नहिं हृदय धरौं।
देखि आन की विपति परम सुख सुनि सम्पति बिनु आगि जरौं॥
भक्ति बिराग ज्ञान साधन कहि बहु बिधि डहँकत लोग फिरौं।
सिव सर्वस सुखधाम नाम तव बेंचि नरकप्रद उदर भरौं॥
जानत हूँ निज पाप जलधि जिम जलसीकर सम सुनत लरौं।
रज सम पर अवगुन सुमेरु करि गुनगिरि सम रजते निदरौं॥
नाना वेष बनाइ दिवस निसि परहित जेहि तेहि जुगुति हरौं।
एकौ पल न कबहुँ अडोल चित हित दै पद सरोज सुमिरौं॥
जो आचरन विचारहु मेरो कलप कोटि लगि अवटि मरौं।
तुलसिदास प्रभु कृपा बिलोकनि गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं॥

—(विनय० १४०)

(१०) शिवभक्ति

शिवभक्ति का रामभक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका बना देना तुलसी की मौलिकता और सार्वग्राहकता का विशिष्ट उदाहरण है। तुलसी शिव को सम्बोधन करके कहते हैं—

बिनु तव कृपा राम पद पंकज सपनेहु भगति न होई।

—(विनय० ६)

(११) हनुमान-भक्ति

श्रेष्ठ भागवत के नाते हनुमदाश्रय भी नितान्त आवश्यक है। मानस के सुन्दरकांड, बाहुक, कवितावली और विनयपत्रिका के हनुमान-सम्बन्धी स्थल तुलसी की हनुमान-भक्ति के उदाहरण हैं। तुलसी का कथन है जिस पर हनुमान प्रसन्न हो जाते हैं उस पर शिवपार्वती, सीताराम सब प्रसन्न हैं। अतः रामभक्ति की भूमिका के रूप में शिवभक्ति की तरह हनुमान भक्ति भी उपादेय है। तुलसी स्मार्त वैष्णव थे। वह इस नाते पंचदेव उपासक थे। विनय-पत्रिका के आरंभिक पदों में उन्होंने इन सभी देवताओं की भक्ति को रामभक्ति की प्राप्ति का साधन बना दिया है। प्रत्येक उपास्य के प्रति प्रणतिपाद हो तुलसी उससे रामाश्रित होने का ही वरदान माँगते हैं। इस प्रकार तुलसी ने बहुदेववाद को रामोन्मुख करके एकदेववाद (रामवाद) बना दिया है।

संक्षेप में, यही प्रमुख भक्ति के साधन हैं। परन्तु तुलसी का इस संबंध में बहुत कम आग्रह है कि रामभक्ति के और कोई साधन है ही नहीं। जो भी कुछ बन पड़े, जो भी कुछ भगवान् की ओर ले जाये, वह सब रामोन्मुख होने के नाते रामभक्ति और भगवद्प्राप्ति का साधन है।

तुलसी के अन्य ग्रन्थ

रामचरितमानस तुलसी का सबसे महान ग्रन्थ है और साधारणतः तुलसी की काव्यप्रतिभा और उनके भक्तिभाव को उसीसे पूर्णतः समझा जा सकता है। परन्तु यह बात नहीं कि तुलसी की प्रतिभा मानस पर ही समाप्त हो गई। उनके दस-बारह ग्रन्थ और उपलब्ध हैं।

इन ग्रन्थों को हम कई श्रेणियों में रख सकते हैं :—

(१) रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थ—कवितावली, गीतावली, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्न, जानकी मंगल, रामलला नहछू।

(२) कृष्णकथा सम्बन्धी ग्रन्थ—कृष्ण-गीतावली।

(३) शिवकथा-सम्बन्धी ग्रन्थ—पार्वती मंगल।

(४) भक्ति ग्रन्थ—विनयपत्रिका।

(५) अन्य मुक्तक रचनाएँ जो दोहावली, वैराग्य संदीपिनी आदि में संग्रहीत हैं।

इन ग्रन्थों में से रामकथा-सम्बन्धी ग्रन्थ इस विचार से महत्त्वपूर्ण हैं कि उनमें तुलसी ने रामकथा को अनेक प्रकार से विकसित किया है। कथा का आधार वही मानस है, वही वाल्मीकि रामायण। पहले चार ग्रन्थों में रामकथा का सम्पूर्ण रूप आ गया है परन्तु अत्यन्त स्फुट रूप से। बरवै रामायण में ३०-४० बरवौं में सारी

रामकथा कह दी गई है—सीता के सौन्दर्य का वर्णन नवीनता उत्पन्न करता है। रामाज्ञा प्रश्न में वही कथा दो बार सूचनिका रूप में उपस्थित है। काव्यकला का विशेष विकास इन ग्रन्थों में नहीं है न रसपुष्टि की ओर ही ध्यान दिया गया है। कवितावली और गीतावली में रामकथा रसात्मकता से पुष्ट होकर कई नवीनताओं के साथ हमारे साथ आती हैं। पहले ग्रंथ में राम के पौरुष, सौन्दर्य और शौर्य को केन्द्र बनाया गया है। और सारे ग्रंथ में सुन्दरकांड को ही विशेष विकसित किया गया है। दूसरे ग्रन्थ में सूरदास के प्रभाव से राम के वात्सल्यपूर्ण चित्रण का प्रयत्न है, माताओं की दुःखकथा भी है और अंत में राधाकृष्ण की तरह रामसीता भी हिंडोले पर वसंतविहार करते दिखलाई पड़ते हैं। यह रामकथा का कृष्णकथा के ढंग पर भावात्मक विकास है। रामलला नहछू और जानकी मंगल खंडकाव्य हैं—पहले मैंने लोकभावना का आश्रय ले राम के विवाहोपरांत नखछेदन (नहछू) का प्रसंग उपस्थित किया है, दूसरे में सीता-परिणय और स्वयंवर एवं विवाह की कथा स्वतंत्र रूप से कही गई है।

कृष्ण गीतावली में कृष्णकथा तो विशेष रूप से नहीं मिलती परन्तु उनके कुछ अंश अवश्य सामने आते हैं।

पार्वतीमंगल का विषय वही है जो बालकांड के शिवचरित के उत्तरार्द्ध का विषय है। तुलसीदास कालिदास के कुमारसंभव से विशेष रूप से प्रभावित जान पड़ते हैं।

विनयपत्रिका इन ग्रंथों में सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसके बिना [illegible] के धार्मिक एवं अध्यात्मजगत् का अध्ययन नहीं किया जा [illegible]।

अन्य रचनाएँ तुलसी के विचारों और उनकी भक्ति के स्वरूप

को स्थिर करने के लिए काम में लाई जा सकती हैं। काव्य की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व नहीं है।

इन ग्रन्थों में हम तुलसी को कई रसों में प्रवेश करते पाते हैं। मुख्य रस जिनका निरूपण हुआ है चार हैं—१. शृंगार, २. वात्सल्य, ३. करुण, ४. भयानक। अन्य रसों के उदाहरण भी मिल जायँगे, परन्तु विशेष महत्त्व इन्हीं का है।

(१) विनयपत्रिका

रामचरितमानस के बाद तुलसी के ग्रंथों में सबसे लोकप्रिय और सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ विनयपत्रिका ही है। इसमें सन्देह नहीं कि यह तुलसी की वृद्धावस्था की रचना है। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी यह रामचरितमानस से प्रौढ़ है। तुलसी की भक्तिभावना के विकास और उनके धार्मिक सिद्धान्तों का अध्ययन करनेवालों के लिए यह ग्रंथ मानस की भाँति ही बहुमूल्य है।

विनयपत्रिका के दो भाग किये जाते हैं एक भाग स्तोत्रों से भरा पड़ा है, दूसरा सुन्दर गीतों से। गीतों में से कुछ तो दैन्यभावना के प्रकाशन और भक्ति के स्वरूप को स्थिर करने के लिए लिखे गये हैं और कुछ कवि के आत्मजीवन से सम्बन्ध रखते हैं। इन तीनों अंगों में भक्तिभावनावाले पद ही सबसे अधिक महत्त्वशाली हैं। विनयभावना के इतने सुन्दर पद सूरसाहित्य में भी नहीं मिलेंगे। तन्मयता, आत्मविस्मृति भाव संगठन और गीतात्मकता—गीति काव्य के सभी अंगों और विशेषताओं से पुष्ट तुलसी का यह काव्य हिन्दी की अमूल्य निधि है।

जैसा हम ऊपर कह आये हैं काव्य की दृष्टि से स्तोत्र भाग विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। शंकर का एक स्तोत्र इस प्रकार है—

देव मोहतम तरणि, हर, रुद्र, शंकर शरण,
हरणभय शोक लोकाभिरामं ।
बालशशिभाल, सुविशाल लोचन कमल,
काम शतकोटि लावण्यधामं ॥
कंबु-कुन्देहु कर्पूर-विग्रह रुचिर
तरुण रवि कोटि तनु तेज भ्राजै ।
भस्म सर्वाङ्ग, अर्द्धांग शैलात्मजा,
व्याल नृपकाल-माला विराजै ॥

यह संस्कृत स्तोत्रों का संस्कृत-हिन्दी मिला खिचड़ी रूप है। धर्म-भावना की दृष्टि से यह चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण हो यदि तुलसी इनकी रचना नहीं करते तो उनका साहित्यिक महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं होता। हाँ, धर्मभावना की दृष्टि से इनका महत्त्व यह है कि इनमें प्रत्येक देवता का गुणगान करके कवि अंत में राम की भक्ति माँगता है—इस प्रकार सर्वदेववाद का परिहार रामवाद में हो जाता है। जिन देवी-देवताओं और अवतारों पर स्तोत्र गए हैं वे हैं गणेश, शंकर, पार्वती, गंगा, हनुमान, भैरव, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कालिका, विन्दुमाधव, हरिहर। तुलसी सब की प्रशंसा करते हुये भी राम का नाता नहीं भूले हैं और उन्होंने विचित्र ढंग से अपनी ...नन्द भक्तिमर्यादा बनाये रखी है। इससे उनकी सहनशीलता ... सामञ्जस्य बुद्धि पर प्रकाश पड़ता है।

विनयपत्रिका की वास्तविक महत्ता तो उनके दैन्यपूर्ण विनय भक्ति के पदों के लिए है जिनमें स्वामी सेवक या आराधक-आराध्य-

के किसी भी सम्बन्ध के मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक पहलू को नहीं छोड़ा है। इन पदों के भीतर से बहती हुई तुलसी की अन्त:धारा का पकड़ना ही समीक्षक का काम है। तुलसी की भावधारा का आरम्भ वैराग्य भावना से होता है। वैराग्य इसलिए कि इस जगत् की मायावशी परिस्थिति को वह समझ गया है। बिना माया के डोरे सुलझाए शान्ति की प्राप्ति नहीं होगी। यह माया रघुनाथ की दासी है। तुलसी कहते हैं—

माधव ! अस तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय, दया हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुन भव विपति सतावै॥
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जौं पै मन सो रस पावै।
कौ कत मृगजल-रूप विषय कारन निसि बासर धावै॥
जेहि के भवन विमल चिंतामनि सो कह काम बटोरै।
सपने परबस पर्‍यो जानि देखत कहि जाइ निहोरै॥
ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य झूठि कछु नाहीं।
तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम यह भरोस मनमाहीं॥

इस मंतव्य पर पहुँच कर साधक यदि शरणागत भाव से भगवान् के पास पहुँचता है और कहता है—

सुखसाधन हरि विमुख वृथा
जैसे श्रमफल धृति हिति भये साथ

इस 'हरि विमुखता' को छोड़ कर वह 'हरि उन्मुख' होने का प्रण करता है—

अब लौं नसानी अब ना नसैहौं
राम कृपा भव निसा सिरानी
आगे फिर न डसैहौं

स्वयं अपनी ओर से जो वह तत्परता दिखाता है उसका आधार उसका राम में विश्वास है कि वे रक्षा करेंगे। वह जानता है कि मनुष्य क्या, उसका प्रयत्न क्या, परन्तु उसे भगवान् को शरणागत रक्षा प्रण में विश्वास है। तब कोई चिंता नहीं। इसी विश्वास के साथ वह शरण जाता है—

कृपासिंधु ताते रहौं निसि दिन मन मारे।
महाराज लाज आपुही निज जाँघ उघारे॥
मिलै रहैं, मार्‍यो चहैं कामादि संघाती।
मो बिनु रहैं न, मेरियै जारे छल छाती॥

× × ×

वारक बलि अब तो किये कौतुक जन जी को
अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसी को

वही मन में दीनता का भाव धारण कर भगवान् के चरणों में पड़ जाता है—

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित पावन जग? केहि अति दीन पियारे?
कौने देव बराय बिरदहित हठि हठि अधम उधारे?
खग, मृग, व्याध, पषान, विटप, जड़, डायन, कवन सुरहारे
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया विवस विचारे
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे?

यह दीनता क्यों है—इसलिए कि वह तो "दोषों की मोह" है, फिर गर्व किस बात का ?

मेरे अघ सारद अनेक जुग,
गनत पार नहिं पावै।
तुलसीदास पतितपावन प्रभु,
यह भरोस जिय आवै ॥

अपने प्रभु की स्वभावतः पतितपावन प्रवृत्ति को समझ कर ही तुलसी अपने मन में बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ करते हैं और इष्टदेव से उनकी पूर्ति की आशाएँ रखते हैं—

कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक धरिहौं नाथ सीसे मेरे।
जेहि कर अभय किए जन आरत वारक निवस नाम टेरे ?

माया-जाल की जटिलता, मन के प्रबोध, माया से द्वन्द्व, दैन्यभाव से ईश प्रार्थना—इन सब के सम्बन्ध में अनेक पद विनयपत्रिका में बार-बार आते हैं। इन्हीं के कारण तुलसी का काव्य अध्यात्मभाव की सर्वोच्च भूमि पर उठ गया है। इनका सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि रामचरितमानस की रचना के बाद भी तुलसी के आध्यात्मिक विचारों में बराबर विकास होता गया है और विनयपत्रिका में हमें उनकी अध्यात्म-भावना पूर्ण विकसित रूप में मिलती है। तुलसी की रामचरितमानस की भक्ति ज्ञान और कर्म को साथ लेकर चलती है। उसे हम ज्ञान कर्म समन्वित भक्ति कह सकते हैं। विनयपत्रिका की भक्ति अनन्य भक्ति है। वह न किसी दूसरे देवता का आश्रय लेती है न किसी दूसरी उपासना-पद्धति का। ज्ञान और कर्म पीछे छूट गये हैं। तुलसी उनकी ओर

मुड़ कर भी नहीं देखते। उनके लिये केवल भक्ति ही एकमात्र साधना है—यही नहीं, भक्ति ही साध्य हो गई है। स्वयं राम से भी वे रामभक्ति की ही याचना करते हैं। भक्ति-साधना की दृष्टि से यह स्थिति सर्वोच्च है। इस अंतिम रचना में तुलसी ने सारे नाते तोड़ कर एकमात्र राम से नाता जोड़ा है।

इस ग्रन्थ का संदेश मानस से भी ऊँचा है। इसमें तुलसी जीवन-निर्माण के उस अत्यन्त उन्नत आदर्शवाद को सामने रखते हैं जिसकी नींव नैतिकता में है। संतोष, परिहित चिंतन, मृदुसंलाप, रागद्वेष, दीनता, मानहीनता, सुख-दुख में समबुद्धि—ये कुछ ऐसे गुण हैं जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपादेय है। तुलसीदास इसी नैतिक जीवन का उपदेश देते हैं—

जो मन भज्यौ चहै हरि सुरतरु

हरै तजि विषय विकार सार भजु, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु
सम संतोष विचार विमल अति, सतसंगति ए चाहि दृढ़ करि धरु
काम, क्रोध अरु लोभ मोह मद, राग द्वेष निश्चय करि परिहरु
स्रवन कथा, मुखनाम, हृदयहरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु
नयनन निरखि कृपा समुद्र हरि, अग जग-रूप-भूप सीतावरु
इहै भगति वैराग्य ज्ञान यह, हरि तोषन यह सुभ व्रत आचरु
तुलसीदास सिवमत मारग, यहि चलत सदा सपनेहु नहिं न डरु

ले ही रामभक्ति किसी को अमान्य हो परन्तु इसमें तो कोई उपस्थित ही नहीं कर सकता है कि ऊपर कहा हुआ नैतिक मार्ग सर्वसाधारण को शांति और सुख का परिचय नहीं करा सकता।

(२) कवितावली

मानस की तरह कवितावली भी रामकथा-ग्रन्थ है। कथा में विशेष अंतर भी नहीं है, परन्तु यहाँ कथा विस्तार से न देकर चुने हुए अंशों को उपस्थित किया गया है। सारी कथा छप्पय, कवित्त, सवैया और घनाक्षरी छन्दों में है जिनमें परुष रसों को ही विशेष विकास हो सकता है। अतः कवि ने ऐसे ही प्रसंग चुन लिये हैं।

बालकांड की कथा इस प्रकार आरम्भ होती है कि दशरथ बालक राम को गोद में लेकर बाहर निकलते हैं। इसके बाद कवि बालक राम का सौन्दर्य और उनकी क्रीड़ा को वीरता का पुट देकर सामने रखता है—

पद पंकज मंजु बनी पनहीं,
धनुहीं सर पंकज पानि लिये।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं,
सरजू तट चौहट हाट हिये॥

स्वयंवर, दूल्हा राम की शोभा, परशुराम-संवाद सब प्रसंग मानस की भाँति ही हैं परन्तु संक्षेप में। कथा का विकास संकेतों में हुआ है। इसीसे अयोध्याकांड की कैकेयी-मंथरा प्रसंग, वरदान प्राप्ति आदि मार्मिक कथा का लोप हो गया है। कथा का आरम्भ ही इस छंद से होता है—

राजिव लोचन राम चले
तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं।

अतः पूर्व का कथा-प्रसंग आ ही नहीं सकता। वनवासी रामसब६

का सौन्दर्य, वनवासी स्त्री-समाज की सीताराम विषयक जिज्ञासा, केवल प्रहसन इतने पर ही अयोध्याकांड समाप्त हो जाता है। भरत की सारी कथा सामने ही नहीं आती। आरण्यकांड में एक ही छंद है—

पंचवटी वर पर्ण कुटी तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाए।
सोहै प्रिया, प्रिय बन्धु लसै, तुलसी सब अंग घने छवि छाए॥
देखि मृगा मृगनैनी कहे, प्रिय बैन ते प्रीतम के मन भाए।
हेम कुरंग के संग सरासन सायक लै रघुनायक धाए॥

इसी तरह किष्किंधाकांड में भी एक ही छंद है जिसमें हनुमान् के कूदने का चित्रण है। वास्तव में विशेष विस्तार सुन्दरकांड को मिला है परन्तु विषय-विस्तार और रस निरूपण को। कथा तो यहाँ भी बहुत संक्षेप में है। अशोकवाटिका उजाड़ने से लेकर लंकादाह तक का ओजस्वी वर्णन है। रसोत्कृष्टता में हम कथा-भाग की कमी भूल भी जाते हैं। कुछ कवित्तों में हनुमान् के लौटने पर कवियों की प्रसन्नता और अंगद का बाग उजाड़ने का वर्णन कर कांड को समाप्त कर दिया गया है। लंकाकांड का पूर्वार्द्ध तो विकसित है जिसमें त्रिजटा-सीता संवाद, अंगद-प्रसंग, मंदोदरी की सीख, रावण-युद्ध, लक्ष्मण का शक्ति से मूर्च्छित होना और हनुमान् का संजीवनी लाना घटनाएँ वर्णित हैं, परन्तु शेष युद्ध और रावण-वध केवल दो ही छंदों में है। इस प्रकार कथा-विकास में यहाँ भी आश्चर्य-जनक विषमता है। उत्तरकांड में कथा है ही नहीं। वह मुक्तक संग्रह-मात्र है जिसके विषय ये हैं—१. दैन्य प्रदर्शन, २. बाहुरोग (बाहुक), ३. मीन की सनीचरी का उत्पात, ४. महामारी और उसके सम्बन्ध में शंकर की महिमा और स्तुति, ५. आत्मजीवन, ६. रामस्तुति। सारे ग्रन्थ में एकता लाने का प्रयास नहीं है। यद्यपि

हनुमान का चरित्र ग्रन्थ में विशेप व्याप्त है। कदाचित् तुलसी ने सोचा हो कि हनुमान सम्बन्धी कोई रचना नहीं हुई और उनके बाहु रोग ने उन्हें यह अवसर दिया हो कि वह हनुमान के शौर्य की प्रतिष्ठा कर सकें।

कवितावली में शौर्य और मर्यादा की भावना का उत्कर्ष है और इसीलिये लंकादहन सारे ग्रन्थ के अंतर्गत सब से प्रधान घटना है। इसे कवि ने अपनी समस्त काव्य-प्रतिभा से प्रस्फुटित किया है। रामचरितमानस में भी यह घटना इतनी शक्ति समन्वित नहीं। मानस प्रबन्ध काव्य है, अतः वहाँ चरित्र-चित्रण और वस्तु-निर्वाह की आवश्यकता है। तुलसी के मानस के सुन्दरकांड का केन्द्र हनुमान नहीं, सीता है, वियोगी अशोक विटपस्थ सीता। यही वह स्थल है जहाँ हमें सीता के मनोविज्ञान का परिचय मिलता है। परन्तु कविता-वली में कथा विशेष रूप से कही ही नहीं गई है, वह शक्ति और शौर्य के भावनात्मक विकास के रूप में इंगित-मात्र है। अतएव इसमें चरित्र-चित्रण और वस्तु-निर्वाह की ओर कवि ने विशेप ध्यान नहीं दिया है। घटनाओं के निरूपण में रस की उपलब्धि कराना श्रेष्ठ कवि का काम है। कवितावली का लंकादहन प्रसंग रसोद्रेग की दृष्टि से तुलसी की समस्त रचनाओं में अग्रगण्य है। प्राचीन शास्त्रकारों के आदर्शों के अनुसार जहाँ रस की सृष्टि है वहाँ शब्द चित्रों का भी निरूपण है। सुन्दरकांड में रस का अंतरंग और बाह्यरूप दोनों प्रकार का स्वरुप अक्षुण है।

कवितावली के सुन्दरकांड का रस वीर नहीं भयानक है। इस दृष्टि से कवितावली महत्त्वपूर्ण है। इसमें वीर और रौद्र रस गौण रूप से आये हैं। ये केवल भयानक के संचारी भाव के रूप में मिलते हैं। लंकादहन और हनुमान का लौट आना—यही महत्त्वपूर्ण रस-

पूर्ण स्थल हैं। कवितावली में आरम्भ से ही तुलसी ने राम के शौर्य की प्रतिष्ठा की है, वह हनुमान के विक्रम की वीथिका हो गई है। रौद्ररस हनुमान के अपमान की प्रतिक्रिया के रूप में है। वीर भाव का स्थायी अंग उत्साह इतना बलवान नहीं है जितना क्रोध—इसके साथ तुलसी ने रस निरूपण में यह विशेषता रखी है कि रस के व्यापक संचरण के साथ-साथ केवल परंपरागत वस्तुओं का निर्देषमात्र ही नहीं किया है, साथ ही वर्णन वैचित्र्य, परिस्थितियों का चित्रण, स्पष्ट शब्द और भाषा को उपस्थित करने का भी प्रयत्न किया है। भयानक का इतना सजीव वर्णन लंकाकांड में भी नहीं हो पाया।

(३) श्रीकृष्ण गीतावली

तुलसीदास की कृष्णकथा श्रीकृष्ण गीतावली पर सीमित है परन्तु अध्ययन करने पर स्पष्ट होगा कि ६१ पदों में केवल चार प्रसंगों पर फुटकर पद संग्रहीत हैं—१. बालकेलि पद, २. भ्रमर गीत और ऊधो-गोपी-संवाद, ३. नयन के पद (विरह), ४. द्रौपदी चीरहरण। इनके अतिरिक्त कृष्ण के सौन्दर्य और इन्द्रगर्वहरण पर भी २-४ पद हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसी ने कृष्णकथा को प्रबन्ध के रूप में नहीं रखा, वे केवल मार्मिक प्रसंगों पर लेखनी उठाते हैं और ...भी विषयों में सूर के ऋणी हैं। प्रसंगों में ही नहीं—भाषा शब्द ...ठन, भावविकास; यही नहीं, कितने ही पदों के आधे या अंतिम पंक्ति को छोड़ कर शेष के लिए सूर के अपहरण के दोषी ठहरेंगे। तुलसी की इस रचना को सूर की रचना से मिलाने पर इसकी समस्या का हल हो सकता है। कितने ही पदों में तुलसीदास के

स्थान पर सूरदास रख देने से पद सूरसागर में मिल जायगा। भाषा और मूर्तिमत्ता सभी में सूर का इतना अनुकरण है कि सहज ही कवि सूर की प्रौढ़ता पर पहुँच जाता है। इसीसे यह रचना राम गीतावली से उत्कृष्ट दीख पड़ती है। केवल बाल-लीला का एक पद तुलसी के व्यक्तित्व को प्रगट करता है—

"छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि कै तू दे री मैया"
"लै कन्हैया" "सो कब ?" "अबहिं तात"
"सिगरियै हौं ही खैहौं, बलदाऊ को न देहौं"
"सो क्यों भट तेरे कहो कहि इत उत जात",
बाल बोलि डहकि बिरावत, चरित लखि,
गोपीजन महिरि मुदित पुलकित गात
नूपुर की धुनि किंकिनि के कलरव सुनि
कूदि-कूदि किलकि-किलकि ठाढ़े-ठाढ़े खात
तनियाँ ललित कटि, विचित्र टेपारो सीस,
मुनिमन हरत वचन कहै तोतरात
तुलसी निरखि हरखत बरषत फूल भूरभागी
ब्रजबासी विबुध सिद्ध सिहात

इस वार्तालाप में नाटकीयता है, नवीनता है, परन्तु सूर के कृष्ण शिशु की वार्तालाप का माधुर्य और सारल्य कहाँ ? इसी श्रेणी की एक कल्पना बालक राम के विवाह के प्रति उत्साह से सम्बन्धित है—

छाँड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई
ऐहैं सुत देखु बार कालि तेरे बबै ब्याह की बात चलाई
डरिहैं सासु-ससुर चोरी सुनि, हँसिहैं नई दुलहिया सुहाई

उवटौं न्हाहु, गुहौं चोटियाँ, वलि, देखि भलो वर करिहिं बड़ाई
मातु कह्यो करि कहत वोलिवै, भई वड़ि वारि कालि हौं न आई
जव सोइवो तात यों सों कहि, नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई
उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै, मुदित महरि लखि आतुरताई
विहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि रहे जननी उर धाई

ऐसे दो एक स्थलों को छोड़ कर और कहीं मौलिकता नहीं मिलेगी; परन्तु स्थलों के चुनाव में तुलसी का व्यक्तित्व और मर्यादा भाव वोलता है। तुलसी ने संयोगशृंगार, राक्षसवध, फाग-हिंडोल सभी प्रसंगों को छोड़ दिया है। स्पष्ट है कि उनकी अभिरुचि नहीं। ऊहात्मक एकांतिक विरह भी नहीं। नयन के प्रति एक ही पद कहा है। "मधुकर के प्रति" उक्तियों में भी कोई वैयक्तिकता नहीं है। वही सूर का प्रसंग पग-पग पर है। रचना का केन्द्र यह स्तोत्र जान पड़ता है जो विनयपत्रिका के स्तोत्रों के ढंग का है—

गोपाल गोकुल-वल्लभी-प्रिय गोप गोसुत वल्लभं।
चरनारविंद मह भजे भजनीय सुरमुनि दुर्लभं॥
घनश्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहरं।
किं जलक व्रसन, किसोर मूरति, भूरि गुन करुनाकरं॥
सिर केकिपच्छ विलोल कुण्डल अरुन वनरुह लोचनं।
गुंजावतंस विचित्र, सव अंग धातु भवभय मोचनं॥
कच कुटिल सुन्दर तिलक, भ्रू राका मयंक समाननं।
अपहरन तुलसीदास जस विहार वृंद्राकाननं॥

५।च. विनयपत्रिका में कृष्ण को स्थान न मिला देख कर तुलसी अलग ग्रंथ रचने की सूझी हो और विशेष मौलिकता का आग्रह हृदय की साधना की इस उच्चावस्था में न होता हो।

ऊधो-प्रसंग में गोपियों के चरित्र में कुछ विशेपता लाने का

प्रयत्न दिखलाई पड़ता है। ऊधो की बात पर गोपियाँ कहती हैं—

आली ! अति अनुचित उतरु न दीजै
सेवक सखा सनेही हरि के जो कुछ कहैं सो कीजै
देसकाल उपदेस सँदेसो सादर सब सुनि लीजै
कै समुझिव, कै ये समुझैहैं, हारेहु यामि सहीजै
ऊधौ हैं बड़े, कहैं सोइ कीजै
अलि, पहचानि प्रेम की परिमित उतरु फेरि नहिं दीजै

और वे कुब्जा से ईर्ष्या नहीं, कृष्ण के नाते प्रेम करती हैं—

सब मिलि साहस करिय सयानी
ब्रज आनियहि मनाइ पाँय परि कान्ह कूबरी रानी
बसैं सुपास, होहिं सब फिर गोकुल रजधानी
महरि महर जीवहिं सुख जीवन खुलहिं मोहमनि खानी
कही है भली बात सब के मनमानी
प्रिय सम प्रिय सनेह-भाजन, सखि,
प्रीति रीति जग जानी

इन स्थलों को छोड़ कर तुलसी के काव्य की दृष्टि से इस रचना का कोई महत्त्व नहीं। हाँ, यह उनकी धार्मिक विचारधारा और सहनशीलता पर प्रकाश अवश्य डालती है।

(४) रामलला नहछू

तुलसी ने इस ग्रन्थ में रामकथा को लोकभावना के भीतर से देखने की चेष्टा की है। यही ग्रंथ की मौलिकता का कारण है।

तुलसी ने मानस में राम के विवाह का अत्यन्त मौलिक सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। यहाँ उसीसे सम्बन्धित दूसरा चित्र है। विवाह उपरान्त राम का नखछेदन (नहछू) संस्कार किया जाता है। लोकगीत- द सोहर ही नहीं लिया गया है, भावना भी शृङ्गार-मयी है जो जनरुचि को आकर्षित कर सकती है जैसे—

गोद लिये कौसल्या बैठी रामहिं वर हो।
सोभित दूलह राम सीस पर आचर हो॥
नाउनि अति गुनखानि तौ बेलि बोलाई हो।
करि सिंगार अति लोभ हो विहसति आई हो॥
कनन-चुनिन सो लसित नहरनी लिए कर हो।
आनन्द हिय न समाइ देखि रामहिं वर हो॥

कथाभाग में भृत्याओं का रूपवर्णन और दशरथ की शृङ्गार प्रधान परिहास प्रियता उच्छृंखलता जान पड़ती है परन्तु यह सब लोक-जीवन के भीतर से रामचरित को देखने का प्रयत्नमात्र है, अतः इसके लिए तुलसी को दोष नहीं, श्रेय ही मिलना चाहिये।

(५, ६) बरवै रामायण और रामाज्ञा-प्रश्न

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त बरवै रामायण और रामाज्ञा-प्रश्न ये दो और ग्रंथ हैं जो रामकथा को लेकर चलते हैं। दोनों में सारी रामकथा फुटकर प्रसंगों के द्वारा उपस्थित की जाती है और कुछ-कुछ नवीन भाव-धाराओं और प्रसंगों को भी उपस्थित करती हैं जैसे बरवै रामायण में सीता के सौन्दर्य का रीतिकाल के कवियों की नायिका जैसा वर्णन है। तुलसी के अन्य ग्रन्थों में सीता में दैवी

भावना का आरोप है, अतः उनके सौन्दर्य के चित्रित करने के संयमपूर्ण अद्भुत उत्प्रेक्षाओं से काम लिया गया है। यहाँ यह प्रच्छन्नता नहीं है—

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकता करत उदोत॥
सम सुवरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग, सखि, कोमल कनक कठोर॥
सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह, निसि दिन यह विगसाइ॥
बड़े नयन, कटि, भृकुटि, भाल विसाल।
तुलसी मोहत मनहिं मनोहर बाल॥

यही नहीं, तुलसी सीताराम की विलासकेलि को भी इंगित करते हैं—

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनीदे नैन॥

यह सब रीतिकालीन प्रभाव है जिसकी वेगवती धारा से तुलसी प्रयत्न करने पर भी एकदम अछूते नहीं रह सके हैं। कथा विशेष विकसित नहीं है—जान पड़ता है कथा के फुटकर प्रसंगों पर सांकेतिक रूप से लिख दिया गया है।

रामाज्ञा-प्रश्न में रामकथा दो बार उपस्थित की गई है पहली १—३ सर्ग तक, दूसरी ४—६ तक। कथा बाल्मीकि का अनुसरण करती है विशेष मौलिकता नहीं है, न वर्णन में, न प्रबन्धात्मकता में। साहित्य की दृष्टि से इन कथाओं का कोई स्थान नहीं। सारी कथा अ

की सूचीमात्र उपस्थित कर देने से साहित्य का कोई श्रेय नहीं मिलता। प्रयत्न यह है कि प्रत्येक कार्य के लिए शुभ दिन भी बता दिया जाय और किस देवता का स्मरण करके कार्यारम्भ हो, यह भी कहा जाय—फिर कथा भी चलती रहे। इससे हाथ कुछ भी नहीं लगा। इन परवर्ती रचनाओं में तुलसी जन भावनाओं का राम की लोकप्रियता बढ़ाने के लिये इतना सत्कार करते हैं कि सभी बातों को स्थान दे देते हैं और द्यूत जैसे निकृष्ट कर्म के मंगल समय का भी विचार करते हैं—

परपुर वाद-विवाद जय, जूक जुआ जय जानि।
सुमिरि सत्रुसूदन-चरन, सगुन सुमंगल जानि॥

जान पड़ता है पहले ३ सर्गों की कथा की रचना कर तुलसी ने जाना कि ये तीन काम साथ-साथ चलाने में श्रेयस्कर नहीं हुए, अतः उन्होंने इस कथा को सहज कथा सूचनिका के रूप में (मानस के आधार पर) फिर लिखा। पहली कथा से दूसरी कथा इसीसे अधिक सुचारु और सुगठित है। मानस में अनेक शब्द-समूहों और चरणों का प्रयोग कथा को रामचरितमानस की वीथिका दे देता है। अब उन्होंने कथा को समाप्त कर अलग से शुभकाज का दिन समय लिखा है (देखिये सप्तम सर्ग)। अंत में उन्होंने सारी रामकथा को शुभाशुभ पात्रों में बाँट दिया है।

रामाज्ञा-प्रश्न में कवि विशेष प्रयोजन से अपनी सामग्री को एक निश्चित ढंग पर रख रहा है अतः यह ढूँढ़ना ठीक नहीं होगा कि कथा का कौन अंग छूटा है, कौन नहीं। प्रश्नों का उत्तर कथा है, सगुन कैसा है, यही विचारने के लिये पांडित्यपूर्ण ढंग से इसकी रचना हुई है। रामकाव्य के विकास की दृष्टि से इसका कोई स्थान नहीं।

(७, ८) पार्वती-मंगल और जानकी-मंगल

पार्वती-मंगल और जानकी-मंगल में कवि ने क्रमशः शिव-पार्वती-विवाह और जानकी-राम विवाहोत्सव को ही अपना विषय बनाया है। मानस में यही प्रसंग विस्तारपूर्वक लिखे जा चुके थे, परन्तु गेय छन्दों में नहीं। तुलसी ने सोहर जैसे लोकप्रचलित छंद का आश्रय लिया और कदाचित् विवाहोत्सवों पर गाने के लिए इन रचनाओं की सृष्टि की। जानकी-मंगल की कथावस्तु में बाल्मीकि को आधार माना गया है और पार्वती-मंगल पर कुमारसंभव (कालिदास) का प्रभाव स्पष्ट है, परन्तु इससे यही स्पष्ट है कि मौलिक होते हुए भी तुलसी को मौलिकता का विशेष आग्रह नहीं है। वे रामभक्त के नाते रामसम्बन्धी वस्तु जहाँ होगी, वहीं से ग्रहण कर लेंगे। कथात्मक खंड-काव्यों में इन रचनाओं का स्थान अक्षुण्ण है।

(९) रामगीतावली

रामगीतावली में भी तुलसी ने रामकथा को ही अपना विषय बनाया है, परन्तु कथानक के अंगों को चुनने, पदविन्यास, छन्द, भावविस्तार आदि की दृष्टि से तुलसी सूर के काव्य के आभारी हैं। परन्तु जहाँ सूरदास ने अत्यन्त विस्तार से विच्छंखल कथाएँ कही हैं, वहाँ तुलसी ने कथा की प्रबन्धात्मकता का ध्यान रख कर ही छंद कहे हैं। इसीसे छोटा होने पर भी गीतावली अत्यन्त सुन्दर पद-काव्य बन सका है।

कथा का आरम्भ रामजन्म से होता है। पहले की परिस्थिति चित्रित न होने से वह अलौकिकता इस कथा में नहीं रहती जो

दूसरे ग्रन्थों में है। अतः गीतावली में राम के सहज बालक राजकुमार, युवा वीर राजपुत्र और महाराज राम की ही प्रतिष्ठा है। इसी भावना को ध्यान में तुलसी ने रख कर कहा है—

महाराज, बलि जाऊँ, राम सुन्दर सब लायक !

जातकर्म, छठी, नामकरण ये तीन संस्कार गीतावली में मिलते हैं। शेष संस्कारों का वर्णन नहीं है। सूर का प्रभाव बालकांड के उन अंशों तक सीमित है जहाँ तक विश्वामित्र आये हैं। परन्तु उसमें भी कवि ने छन्द, भावसृष्टि और संगीत के नवीन आयोजन किये हैं जैसे उनके राम राजा के बालक हैं, वे केवल भूप-बालकों के साथ ही क्रीड़ा करने निकलते हैं—

खेलन चलिय आनँदकन्द।
सखा प्रिय नृप द्वार ठाढ़े विपुल बालक वृन्द ॥
तृपित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक दास।
वपुन वारिद वरषि छवि जल हरहु लोचन प्यास ॥
बन्धु वचन विनीत सुनि उठे मनहुँ केहरि बाल।
ललित लघु सर चाप कर उर नैन बाहु विसाल ॥
चलत पद प्रतिबिम्ब राजत अजिर सुषमा पुञ्ज।
प्रेमवस प्रति चरन महि मनु देत आसन कंज ॥
देखि परम विचित्र सुषमा चकित चितवहिं मात।
हरष विवस न जात कहि निज भवन विहरहु तात ॥
देखि तुलसीदास प्रभु छवि रहे पल सब रोकि।
थकित निकर चकोर मानहुँ सरद इंदु विलोकि ॥

इस प्रकार का ऐश्वर्य सूर में भी वर्णित है परन्तु कहाँ सखाओं की

प्रेम-पुकार, कहाँ बन्धु का विनीत वचन ! बात राजकुमारों के योग्य है, मर्यादा और शील का चित्रण है, परन्तु वह सहज चमत्कार नहीं आ सकता जो सूर के बालकृष्ण के क्रीड़ा-विनोद में। यह तो परिस्थिति की विडंबना है। इन नवीन परिस्थितियों के लिए ही तुलसी को नए चित्र गढ़ने पड़े हैं—

विहरत अवध वीथिन राम।
संग अनुज अनेक सिसु नव नील नीरद स्याम॥
तरुन अरुन सरोज पद बनि कनकमय पदत्रान।
पीत पट कटि तून बर कर ललित लघु धनुबान॥
लोचनन को लहत फल छवि निरखि पुर नर नारि।
बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि॥

राजकुमार हैं तो फिर खेल भी ऐसा-वैसा नहीं, राजकुमारों का ही खेल होना चाहिये, अतः चौगान खिलाया गया है—

राम लखन इक ओर भरत रिपुदमनलाल इक ओर भये।
सरजु-तीर सम सुखद भूमि तल गनि गोइयाँ बाँटि लये॥
कंदुक-केलि कुसल हय चढ़ि चढ़ि मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खए।
करकमलन विचित्र चौगाने खेलन लगे खेल रिझए॥

खेल खेल सुखेलन हारे।
उतरि उतरि चुचकारि तुरंगनि सादर जाइ जोहारे॥
बन्धु सखा सेवक सराहि सनमानि सनेह सुखारे।
दिये बसन गज बाजि साजि सुभ साजि सुभाँति सँवारे॥
मुदित नयन फल पाइ गाइ गुन सुर आनन्द सिधारे।
सहित समाज राजमंदिर कहँ राम राय पगु धारे॥

भोर फूल बीनबे को गये फुलवाई हैं।
सीसन रे पारे उपवीत पीत पट कटि,
दोना वामकरन सलोने सवाई हैं॥

परन्तु यहाँ सखी द्वारा सीता का उद्बोधन आदि नहीं। सीता स्वयं स्वकीया विश्रब्ध नवोढ़ा नायिका चित्रित की गई हैं। कवि एक ही छंद में सब प्रसंग कह डालता है—

सखिन सहित तेहि अवसर विधि संजोग,
गिरिजाजू पूजिबे को जानकी जू आई हैं।
निरखे लखन राम जाने ऋतुपति काम,
मोहि मानो मदन मोहनी मूड़वाई है॥
राखोजू श्रीजानकी लोचन मिलिवे को कोइ,
कहिवे के जोग न मैं वातें सी बनाई है।
स्वामी सिया सखिन लखन तुलसी को तैसो,
तैसो मन भये जाकी जैसी ऐ समाई है॥

इसके वाद सीता देवी से वर माँगती हैं—

मूरति कृपाल मंजु माल दै बोलत भई,
पूजै मन भावना भावतो वरु वरिकै।

रंगभूमि का प्रसंग संक्षेप में परन्तु ठीक मानस जैसा ही है। भाषा आदि के प्रयोग से यह रचना मानस के वाद की सिद्ध होती है जैसे लक्ष्मण राजसभा में क्रोध करते हैं—

सुनहु भानुकुल कमलभानु जो अब अनुशासन पावौं।
को बापुरो पिनाक मेलि गुन मंदर मेरु नवावौं॥

विश्वामित्र के आने के बाद गीतों के कथा के साथ चलना पड़ता है। इस गीतात्मक प्रबंधात्मकता को तुलसी ने सूर से भी अधिक निभाया है। कथा-प्रबन्ध मानस से कुछ भिन्न है। इस प्रकार के गीतों में मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का उद्घाटन नहीं हो सकता, इससे तुलसी ऐसी परिस्थितियों को छोड़ते हुए चलते हैं—

रहे ठगि से नृपति सुनि मुनिवर के वचन।
कहि न सकत कछु राम प्रेम बस पुलकि गात भरे नीरु नयन॥
गुरु वसिष्ठ समुझाय कह्यो तब, हिय हरषाने जाने सेस सयन।
सौंपे सुत गहि पानि पायँ परि, भूसुर उर चले उमँगि चयन॥

इसी प्रकार अहल्या-उद्धार आदि कथाओं को निर्दिष्टमात्र कर दिया है। परन्तु विश्वामित्र के संग जाते हुए राम-लक्ष्मण के सौन्दर्य-वर्णन में कितने ही गीत लिखे हैं—

मुनि के संग विराजत वीर।
काकपच्छधर कर कोदंड सर सुभग पीत पट कटि तुनीर॥
वदन इंदु अंभोरुह लोचन स्याम गौर सोभा सदन सरीर।
पुलकित ऋषि अवलोकि अमित छवि उर न समात प्रेम की भीर॥
खेलत चलत करत मग कौतुक बिलसित सरिस सरोवर तीर।
तोरत लता सुमन सरसीरुह पियत सुधामय सीतल नीर॥
वैठत विमल सिलन विटपन पर पुनि पुनि वरनत छाँह समीर।
देखत नटत केलिकल तपवत मधुप मराल कोकिल-कीर॥
नैनन को फल लेत निरखि मृग खग सुरभी ब्रज-वधू अहीर।
तुलसी प्रभुहिं देत सब आसन निज निज मन सब कमल कुटीर॥

गीतावली में भी मानस की भाँति ही पूर्वराग का वर्णन है—

भोर फूल बीनबे को गये फुलवाई हैं।
सीसन रे पारे उपवीत पीत पट कटि,
दोना वामकरन सलोने सवाई हैं॥

परन्तु यहाँ सखी द्वारा सीता का उद्बोधन आदि नहीं। सीता स्वयं स्वकीया विश्रब्ध नवोढ़ा नायिका चित्रित की गई हैं। कवि एक ही छंद में सब प्रसंग कह डालता है—

सखिन सहित तेहि अवसर विधि संजोग,
गिरिजाजू पूजिबे को जानकी जू आई हैं।
निरखे लखन राम जाने ऋतुपति काम,
मोहि मानो मदन मोहनी मूड़वाई है॥
राखोजू श्रीजानकी लोचन मिलिबे को कोइ,
कहिबे के जोग न मैं बातें सी बनाई है।
स्वामी सिया सखिन लखन तुलसी को तैसो,
तैसो मन भये जाकी जैसी ऐ समाई है॥

इसके बाद सीता देवी से वर माँगती हैं—

मूरति कृपाल मंजु माल दै बोलत भई,
पूजै मन भावना भावतो वरु वरिकै।

रंगभूमि का प्रसंग संक्षेप में परन्तु ठीक मानस जैसा ही है। भाषा आदि के प्रयोग से यह रचना मानस के बाद की सिद्ध होती है जैसे लक्ष्मण राजसभा में क्रोध करते हैं—

सुनहु भानुकुल कमलभानु जो अब अनुशासन पावों।
को बापुरो पिनाक मेलि गुन मंदर मेरु नवावों॥

देखो निज किंकर को कौतुक हौ कोदंड चढ़ावों।
लै धावों भंजौं मृनाल ज्यों तौ प्रभु अनुज कहावों॥

शील का प्रस्फुटन विशेषता से हुआ है—

मुनि पद रेनु रघुनाथ माथे धरी है।
रामरुख निरखि लखन की रजाय पाय,
धराधर धरनि सुसाधन करी है।

विवाह-प्रसंग में तुलसी को राम से इतर भाइयों को देखने का समय मिला है जैसे—

जैसे ललित लषन लाल लोने।
तैसे ललित उरमिला परस्पर लखत सुलोचन कोने॥
सुपमासारु सिंगारसारु करि कनक रच्यो है तेहि सोने।
रूप प्रेम परिमिति न परत कहि बिथकि रही मति मौने॥
सोभा सील सनेह सुहावन समौ केलिगृह गौने।
देखि तियन के नयन सफल भये तुलसिदास के होने॥

अयोध्याकांड का वनगमन-प्रसंग तक का सारा वर्णन दस-बारह छंदों में है। मनोवैज्ञानिक स्थल छूट गये हैं। मंथरा का काम भी नहीं है—

सुनत नगर आनन्द बधावन कैकेयी बिलखानी।
तुलसीदास देव मायावस कठिन कुटिलता ठानी॥

इसके बाद सारा प्रसंग चित्रपट के बाहर है और दूसरे ही छंद में तुलसी कौशल्या की चिंता आरम्भ कर देते हैं। नवीनता है कि यहाँ कौशल्या राम से स्पष्टतः ही घर रहने के लिए अनुनय-विनय करती

हैं। कोमलता की रक्षा गीतिकाव्य में होनी ही चाहिये थी—

रहिं चलिये सुन्दर रघुनायक।
जे सुत तात वचन पालनरत जननिउ तात मानिवे लायक॥

सारांश कि सारा प्रसंग संक्षेप में है। वनपथ में नवीन प्रसंगों की योजना है जैसे—

फिरि फिरि राम सियातन हेरत।
तृषित जानि जल लेन लखन गये,
भुज उठाय ऊँचे टरि टेरत॥

अयोध्याकांड की भरत की कथा यहाँ दशांश भी नहीं है। कवि संकेतों में ही कथा का आभास देता है और भरत के कारुण्य का चित्र और भी मार्मिक हो उठता है। इस सारी कथा को तुलसी ने शुक-सारी-संवाद के दो पदों में कह दिया है—

शुक से गहवर हिय कह सारो।
वीर कीर सियराम लखन विन लागत जग अँधियारो॥
पापिनि चेरि अयानि रानि नृप हित अनहित न विचारो।
कुल गुरु सचिव साधु सोचत विधि कौन बसाइ उजारो॥
अवलोके न चलत भरि लोचन नगर कुलाहल भारो।
सुने न वचन करुनाकर के जब पुर परिवार सँभारो॥
भैया भरत भखेत के सँग वन सब लोग सिधारो।
हम पर पाइ पींजरन तरसत अधिक अभागि हमारो॥
सुनि खग कहत अम्ब मौनी रह समुझि प्रेम पथ न्यारो।
गये ते प्रभु पहुँचाय फिरे पुनि करत करम गुन गारो॥
जीवन जग जानकी लखन को मरन महीप सँवारो।
तुलसी और प्रीति की चरचा कहत कहा करि पारो॥

कहै शुक सुनहु सिखावन सारो।
विधि करतब विपरीत वामगति राम प्रेमपथ न्यारो॥
को नरनारि अवध खग मृग जेहि जीवन राम ते प्यारो।
विद्यमान सब के गवने वन वदन करक को कारो॥
अम्ब अनुज प्रिय सखा सुसेवक देखि विषाद बिसारो।
पच्छी परबस परे पींजरन लेखे कौन हमारो॥
रहि नृप की बिगरी है सब की अब एक सँवारनहारो।
तुलसी प्रभु निज चरन पीठि मिस भरत प्रान रखवारो॥

राम-भेंट आदि की सारी कथा संक्षेप में है—

ता दिन स्रिंगबेरपुर आयो।
राम सखा ते समाचार सुनि बारि बिलोचन छायो॥
कुस साथरी देखि रघुपति की हेतु अपनपौ जानी।
कहत कथा सियराम लखन की बैठेहि रैनि बिहानी॥
भोरहिं भरद्वाज आस्रम ह्वै करि निषादपति आगे।
चल्यो जनु तक्यो तड़ाग तृषित गज घोर घाम के लागे॥
बूझत चित्रकूट कहँ जेहिं तेहि मुनि बालक न बतायो।
तुलसी मनहुँ फनिक मनि ढूँढ़न निरखि हरखि उठि धायो॥

बिलोके दूर ते दोउ वीर
भरत भयो ठाढ़ो कर जोरि

काहे को मानत हानि हियै हौ।
प्रीति नीति गुन सील धरम कहँ तुम अवलम्ब हिये हौ॥
तात जात जानिके न ये दिन करि प्रयान मित बानी।
ऐहौं बेगि धरहु धीरज उर कठिन कालगति जानी॥

तुलसिदास अनुजहिं प्रबोधि प्रभु चरन पीठ निज दीन्हे।
मनहु सवन के प्रान पाहरू भरत सीस धरि लीन्हे॥

चित्रकूट से लौटकर आने पर माताओं की विरह-दशा का बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। मानस में इसका अभाव है। सूर का प्रभाव स्पष्ट ही है क्योंकि कौशल्या यशोदा के शब्दों को ही दुहराती जान पड़ती है—

राघव एक बार फिरि आवो।
ये वर वाजि विलोकि आपने वहुरो वनहिं सिधावो॥
जो पय प्याय पोपि कर पंकज वारवार चुचकारे।
क्यों जीवहिं मेरे राम लाड़िले ते अव निपट विसारे॥
भरत सौगुनी सार करत है अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं-दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम मारे॥
साहु पथिक जो मिले राम वन कहियो मात सँदेशो।
तुलसी और मोहिं सव हित ते इनको वड़ो अँदेशो॥

"पत्री" की भी योजना है—

सुनी मैं सखी मंगल चाह सुहाई।
सुभ पत्रिका निपादराज की आज भरत पहँ आई॥
कुँवर सो कुशल छेम तेहि अवसर कुलगुरु कहँ पहुँचाई।
गुरु कृपाल संभ्रम दुर घर पर सादर सवहिं सुनाई॥
वधि विराधु सुर साधु सुखी करि ऋपि सिख आसिख पाई।
कुम्भज शिष्य समेत संग सिय मुदित चले दोउ भाई॥
रेवा-विन्ध सुपास मध्यथल वसेहें परनगृह छाई।
पंथ कथा रघुनाथ पथिक की तुलसिदास मुनि गाई॥

आरण्यकांड की सभी कथाएँ दे दी गई हैं कोई परिवर्तन नहीं है। केवल वे संक्षेप में रसात्मकता के साथ हैं। किष्किंधाकांड में केवल दो छंद है। एक में राम सीता के आभूषण देखते हैं और जामवंत उन्हें प्रबोध करता है। दूसरी में राम स्वयं सुग्रीव को बुलाते हैं—

प्रभु कपिनायक को बोलि कह्यो है।
वर्षा गई सरद ऋतु आई अब लौं नहिं सिय सिंधु लह्यो है॥
जा कारन तजि लोक लाज तन राखि वियोग सह्यो है।
ताकौ तौ कपिराज आजु लगि कछू न काज निवह्यो है॥
सुनि सुग्रीव सभीत नमित मुख उत्तर देन चह्यो है।
आइ गये हरि जूथि देखि उर पूरि प्रमोद रह्यो है॥
पठये बदि बदि बत्रधि दसहु दिसि चले बल सबन गह्यो है।
तुलसी सिय लगि भवदधि मानो फिरि हरि चहत मह्यो है॥

सुग्रीव बाली की अवांतर कथा गीतों की एकता नष्ट करती है, इससे नहीं दी गई है। सुन्दरकांड की मुख्य कथा संक्षेप में रखा है परन्तु सीता के वियोग-वर्णन और हनुमान् के राम को संदेश देने में कई छंद लिखे गये हैं। कई नई कथाओं की सृष्टि की गई है जैसे विभीषण रावण से लांछित होता है तो मा के पास जाता है।

जाय माय पाँय परि कथा सो सुनाई है।
समाधान करत विभीषण को बारबार,
काह भयो तात लात मारे बड़ो भाई है।

विभीषण भाई कुबेर से मिलते हैं वहाँ सुमेरु पर शिव जी से भेंट होती है जो रामाश्रम में द्विधारहित हो जाने का उपदेश देते हैं। तब विभीषण राम के पास आते हैं। विभीषण-राम की भेंट में तुलसी ने

अनेक प्रकार से नवीनता लाने की चेष्टा की है और विस्तार भी दिया है। विभीषण के सचिव विभीषण की ओर से विनती करते हैं। राम जामवंत, सुग्रीव, नल, नील, अंगदादि को बुलाते हैं। हनुमान् से कहते हैं कि मुझे विभीषण साधु लगता है क्या मैं शरण दूँ? लक्ष्मण से भी सलाह लेते हैं—सब को राजी पाकर लक्ष्मण हनुमान् को सादर लेने भेजते हैं। अशोकवाटिका में सीता-त्रिजटा-संलाप को भी कवि नहीं भूला है। वास्तव में हृदय की प्रत्येक मार्मिक अवस्था का चित्रण करने में कवि सजग रहा है। हाँ, परुष भावों का चित्रण कम है।

लंकाकांड की कथा इसीसे थोड़े में है। गीतों में वीररस का उद्रेक होना भी असम्भव था। इसीसे युद्ध का एक गीत भी नहीं है। परन्तु लंकाकांड के अंतर्गत मार्मिक प्रसंगों का खूब चित्रण है। जैसे लक्ष्मण के शक्तिघात पर राम का शोक, हनुमान् का भरत के बाण से गिर कर शोक करना और लक्ष्मण की मूर्छा की खबर पाकर भरत, शत्रुघ्न और माताओं का उद्वेग। बाद को माताओं के कारुण्य के सुन्दर चित्र मिलेंगे—

१. आली, अब रामलखन कित ह्वैहैं।
चित्रकूट तजौ तब ते न लही सुधि बधु समेत कुसल सुत द्वैहैं॥
बारि बयारि विषम हिम आतप सहि बिनु बसन भूमि तल स्वैहैं।
कंदमूल फल फूल असन वन भोजन समय मिलत कत ह्वैहैं॥

२. बैठी सगुन मनावत माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौं॥

अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
जनक बोलइ पाँय परि पूछत प्रेम मगन मृदु बानी॥

३. छेमकरी बलि बोलि सुबानी।
कुसल छेम सिय राम लखन कब, ऐहैं अवधि अवध रजधानी॥
ससि मुख कुंकुम बरनि सुलोचनि मोचनि सोचनि बेद बखानी।
देवि दया करि देहि दरस फल, जोरि पानि बिनवहिं सब रानी॥

उत्तरकांड की कथा एकांततः नवीन है। तुलसी की मौलिक रचना है। इसमें राजा राम के आहार-विहार का सुन्दर वर्णन है जो कृष्ण-काव्य से होड़ करता है जैसे—

१. भोरे जानकीजीवन जागे।
सूत मागध प्रवीन वेनु बीना धुनि द्वार गायक सरस राग पागे॥
२. देखि सखी आज रघुनाथ सो ना बनी।

× × ×

सरजू मज्जन.. किहे संग सज्जन लिहे,
हेतु जन पर हिये कृपा कोमल घनी।
सजनि आवत भवन मत्त गजवर गवन,
लंक मृगपति ठवनि कुँवर कोसलधनी॥

३. कृष्ण-छवि के ढंग पर राम-छवि के वर्णन के अनेक छंद हैं।

४. हिंडोल में रामसीता का परवस विहार भी सूर की कल्पना से प्रभावित है—

आली री राघो जी के रुचिर हिंडोलना झूलन जैये।

यह तुलसी की मर्यादा भावना के विपरीत पड़ता है। बाद के राम-साहित्य-विकास में कृष्णकाव्य से प्रभावित तुलसी के इन स्थलों ने विष का काम किया है।

५. वसंत विहार जो विद्यापति और सूर के कृष्णकाव्य के ढंग का ही है जैसे—

खेलत वसंत राजाधिराज। नभ कौतुक देखत सुर समाज॥
सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ। झोरिन अबीर पिचकारि हाथ॥
बाजे मृदंग डफताल बेनु। छिरकैं सुगंध भरै मलय रेनु॥
उत युवति यूथ जानकी संग। पहिरे पट भूषन सरस रंग॥
लिये छड़ी बेंत सोधैं विभाग। चाचरि झुमक गावैं सरस राग॥

परन्तु अंत में तुलसी फिर रामकथा को उठाते हैं और सीता के द्वितीय वनवास का लोभ संवरण नहीं कर पाते। इससे उन्हें कुछ करुण परिस्थितियों का चित्रण अवश्य मिल गया परन्तु उन्होंने सीता को वहाँ छोड़ दिया, उत्तर-रामचरित के भवभूति की तरह करुणा के कमण्डल से दो छींटे भी नहीं दिये—

दुखी सिय पतिविरह तुलसी सुखी सुत सुख चाइ।
आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ॥

इसी तरह उन्होंने दुखी कैकेयी पर आवश्यकता से अधिक निष्ठुरता बरती है—

कैकेयी जो लों जियत रही।
तौ लौं बात मात सों मुँह भरि भरत न भूलि कही॥

मानी राम अधिक जननी ते जननिहु गहनि गही।
सीय लखन रिपुदमन राम रुख लखि सब की निबही ॥

इससे राम के शील की चाहे कितनी ही प्रतिष्ठा हो जाय परन्तु सहृदय भक्त भरत का गौरव घटता है।

अंतिम पद से विनयपत्रिका के लेखन का आभास मिलता है—

तुलसिदास जिय जानि सुअवसर,
भक्तिदान तब माँगि लियो।
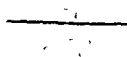
तुलसी की मौलिकता

तुलसी की मौलिकता पर विचार करने से पहले हमें उन ग्रन्थों से उनकी तुलना करनी होगी जिनका आभार तुलसी ने स्वीकार किया है या जो परोक्ष या अपरोक्ष रूप से तुलसी को प्रभावित कर सके हैं। ये ग्रंथ हैं भागवत, वाल्मीकि रामायण, आध्यात्म रामायण, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक और भगवद्‌गीता।

१. भागवत और रामचरितमानस—मध्ययुग के वैष्णव धर्म के आन्दोलनों में श्रीमद्‌भागवत का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। शंकराचार्य, रामानुज, माध्व और निम्बार्क सभी वैष्णव आचार्यों का इस ग्रंथ से परिचय था, इसका प्रमाण हमारे पास है। इनमें से कुछ ने भागवत पर टीकाएँ लिखी हैं और उसे प्रमाण ग्रन्थों में स्थान दिया है। स्पष्ट है कि मध्ययुग में श्रीमद्‌भागवत की मान्यता इतनी अधिक थी कि कोई भी आचार्य उसे छोड़ कर अपने मत का प्रतिपादन नहीं कर सकता था। इसीलिए प्रत्येक आचार्य को इसकी सम्यक् सैद्धांतिक व्याख्या करनी पड़ी। मध्य युग के समस्त कृष्णभक्त संप्रदायों में भागवत के पठन-पाठन और कथा का प्रबन्ध था। वल्लभ-कुल-सम्प्रदाय में भागवत की कितनी मान्यता थी। यह इसी बात से प्रगट है कि इस सम्प्रदाय के सबसे बड़े कवि सूरदास को अपनी मौलिक रचना को भागवत के ढाँचे पर उपस्थित करना पड़ा।

भागवत की इसी मान्यता के कारण रामभक्त तुलसी को भी उसका सहारा लेना पड़ा। यही नहीं, सूक्ष्म अध्ययन से यह पता चलता है कि रामचरितमानस की रचना के समय श्रीमद्भागवत बराबर तुलसी के सामने रही है। तुलसी ने यह चेष्टा की है कि वे भागवत के कृष्ण के समान ही राम की स्थापना करें। वे ऐसा करने में सफल भी हुये हैं। यह प्रसिद्ध है कि तुलसी काशी के वल्लभ सम्प्रदाय के मंदिर में कुछ दिन रहे थे और कदाचित् वहाँ रहते हुए ही उन्होंने कृष्णगीतावली की रचना की। इन सब बातों से स्पष्ट है कि तुलसी के लिये भागवत एक महत्त्वपूर्ण आधार ग्रन्थ रहा है यद्यपि उसका प्रभाव अधिकांश अपरोक्ष रूप में ही ढूँढ़ा जा सकता है। आगे हम इसी प्रभाव को स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे।

पहले हम श्रीरामचरितमानस के ढाँचे की बात लेते हैं—

(१) भागवत में ग्रन्थ के आरम्भ में कल्पवृक्ष का रूपक है। तुलसीदास ने अनेक स्थान पर रामकथा को कल्पतरु कहा है। उन्होंने भी मानस के आरम्भ में रामचरितमानस के रूप में एक सुन्दर रूपक की प्रतिष्ठा की है।

(२) भागवत की भाँति रामचरितमानस भी सम्वाद-काव्य है।

(३) भागवत महाकाव्य नहीं है। रामचरितमानस भी महाकाव्य नहीं है। काव्याचार्यों ने महाकाव्यों की एक विशिष्ट परिभाषा दी है। उसके अनुसार महाकाव्य की कथा को सर्गों में बँटा होना चाहिये। महाकाव्यों और पुराणों में सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर यही है कि पुराणों में कथा सम्वाद रूप में अविभाजित चलती है और प्रसंगोत्तर कथाओं और अंतर्कथाओं को भी स्थान मिलता है जिनका महाकाव्य में कोई स्थान नहीं है। रामचरितमानस में कथा

का एक अखण्ड स्रोत बहता है और यद्यपि वह कांडों में विभाजित है तथापि यह विभाजन बहुत दूर तक कृत्रिम है और संस्कृत रामायणों की परम्परा की रक्षा के लिये ही किया जान पड़ता है। तुलसी के मानस में भागवत् की भाँति अंतर्कथायें नहीं हैं परन्तु अनेक अंतर्कथाओं का निर्देश अवश्य है जिससे स्पष्ट है कि तुलसी ने कथासौष्ठव की रक्षा के लिये उन्हें अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है यद्यपि उन्होंने अपनी कथा को पुराणों के ढंग पर ही सोचा है।

पुराणों में वर्षा और शरद को ही स्थान मिला है, अन्य ऋतुओं के दर्शन नहीं होते। यह एक ऐसी परम्परा है जिसका कारण अज्ञात है। महाकाव्यों में समस्त ऋतुओं, दिवसरात्रि, संध्या, चंद्रोदय, सूर्योदय, वन, पर्वत, नदी, सागर आदि के सविस्तार वर्णन अपेक्षित हैं, रामचरितमानस में महाकाव्यों की प्रकृतिविषयक इन मान्यताओं का अनुसरण नहीं किया गया है। जहाँ प्रकृति के वर्णन भी हैं वहाँ वे सविस्तृत नहीं हैं और इन पर नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का आरोप किया गया है। वास्तव में प्रकृति वर्णन के नाम पर मानस में यदि कुछ है तो पुराण-परिपाटी का वर्षा और शरद ऋतु वर्णन ही है।

(४) वाल्मीकि रामायण में रावण के जन्म, तपस्या, वरदान प्राप्ति और ऋषि-मुनियों पर उसके अत्याचार की कथा लंकाकांड में रावण-वध के बाद दी है। रामचरितमानस में यह सारी कथा रामजन्म की भूमिका के रूप में उपस्थित की गई है। इससे कथा विकास में कलात्मकता का समावेश हो जाता है। पाठक जानना चाहता है कि राम-रावण युद्ध का क्या कारण है और उसकी जिज्ञासा को रावण-वध तक अटकाये रखना कला की दृष्टि से एक

दोष है। सम्भव है तुलसीदास ने भागवत की कंसवध कथा से रामकथा को इस रूप में उपस्थित करने का सूत्र ग्रहण किया हो।

(५) भागवत में कृष्ण कथा की समाप्ति पर वेदव्यास ने एकादश स्कंध के अंतर्गत आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों पर गीताओं के रूप में सम्वाद उपस्थित किये हैं। रामचरितमानस के उत्तरकांड में रामकथा केवल कुछ पृष्ठों पर समाप्त हो जाती है और शेष पृष्ठों में भागवत के एकादश स्कंध की भाँति ही आध्यात्मिक विवेचन चलता है। भागवत में कृष्ण ने उद्धव से गीता कही है, रामचरितमानस के उत्तरकांड में भी इस प्रकार की एक गीता है जो राम ने पुरवासियों के प्रति कही है, रामचरितमानस के उत्तरकांड में कागभुशुण्डि और गरुणसंवाद का वही स्थान है जो भागवत में एकादश स्कंध का है।

(६) भागवत के द्वादश स्कंध में भागवत के विषयों की सूचनिका उपस्थित की गई है। लगभग सभी पुराणों के अंत में इसी प्रकार की विशेष सूची मिलती है। रामचरितमानस के उत्तरकांड में तुलसीदास ने भी कागभुशुण्डि के मुख से इसी प्रकार की सूची कहलाई है। (उत्तर० ६४-६८)

(७) भागवत की तरह तुलसीदास की रामकथा भी माहात्म्य के साथ समाप्त होती है।

ऊपर हमने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि श्रीमद्भागवत और रामचरितमानस का संगठन एक प्रकार का है और तुलसीदास इस विषय में अवश्य ही श्रीमद्भागवत के ऋणी हैं परन्तु अनेक प्रसंगों की तुलना करने पर यह निश्चय हो जाता है कि तुलसीदास

की दृष्टि भागवत के दशम स्कंध पर ही अधिक रही है जिसमें भगवान श्रीकृष्ण की कथा है। नीचे हम उन प्रसंगों की तुलना करेंगे जिन पर भागवत का ऋण है—

(१) भागवत स्कंध १० अध्याय १ छंद १५-२६ में पृथ्वी के ब्रह्मा के पास जाने, ब्रह्मा आदि देवताओं की स्तुति और ब्रह्म का आकाशवाणी का वर्णन है। रामचरितमानस में यह प्रसंग इस प्रकार है—

अतिसय देख धर्म की हानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥

× × ×

धेनु रूप धरि हृदय विचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहूँ ते कछु काज न होई॥

छंद—सुर मुनि गंधर्वा मिल कर सर्वा गे विरंचि के लोका।
संत गोतनधारी भूमि विचारी परम विकल भय सोका॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछु न बसाई।
जाकर तैं दासी सो अविनासी हमरेउ तोर सहाई॥

सोरठा—धरनि धरहि मन धीर कह विरंचि हरिपद सुमिरु।
जानत जन कर पीर प्रभु भंजिहि दारुन विपति॥१८४॥

......विरंचि मन हरपि नयन वह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मति धीर॥

× × ×

गगन ब्रह्म बानी सुनि काना । तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ॥
तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा । अगम भई भरोस जिय आवा ॥

निज लोकहिं विरंचि गे देवन्ह इहई सिखाई ।
बानर तनु धरि धरि महि हरिपद सेवहु जाई ॥

(२) भागवत और रामचरितमानस में भगवान् के प्राकट्य के प्रसंग लगभग मिलते-जुलते हैं। "जिस समय भगवान् के आविर्भाव का अवसर आया, स्वर्ग में देवताओं की नौबतें अपने आप बज उठीं। किन्नर और गंधर्व मधुर स्वर से गाने लगे और सिद्ध और चारण भगवान् के मंगलमय गुणों का बखान करने लगे। विद्याधारियाँ अप्सराओं के साथ नाचने लगीं। बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि आनन्द से भर कर पुष्पों की वर्षा करने लगे—जल से भरे हुये बादल धीरे-धीरे समुद्र के पास जाकर गर्जना करने लगे।" (भाग० स्कंध १० अ० ३ छंद २-८)

गगन विमल संकुल सुर जूथा । गावहिं गुन गंधर्व बरूथा ॥
बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी । गहगहि गगन दुँदुभी बाजी ॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा । बहु विधि लावहिं निज-निज सेवा ॥

—(बालकांड १६१)

दोनों ग्रन्थों में बालक भगवान् का रूप भी एक प्रकार का है। है। भागवत में लिखा है—"उसके नेत्र कमल के समान कोमल और विशाल हैं। चार सुन्दर हाथों में शंख, चक्र, गदा, और कमल लिये हैं। वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न है...वर्षा कालीन मेघ के समान परम सुन्दर स्यामल सरीर।"

"लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन वनमाला नयन विसाला सोभा सिंधु खरारी ॥"

भागवत में देवकी जिस प्रकार बालक कृष्ण की प्रार्थना करती हैं उसी प्रकार मानस में कौशल्या बालक राम की प्रार्थना करती हैं। भागवत में देवकी भगवान् के ऐश्वर्य का वर्णन करती हुई कहती हैं—वही परम-पुरुष परमात्मा अब मेरे गर्भवासी हुए, यह आपकी अद्‌भुत मनुष्य-लीला नहीं तो और क्या ? मानस में कौशल्या भी इसी प्रकार चिंता करती हैं—

मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै।

भागवत में देवकी विनती करती हैं—"आप शंख, चक्र, गदा और कमल की शोभा से युक्त अपना यह चतुर्भुज रूप छिपा लीजिए, सामान्य बालक का रूप धारण कर लीजिए।" भगवान् भी तुरन्त एक साधारण शिशु का रूप धारण कर लेते हैं। मानस में भी इसी प्रकार है—

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसु लीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा ॥

भागवत में बालक कृष्ण देवकी को उसके पूर्व जन्म और वरदान-प्राप्ति की कथा सुनाते हैं। मानस में तुलसी इस प्रकार की कथा का संकेत ही करके रह जाते हैं—

कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।

(३) भागवत के कृष्ण जन्मोत्सव (अध्याय ५० छंद १-१६) के वर्णन को सूरदास ने सूरसागर में उसी प्रकार सविस्तृत लिखा है और कदाचित् तुलसीदास भागवत और सूरसागर दोनों के वर्णनों से प्रभावित हैं यद्यपि उनका वर्णन संक्षेप में है (बालकांड १६४)

(४) भागवत में नामकरण के अवसर पर महर्षि गर्ग कहते हैं—"तुम्हारे पुत्र के और भी कई नाम हैं तथा रूप भी अनेक हैं। मैं तो उन नामों को जानता हूँ परन्तु संसार के साधारण लोग नहीं जानते हैं।" मानस मे वसिष्ठ भी इसी प्रकार कहते हैं—

इन्हके नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥

—(बालकांड १६६)

(५) भागवत में बालकृष्ण के चमत्कारों का सुन्दर वर्णन है। उन्हीं के ढंग के कुछ चमत्कारों की सृष्टि तुलसीदास ने की है—

एक बार जननी अन्हवाए। करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई॥
गै जननी सिसु पहिं भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदयँ कंप मन धीर न होई॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोर कि आन विसेखा॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुस्कानी॥

भागवत में माटी-प्रसंग में बालकृष्ण जिस प्रकार माता को विराट्

रूप दिखलाते हैं, उसी प्रकार भगवान् राम कौशल्या को अपना विराट् रूप दिखाते हैं—

देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥

—(बालकांड २०१)

(६) भागवत स्कंध १० अ० ४५ में श्रीकृष्ण के अध्यात्म के प्रसंग में लिखा है—"परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम सारा विद्याओं के प्रवर्त्तक है। इस समय केवल श्रेष्ठ मनुष्य का-सा व्यवहार करते हुए ही वे अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने गुरु जी के केवल कहने मात्र से सारी विद्याएँ सीख लीं।" रामचरितमानस में भी इसी प्रकार का कथन है—

गुरु-गृह गये पढ़न रघुराई। अल्पकाल विद्या सब आई॥
जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥

(७) भागवत के श्रीकृष्ण के मथुरा-प्रवेश और रामचरित-मानस के राम-लक्ष्मण के जनकपुर-प्रवेश में इतना अधिक साम्य है कि कोई भी पाठक इस बात से इंकार नहीं कर सकता कि तुलसी के सामने भागवत का यह प्रसंग था।

(८) भागवत के रंगभूमि-प्रवेश के दर्शकों के विभ्रम को तुलसी ने अपने मानस में उसी तरह रख दिया है—"जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ रंगभूमि में पधारे, उस समय बड़े-बड़े पहलवान यह समझ कर कि इनका शरीर वज्र-सा कठोर है, रौद्र-रस का अनुभव करने लगे। साधारण मनुष्यों ने ऐसा समझा कि

ये कोई श्रेष्ठ पुरुष हैं और इसी अवस्था में उनकी विचित्रताओं का स्मरण करके अद्भुत रस की अनुभूति की। स्त्रियों को ऐसा जान पड़ा मानो ये मूर्तिमान कामदेव हैं। वे शृङ्गार-रस की अनुभूति में तन्मय हो गईं। ग्वालबाल उन्हें अपना स्वजन समझ कर हँसने लगे और हास्यरस का आस्वादन करने लगे। पृथ्वी के दुष्ट शासकों ने यह समझ कर कि हमारे शासन करनेवाले—हमें दंड देनेवाले हैं, उनमें वीररस का अनुभव किया और माता-पिता के समान बड़े-बूढ़ों ने उन्हें नन्हें-नन्हें बच्चों के रूप में अखाड़े में आते देख करुणारस की अनुभूति प्राप्त की। कंस ने समझा कि यह तो हमारा काल ही है और इस प्रकार वह भयानक रस की अनुभूति में डूब गया। अज्ञानियों ने उनके शरीर पर हाथी का खून, मद आदि लगा देख कर विकृत रूप की कल्पना की, इसीलिये उन्हें वीभत्सरस का अनुभव हुआ। योगियों ने उन्हें परमात्वतत्त्व समझ कर शांतरस का साक्षात्कार किया। भगवान् के भक्त और वृष्णिवंशी उन्हें अपना इष्टदेव समझ कर प्रेम और भक्ति के रस में डूब गये।

रामचरितमानस में राम-लक्ष्मण के स्वयंवर में पहुँचने पर भी इसी प्रकार का वर्णन है—

जिन्हके रहो भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥
देखहि रूप महा रनधीरा। मनहुँ वीररस धरे सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप वेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नर भूपन लोचन सुखदाई॥

नारि विलोकहिं हरपि हियँ, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि, मूरति परम अनूप॥

विदुषन्ह प्रभु विराट्मय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक-जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥
सहित विदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता॥

—(बालकांड २४२)

(९) तुलसीदास ने किष्किंधाकांड के अंतर्गत वर्षा और शरद् वर्णन को भागवत के आधार पर ही लिखा है। कहीं-कहीं तो उन्होंने भागवत की सामग्री उसी प्रकार, बदले बिना, ग्रहण कर ली है। बीसवें अध्याय की लगभग समस्त सामग्री का उपभोग तुलसी ने अपने ढंग पर कर लिया है। (तुलना कीजिए भाग अ० २० छंद ३-३४ और कि० ४२२-४२४) एवं भा० अ० वही छंद ३२-४६ और कि० ४२४-४२५) अंतर केवल इतना है कि तुलसी ने भागवत की दार्शनिक उपमाएँ नहीं ली हैं और प्रसंग को एकदम ज्ञानमंडित नहीं कर दिया। उनकी दृष्टि नैतिक तत्त्वों पर अधिक है। तुलसी ने भागवत के प्रकृतिवर्णन ढंग को इसलिए ग्रहण किया है कि यह ढंग उनके लिए अत्यन्त उपयोगी था और तुलसी की नैतिकता और मर्यादा की भावना भी इसमें पुष्टि पा जाती थी। इस ढंग को तुलसी ने अन्य स्थानों पर भी यत्किंचित ग्रहण किया है।

(१०) भागवत में गोपियों की कृष्णवियोग की प्रलापपूर्ण उक्तियाँ ही रामचरितमानस के उस प्रसंग में प्रतिध्वनित होती हैं जहाँ सीताहरण के बाद राम विरहाकुल होकर लतातरुओं से इस प्रकार पूछते हैं—

लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥
कुन्दकली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी॥
बरुन पास मनोज धन-हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥
किमि सहि जात अनख तोहिं पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहु महा बिरही अति कामी॥

—(आरण्यकांड २६ ख)

तुलना से यह पता चल जायगा कि तुलसीदास भागवत के गोपीविरह से परिचित थे। यह तुलसीदास की मौलिकता है कि उन्होंने मूल भावना भागवत से लेकर उस पर रीतिशास्त्र का रंग चढ़ा कर एक नई सृष्टि की है। उन्होंने नारी-अंगों के उपमानों को एक स्थान पर रख दिया है और इस प्रकार श्रीजानकी जी के सौंदर्य का उद्घाटन लिया है।

(११) भागवत स्कंध १२, अध्याय २ में व्यास जी ने कलयुग का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। मानस उत्तरकांड में भी इसी प्रकार कलियुग का वर्णन है।

ऊपर भागवत के अनेक ऐसे उद्धरण उपस्थित किये हैं जो सब हमारे प्रतिपाद्य विषय पर प्रकाश पड़ता है। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य प्रसंगों और स्थलों पर भी भागवत का प्रभाव लक्षित है। भागवत स्कंध १२ अध्याय ३ में नाम संकीर्तन का माहात्म्य है। रामचरितमानस की कथा के आरम्भ में तुलसी राम नाम के माहात्म्य

का सविस्तार वर्णन करते हैं (बालकांड १६—२७) जैसा हम अन्यत्र कह चुके हैं उत्तरकांड का ढाँचा भागवत के ग्यारहवें स्कंध पर खड़ा किया गया है; परन्तु उसमें दार्शनिक विवेचन की अपेक्षा ज्ञान के ऊपर भक्ति की महत्ता ही अधिक स्थापित की गई है। रामचरित-मानस में संत-असंत, ज्ञान और भक्ति के द्वन्द्व और वर्णाश्रम धर्म को विस्तार मिला है। भागवत के ग्यारह-बारह स्कंध में यही सब विषय आते हैं परन्तु वहाँ उनका वर्णन विशद नहीं है।

भागवत और रामचरितमानस के दार्शनिक और आध्यात्मिक भावों में भी साम्य है। यद्यपि आचार्यों ने श्रीमद्भागवत पर अनेक धार्मिकवादों का आरोप किया है, हम यह जानते हैं कि उससे मूल में अद्वैत का ही समर्थन होता है। वास्तव में भागवत और रामचरितमानस का आध्यात्मिक संदेश एक ही है। इसे हम अद्वैत भक्ति कह सकते हैं। रामचरितमानस में अद्वैतवाद का ही समर्थन मिलता है परन्तु यह अद्वैतवाद शंकर के अद्वैतवाद और रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद से भिन्न है। यह भिन्नता इस कारण है कि तुलसी की दार्शनिक भूमि उनकी अध्यात्म भूमि से प्रभावित हैं। वे तर्कवादी नहीं। एक ही पंक्ति में वे निर्गुण ब्रह्मवादी भी हो जाते हैं और साथ ही सगुण ब्रह्मवादी भी बने रहते हैं। वे उत्तरकांड में कहते हैं—

जै सगुण निर्गुण रूप राम अनूप भूप शिरोमणे

× × ×

जे ब्रह्म अजयद्वैत अनुभव गम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहु नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥

इसी दृष्टिकोण के आधार पर तुलसीदास ने निर्गुण और सगुण में तादात्म्य में स्थापित किया है और कहा है—

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावत मुनि पुरान विधि वेदा॥
निर्गुण ब्रह्म सगुन भये कैसे। जल हिम उपल विलग नहिं कैसे॥
भागवत का दृष्टिकोण भी यही है—

इत्थं सतां ब्रह्म सुखानुभूत्या
दास्यं गतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानं नरदारकेण
सार्द्ध विजहुः कृतपुण्य पुञ्जाः॥

(ज्ञानियों की रागद्वेष विमुक्त विशुद्ध मनोवृत्ति में जो अखंड सच्चिदानन्द रूप से प्रकाशित होते हैं, दास्यभक्ति-परायण भक्त साधकों के लिए जो साक्षात् करुणानिधान परदैवत के रूप में प्रकट होते हैं, और मायाश्रित व्यक्तियों के सामने जो मनुष्य-बालक के रूप में 'प्रतीत होते हैं', उन्हीं साक्षात् भगवान् के साथ कृतपुण्य-पुञ्ज व्रजगोप बालक इस प्रकार विचित्र योजनरूप लीला-विहार कर रहे हैं)

अस्यामि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूत मयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसान्तरेण
साक्षात्तनैव किमुतात्म सुखानुभूतेः॥

(हे भगवन्! यह जो आपका नील जलद-कान्ति शरीर है यह भौतिक या मात्रिक नहीं है। यह आपके भक्तों के इच्छानुसा

ही अभिव्यक्त होता है। इस वपु की कितनी महिमा है जो मैं जगत् रचयिता स्वयं ब्रह्मा भी समाहित चित्र के द्वारा समझने में समर्थ नहीं हो रहा हूँ, फिर सुख, चैतन्य और आत्मभूत तुम्हारे साक्षात् स्वरूप की महिमा मैं कैसे समझ सकूँगा। अर्थात् वह बोधगम्य नहीं है, साक्षात् बोध-स्वरूप है। श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता और रामचरितमानस तीनों ग्रन्थों में निर्गुण की अपेक्षा सगुण को ही सहजसाध्य माना है। भगवत्गीता में स्पष्ट लिखा है कि अव्यक्त, निर्विशेष ब्रह्म में आसक्ति कठिन है और उस आसक्ति का बनाये रखना और भी कठिन है, इसीलिए इन तीनों ग्रंथों में भक्तियोग की ही अधिक महत्ता है। तुलसीदास ने इसीलिए ज्ञान के पंथ को कृपाण की धार कह कर भक्ति के सहज मार्ग की ही प्रतिष्ठा की है। वास्तव में उपरोक्त तीनों ग्रंथों का बीज आध्यात्म तत्त्व एक ही है जिसे गीताकार ने इन शब्दों में कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज (१८-६६)
तमेव शरणं गच्छे सर्वभावेन भारत (१८-६२)

रामचरितमानस में भगवान् रामचंद्र भी इसी प्रकार कहते हैं—

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम वचन हृदय दृढ़ गहहू॥
सुलभ-सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥

भागवत के श्रीकृष्ण और मानस के श्रीरामचंद्र में भी समानता है। भागवत के श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से कोई भी इनकी कोटि तक नहीं पहुँचते। यही परब्रह्म कृष्ण अवतार धारण करते हैं। इन परब्रह्म कृष्ण का स्वाभाविक रूप निर्गुण है परन्तु वे अपने सगुण रूप में गोलोक में निवास करते हैं। भक्तों

के आनन्द के लिए यह गोलोकवासी कृष्ण वृन्दावन में अवतार लेते हैं। तुलसीदास ने अपने राम को भागवत के श्रीकृष्ण के समान ही प्रतिष्ठित किया है। उनके राम भी परब्रह्म हैं और सगुण रूप से साकेतवासी हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उनकी वंदना करते हैं। निर्गुण ब्रह्म (राम) भक्तों की रक्षा और पृथ्वी के भारहरण के लिए दाशरथि राम के रूप में अवतार लेते हैं। तुलसी ने कहीं-कहीं राम को महाविष्णु भी कहा है; परन्तु इस ओर उनका आग्रह अधिक नहीं है। हो सकता है, ऐसा आध्यात्म रामायण के प्रभाव के कारण हुआ हो जिसमें राम विष्णु के ही अवतार हैं, परब्रह्म नहीं हैं।

अंत में, भागवत और रामचरितमानस की तुलना करने पर हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि तुलसीदास ने भागवत का सहारा ही नहीं लिया है, उन्होंने अपने सामने भागवत का ही आदर्श रक्खा है। उन्होंने रामकथा को कृष्णकथा के ढाँचे पर खड़ा किया है और राम का वही रूप गढ़ा है जो रूप भागवत में कृष्ण का है। इस सामान्य साम्य के अतिरिक्त तुलसी ने भागवत के अनेक प्रसंगों, वर्णनों और काव्योपयोगी स्थलों से सहारा लिया है और कहीं-कहीं तो उनका उल्था-मात्र कर दिया है। जहाँ-जहाँ तुलसी की मनोवृत्ति भागवत की वर्णनशैली से मिल गई है, वहाँ-वहाँ तुलसी ने वह वर्णनशैली अपना ली है। उदाहरणार्थ हम वर्षा और शरद् के वर्णन उपस्थित कर सकते हैं। तुलसी नीति को महत्त्व देते थे। वे समाज और व्यक्ति के जीवन को मर्यादाभाव से पोषित देखना चाहते थे। भागवत के उपरोक्त वर्णनों ने उन्हें इसीलिए आकृष्ट किया कि उनकी शैली में वे प्रकृति-चित्रण के साथ-साथ उच्च नैतिक तत्त्वों की स्थापना कर सकते थे। भागवत में भी संत-असंत और

वर्णाश्रम संस्थापन जैसे विषयों पर लिखा गया है, परन्तु तुलसी के समय में इन विषयों पर अधिक विस्तार से और अधिकारपूर्ण ढंग से कहने की आवश्यकता थी। इसीलिये तुलसी ने इन प्रसंगों पर विशेष बल दिया। यह भी संभावना है कि तुलसीदास ने भागवत के उद्धव के चरित्र को अपने सामने रख कर ही भरत के चरित्र का निर्माण किया है। सत्संग, नाममाहात्म्य, आत्मा-परमात्मा और भक्तियोग के प्रकरणों में भी तुलसी थोड़े-बहुत भागवत के ऋणी हैं।

—वाल्मीकि और रामचरितमानस—वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस दोनों रामकथा संबंधी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। रामकथा-सम्बंधी सबसे पहला ग्रंथ कदाचित् वाल्मीकि रामायण ही है। यद्यपि कुछ विद्वानों का कहना है कि "दशरथ जातक" इससे पहले की चीज है या इसकी समकालीन रचना है। जो हो, वाल्मीकि रामायण रामकथा का आदि ग्रंथ है और तुलसी ही क्या, सभी पुराण और रामायणें अपनी कथा के लिए इसी ग्रंथ की ऋणी हैं।

उपरोक्त दोनों ग्रंथों में सबसे महान् अंतर दृष्टिकोण का है। वाल्मीकि चरित्रकाव्य लिख रहे हैं। पहले ही श्लोक में वाल्मीकि नारद से पूछते हैं—"इस समय संसार में गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी दृढ़व्रत बहुत प्रकार के चरित्र करनेवाला, प्राणीमात्र का हित करनेवाला, विद्वान्, शक्तिमान्, अति दर्शनीय, आत्मज्ञानी, क्रोध जीतनेवाला, तेजस्वी, निन्दारहित, जिसके संग्राम में क्रोध उत्पन्न होने पर देवता भी भयभीत हों, ऐसा कौन है? हे महर्षि! यह जानने की मुझे उत्कट इच्छा है और आप ऐसे मनुष्यों के जानने में समर्थ भी हैं।" नारद जी उत्तर में अयोध्या के राजा

रामचंद्र का नाम लेते हैं और उनके गुण बतलाते हैं। इन श्रेष्ठ चरित्रवान् पुरुष श्री रामचंद्र में विष्णु के अवतार का भी आरोपण किया गया है। पुत्रेष्टि यज्ञ के अवसर पर ब्रह्मा सहित देवता विष्णु से प्रार्थना करते हैं कि वे रावण आदि राक्षसों के नाश के लिए मनुष्य रूप में अवतार लें और विष्णु राजा दशरथ को अपना पिता बनाना स्वीकार करते हैं। विद्वानों का कहना है कि राम विष्णुत्व का आरोप वैष्णव धर्म के प्रथम पुनुरुत्थान के समय हुआ और वे अंश प्रक्षिप्त हैं, जिनमें राम को विष्णु या विष्णु का अवतार कहा गया है। यदि हम इन अंशों को प्रक्षिप्त स्वीकार न करें तो हम यह कह सकते हैं कि वाल्मीकि विष्णु के अवतार राम को श्रेष्ठ चरित्रवान् पुरुष के रूप में सामने रख रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदास के रामचंद्र इनसे भिन्न हैं उनका दृष्टिकोण इन पंक्तियों से स्पष्ट है—

मंगलकरनि कलिमल हरनि तुलसी-कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाप की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

तुलसीदास राम को श्रेष्ठ और आदर्शचरित्र के रूप में उपस्थित नहीं कर रहे हैं। उनके राम तो स्वयं भगवान् हैं जो मानवीय दुर्बलताओं से ऊपर हैं। वे अपनी लीला-द्वारा संसार के सामने सांसारिक व्यवहारों में मर्यादा और श्रेष्ठतम गुणों की स्थापना भले ही करते हों, तुलसीदास की रामकथा रामभक्ति की स्थापना के लिए लिखी गई है। यही एक लक्ष्य तुलसी के आगे है। वे कहते हैं—

"रामकथा जग मंगल करनी।"
"रामभगति-भूषित जिय जानी। सुनिहहि सुजन सराहि सुवानी॥"
"रामचरित सर विनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ॥"

तुलसी का सारा ग्रंथ इसी रामभक्ति पूर्ण दृष्टिकोण से प्रभावित है। तुलसी के राम विष्णु के अवतार नहीं, परब्रह्म हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश के ऊपर हैं (विधि हरि शम्भु नचावन हारे)। वे जहाँ भक्तों और साधुओं के परित्राण के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए अवतार लेते हैं या भक्तों के आनन्द के लिए अथवा भक्तों की बात पूरी करने के लिए।

वाल्मीकि की रामकथा पंचम सर्ग से आरम्भ होती है। अयोध्या के राजा दशरथ ने वैभव का वर्णन करने के बाद वाल्मीकि दशरथ की पुत्र-विषयक चिंता दिखलाते हैं। वाल्मीकि में राजा मंत्री को बुलाते हैं और सुमंत्र द्वारा पुरोहितों और गुरुओं को बुलाते हैं। उन्हें पुत्र न होने का दुःख बतला कर अश्वमेध यज्ञ करने की इच्छा प्रकट करते हैं। ऋषि लोग उनकी बात स्वीकार करते हैं, परन्तु इसी समय सुमंत राजा से कहते हैं कि उन्होंने सनत्कुमार से सुना है कि शृङ्गीऋषि उन्हें पुत्र देंगे। सुमंत के यह वचन सुन कर राजा ने गुरु वशिष्ठ को बुलाया उनकी सलाह ले मंत्री और रानियों को ले कर वे शृंगी ऋषि के आश्रम में गये जो दूर अंग देश में था। वहाँ अंग देश के राजा और उनके मित्र रोमपाद भी बैठे थे। कुछ दिनों वहाँ रह कर दशरथ रोमपाद और शृंगी ऋषि को ले कर अयोध्या लौट आये। शृंगी ऋषि ने यज्ञ के लिये विशाल आयोजन कराया। राजा के समस्त सम्बंधी और दूर देश के राजा इकट्ठे हुए। निश्चित तिथि को यज्ञ आरम्भ हुआ। इस समय यज्ञ के लिए छोड़ा हुआ घोड़ा लौट आया था। वाल्मीकि में यज्ञ के अवसर पर

दानादि का सविस्तार वर्णन है। रामचरितमानस में यह प्रकरण इस प्रकार है—

एक बार भूपति मनमाहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं॥
गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि विनय विसाला॥
निज दुखसुख सब गुरुहि सुनायउ। कहि बसिष्ठ बहु विधि समुझायउ॥
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी॥
शृंगी ऋषिहिं वसिष्ठ बुलावा। पुत्र काम सुभ यज्ञ करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चारुकर लीन्हें॥
जो कुछ वसिष्ठ हृदय विचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥

तब अदृश्य भये पावक सकल सभहिं समुझाय।
परमानंद मगन नृप, हरप न हृदय समाय॥ १८९॥

वाल्मीकि अध्याय १२ में राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुहन के जन्म दान, नामकर्ण, विद्याध्ययन, अस्त्र-शस्त्र विद्या, शिक्षाप्राप्ति, पोडशावस्था की प्राप्ति और गाधितनय विश्वामित्र के आगमन की कथा है। परन्तु तुलसी ने इन प्रसंगों में स्पष्टतः आध्यात्म रामायण और भागवत को अपना आधार माना है। आध्यात्म के आधार पर तुलसी राम के चतुर्भुज रूप में जन्म और माता की प्रार्थना से शिशु रूप ग्रहण की कथा लिखते हैं। भागवत के कृष्णजन्मोत्सव से अयोध्या की शोभा का वर्णन ग्रहण करते हैं। रामजन्मोत्सव का उत्साह भी वहीं से लिया गया है। राम के नामकरण, शिशुचरित, विराट्रूप, बालभेष वर्णन, बालचरित, सहज ज्ञानप्राप्ति की कथायें भागवत के आधार पर ही खड़ी की गई हैं। वाल्मीकि में इनका अभाव है। यह अंतर दृष्टिकोण के कारण है। वाल्मीकि चरित्र

काव्य लिख रहे हैं। शिशु और बालक राम उनके लिए अनुपयोगी हैं। वे तो लीला काव्य लिख रहे हैं—

व्यापक सकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप॥ २०५॥

तुलसी ने उन सब प्रसंगों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है जो भक्त की भक्तिभावना को करने में काम आ सकते हैं।

वाल्मीकि और तुलसी का विश्वामित्र प्रसंग लगभग एक-सा है, परन्तु तुलसी ने समस्त अप्रासंगिक प्रकरणों को हटा दिया है। दृष्टिकोण के अंतर ने यहाँ भी अंतर कर दिया है। वाल्मीकि में दशरथ राम के बालक होने और रावणादि राक्षसों की निर्दयता और उनके पराक्रम की दुहाई देते हैं। तुलसी में दशरथ की उक्तियों को अधिक मनोवैज्ञानिक बना दिया गया है—

चौथेपन पायउँ सुत चारी...किसोरा २०८

वाल्मीकि में दशरथ की बात सुन कर ऋषि रुष्ट हो जाते हैं और चले जाना चाहते हैं (अ० २१) तुलसी में हर्षित होते हैं (हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी २०८)। दोनों ग्रंथों में वशिष्ठ को समझाना पड़ता है और अंत में राजा राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेज देते हैं; परन्तु जहाँ वाल्मीकि में यह सब सविस्तार है, वहाँ तुलसी इतने संक्षेप से काम लेते हैं—

तब वसिष्ठ बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा॥

वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र का विद्यादान देना, अंग देश और

गंगा-सरयू-संगम की कथायें, ताड़का का वृत्तांत की अप्रासंगिक कथाएँ सविस्तार हैं। स्वयं ताड़का वध यहाँ पच्चीस छंदों में है, तुलसीदास ने उसे चौपाइयों में समाप्त कर दिया है—

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। द न जानि तेहि निजपद दीन्हा॥

—(बालकांड २०६)

बाल्मीकि में इसके पश्चात् विश्वामित्र का अस्त्र-शस्त्र दान और राम-द्वारा उन्हें ग्रहण करने और मानसिक अस्त्र का रूप देने का वर्णन है। तुलसी में न यह अस्त्र-शस्त्र स्वयं उपस्थित होते हैं, न मानसिक अस्त्र-शस्त्र का रूप ग्रहण करते हैं तुलसी केवल उल्लेखमात्र कर देते हैं—आयुध सर्व-समर्पि के २०६ इसके बाद राम यज्ञ-रक्षा का भार ग्रहण करते हैं। और राक्षसों का संहार करते हैं। मानस में यह सब कथा केवल ५ चौपाइयों में अत्यन्त द्रुतगति से कह दी गई है। युद्ध-प्रसंग का निर्देशमात्र है। तदन्तर विश्वामित्र राम से मिथिला के धनुषयज्ञ की कथा कहते हैं और उन्हें साथ लेकर चलते हैं। तुलसी में इसका भी इंगित-मात्र है—

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिय जाई॥
धनुष यज्ञ सुनि रघुकुलनाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा॥

—(बालकांड २१०)

बाल्मीकि में विश्वामित्र राम से मार्ग में अनेक अप्रासंगिक कथायें कहते हैं। तुलसी ने इनमें से केवल गंगा की कथा का निर्देश किया है—

गाधि सुनू सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥

—(बालकांड २१२)

इसके बाद गौतम के आश्रम में विश्वामित्र अहल्या शाप की सारी कथा सुनाते हैं। तुलसी में केवल इंगित है—

सकल कथा मुनि कही विशेषी।

—(बालकांड २१०)

वाल्मीकि में अहल्या नारी शरीर में ही प्रस्तररूप में है, परन्तु अदृश्य है क्योंकि गौतम के शाप से कोई उसे देख नहीं पाता। तुलसी में अहल्या शिलारूप में है। तुलसी ने इस कथा में आध्यात्म रामायण को ही अपना आधार बनाया है। वाल्मीकि में जनकपुर प्रवेश का वर्णन नहीं है। विश्वामित्र सीधे जनक की यज्ञ-सभा में पहुँचते हैं। वहाँ जनक और उनके पुरोहित शतानन्द उनका स्वागत करते हैं और विश्वामित्र राम-लक्ष्मण से उनका परिचय कराते हैं। तुलसी में ऋषि के आने का समाचार सुनकर सचिव के साथ जनक उनसे आकर मिलते हैं। इस समय राम फुलवारी देखने चले गये हैं। वे लौटते हैं तब जनक के पूछने पर विश्वामित्र उनका परिचय करा देते हैं। वाल्मीकि में स्वयम्वर की आयोजन नहीं है। वहाँ जनक की आज्ञा पाकर मंत्री ५००० महापराक्रमी योद्धाओं से खिचा कर वह रथ जनक के सामने ले आते हैं जिसमें धनुष रखा है। विश्वामित्र की आज्ञा पाकर राम धनुष को तोड़ देते हैं। इसके बाद विश्वामित्र की सलाह से जनक मंत्रियों को राजा दशरथ को बुलाने को अयोध्या भेज देते हैं। तुलसी में यह सारी कथा दूसरे ही ढंग पर है। इसमें अनेक प्रसंग ऐसे हैं जो वाल्मीकि में नहीं हैं। उदाहरण के लिये राम का जनकपुर भ्रमण और पुरनारियों के राम-दर्शन की कथाएँ जो भागवत से ली गई हैं और सीता के पूर्वानुराग की कथा जिसका आधार हनुमन्नाटक है। हनुमन्नाटक के आधार

पर ही तुलसी स्वयंवर की योजना करते हैं, परन्तु इसमें भी इतनी मौलिकता रखते हैं कि राम के शौर्य की प्रतिष्ठा के लिये परशुराम प्रसंग स्वयम्वर की कथा में ही मिला देते हैं। वाल्मीकि रामायण में परशुराम के दर्शन लौटती हुई बरात को मार्ग में होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकि रामायण में रामचरितमानस की रामकथा के एक महत्त्वपूर्ण बड़े भाग (२१८—२८६) का अभाव है। वाल्मीकि रामायण में जनक के दूतों के अयोध्या पहुँचने, सीता स्वयम्वर का वृत्तान्त सुनाने और राजा दशरथ तथा बरातियों के जनकपुर पहुँचने की कथा केवल २० छंदों में कह दी गई है। तुलसी-दास ने इस कथा को अत्यन्त काव्यात्मकरूप दिया है और दूतों के नगर पहुँचने, राजा दशरथ को पत्र देने, राजा का दोनों भाइयों की कुशल-क्षेम पूछने, दूतों के सारी कथा को दुहराने, राजा का रनिवास जाकर पत्रिका सुनाने, रानियों के उछाह, बरात की सजावट, बरात के वर्णन में काव्य की सुन्दरतम प्रतिष्ठा की है। वाल्मीकि रामायण में विवाह की कथा केवल एक अध्याय में ४० छंदों में है। उसमें लोकाचार और वैवाहिक रीतियों को किंचित् भी स्थान नहीं मिला है। तुलसी में विवाह की कथा अत्यन्त विस्तारपूर्वक कही गई है (३०५-३४३)। उसमें अनेक वैवाहिक विधि-विधानों का वर्णन है और पंक्ति-पंक्ति में रसपूर्ण स्थल हैं। स्वयम्वर के अवसर पर परशुराम की अवतारणा के साथ लक्ष्मण-परशुराम-संवाद की भी आयोजना है जिसका आधार हनुमन्नाटक है परन्तु उसको इस प्रसंग ने अत्यन्त रोचक बना दिया है। तुलसी (३४४—३६०) में अयोध्या पहुँचने, बरात के स्वागत, वधू-गृह-प्रवेश, कुलदेव-पूजा, नेग-जोग-दान, माताओं के उत्साह और वात्सल्य, विश्वामित्र की विदा जैसे कितने ही मौलिक प्रसंग मिलते हैं।

साधारण ढंग से वाल्मीकि और तुलसी के अयोध्याकांडों की

कथाओं में विशेष अंतर नहीं है परन्तु अनेक स्थलों पर कथा-विस्तार में अन्तर अवश्य है। तुलसी में कुछ ऐसी बातें भी हटा दी गई हैं जो मर्यादा या धर्मभावना के विरुद्ध हैं जैसे २४वें अध्याय या सर्ग की सामग्री (राम का कौशल्या को पतिसेवा का उपदेश, राम के दैवी बल का वर्णन, राम को वन जाते देख कौशल्या का उनका स्वस्त्ययन करना, सगरपुत्र की कथा, दशरथ-कौशल्या का संवाद और श्रवण-कुमार की कथा) शेप कांड में जहाँ तक कथानक का सम्बन्ध है कोई अन्तर नहीं है।

तुलसी ने मंथरा के मनोविज्ञान को भलीभाँति प्रकट नहीं किया है। उन्होंने "गई गिरा मत फेरि" कह कर दैव का सहारा लिया है। वाल्मीकि ने मंथरा का सौन्दर्य यथार्थ रूप से चित्रित किया है। उनकी मंथरा के दुःख का कारण यही है कि वह कैकेयी की धाय है और उसका उत्कर्ष चाहती है। इसी दैव की अनुपस्थिति के कारण वाल्मीकि की कैकेई का चित्र अत्यन्त स्वाभाविक हो जाता है। परन्तु वाल्मीकि में कैकेई जितनी जल्दी बदलती है उतनी जल्दी तुलसी में नहीं। वहाँ मंथरा की ओर से बहुत अधिक प्रयत्न की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार वरदान-प्राप्ति का प्रसंग भी अत्यन्त संक्षेप में है। उसमें विशेष मार्मिकता नहीं है। तुलसी ने महाराज दशरथ की मनोव्यथा को विशेष चित्रित किया है। वाल्मीकि में अभिषेक का विस्तारपूर्वक चित्रण है। कांड की कथा में कोई अंतर न होने पर भी विषय-विस्तार के कारण भेद हो जाता है, वह भेद उपस्थित है। तुलसी ने उत्तरार्द्ध को खंडकाव्य (भरतचरित) के रूप में लगभग स्वतंत्र रूप से रचा है और चित्रकूट में जनक के आगमन, कई सभाओं और पारस्परिक शिष्टाचार आदि के विस्तृत वर्णन से नवीन सामग्री सजा कर रखी है।

तुलसी के अरण्यकांड की कितनी ही कथायें वाल्मीकि रामायण

के अयोध्याकांड में आ जाती हैं। तुलसी का अरण्यकांड इन्द्रपुत्र गर्वहरण से आरम्भ होता है जिसकी कथा वाल्मीकि में नहीं है वाल्मीकि के अयोध्याकांड की वह कथा तुलसी में नहीं है जिसमें राक्षसों के उत्पात के भय से, कुलपति तपस्वियों के आश्रम-त्याग का वर्णन है। तुलसी कहते हैं—

बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहिं जाना॥
सकल मुनिन्ह सब बिदा कराई। सीता सहित चले दोउ भाई॥

राम अत्रि के आश्रम में जाते हैं। तुलसी के अरण्यकांड में अत्रि भक्त हैं और प्रार्थना करते हैं। यह प्रसंग वाल्मीकि में नहीं है। दोनों में अनुसूया सीता को सतीत्व धर्म का उपदेश देती हैं (तुलसी ५ वाल्मीकि ११६)। वाल्मीकि के अगले अध्याय की कथा जिसमें सीता ने अनुसूया को अपनी कथा सुनाई तुलसी ने बेकार समझ कर छोड़ दी है।

अत्रि से विदा होकर राम दण्डकारण्य में प्रवेश करते हैं। स्थान-स्थान पर ऋषि आश्रमों में उनका स्वागत-सत्कार करते हैं, परन्तु तुलसी इन सत्कार-कथाओं का केवल इंगित कर देते हैं। इसके बाद विराध-बध और विराध के पूर्वजन्म वृत्तान्त की कथा है। विराध राम-लक्ष्मण से युद्ध करता है, अंत में उन्हें कंधे पर चढ़ा कर भागता है, तब राम-लक्ष्मण बाँह तोड़ कर उसका बध करते हैं। परन्तु तुलसी केवल इतना लिखते हैं—

मिला असुर बिराध मग जाता। आवत ही रघुबीर निपाता॥

वाल्मीकि में शरभंग की कथा विस्तार से है जो तुलसी में अत्यन्त ... में है—तुलसी ने अप्रासंगिक विस्तार छोड़ दिये हैं।

वाल्मीकि में ऋषि राम के पास आकर राक्षसों के द्वारा मरे हुए व्यक्तियों (ऋषियों) के अस्थि समूह दिखाते हैं, तुलसी में राम स्वयं अस्थि-समूह देख कर पूछते हैं और प्रण करते हैं—निसिचर हीन करउँ महि ! इसके बाद राम सुतीक्ष्ण की भेंट है। तुलसी ने कथा को अत्यन्त भावनापूर्ण बना दिया है जिसका वाल्मीकि में अभाव है। वाल्मीकि में गीधराज जटायु-मिलन का सविस्तार-वर्णन है। तुलसी में केवल इंगित है—

गीधराज सैं भेंट भइ बहु विधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाय ॥१३॥

वाल्मीकि में लक्ष्मण हेमन्त का वर्णन करते हैं। तुलसी ने इस स्थान पर अध्यात्म के आधार पर राम से ज्ञानविज्ञान की चर्चा कराई है (१५, १६)। तुलसी में शूर्पनखा के अंग-भंग और खरदूषण-वध की कथा अपेक्षाकृत संक्षेप में है। वाल्मीकि में अकंपन रावण को यह खरदूषण-वध की बात सुनाता है, फिर शूर्पनखा। तुलसी में केवल शूर्पनखा को लिया गया है। वाल्मीकि में मारीच-रावण-वार्तालाप अत्यन्त विस्तार में है, तुलसी में यह सब कथा बहुत संक्षेप में है। तुलसी का राम द्वारा सीता का अग्निप्रवेश (२४) वाल्मीकि में नहीं है। तुलसी नहीं चाहते कि रावण सीता को स्पर्श कर ले, इससे वह छाया ही छू पाता है। जहाँ वाल्मीकि सीता द्वारा लक्ष्मण को अपशब्द कहलाते हैं, वहाँ तुलसीदास केवल संकेत करके ही रह जाते हैं (मरम वचन जब सीता बोला २८)। रावण का यती वेश में आना, रावण का सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करना, सीता का तिरस्कार आदि वाल्मीकि रामायण में विस्तार-सहित वर्णित है। मानस में अत्यन्त संक्षेप में सीता की मर्यादा की रक्षा करते हुए।

वाल्मीकि में सीताहरण के वाद रावण सीता को अशोकवाटिका में मिलता है—तुलसी भी ऐसी कथा इसमें पाते थे।

इसके वाद मारीच-वध से लौटते राम से लक्ष्मण की भेंट (५६) आश्रम को शून्य पाकर राम का विलाप है। तुलसी में यह कथा संक्षेप में है, हाँ विलाप का आदर्श भागवत की गोपियों का हास-विलास है यद्यपि उसमें वह साहित्यिकता नहीं है।

शेष कथाओं और प्रसंगों में कोई विशेष अंतर नही है। पंपासर के वर्णन दोनों में नहीं हैं। वाल्मीकि ने पंपासर का विशद वर्णन किया है। तुलसी में नारद के आने और उनके पास ज्ञानलीला-वार्ता का प्रवन्ध किया है जो वाल्मीकि में नहीं है। वाल्मीकि का किष्किधा कांड पंपासरोवर के सुन्दर, सुविस्तृत एवं संश्लिष्ट वर्णन से आरम्भ होता है। तुलसी ने अरण्य में ही इसका थोड़ा वर्णन दे दिया है, यद्यपि वे उसके द्वारा राम का कामोद्दीपन नहीं दिखाते। इसीलिये यह कांड ऋष्यमूक पर्वत पर रामसुग्रीव की भेंट से शुरू होता है। तुलसी में रामलक्ष्मण और हनुमान की भेंट की कथा उसी प्रकार है जिस प्रकार वाल्मीकि में है परन्तु तुलसी ने हनुमान को भक्त बना दिया है और रामचन्द्र को भगवान्। इसी विशेष दृष्टि-कोण के कारण तुलसी ने लक्ष्मण के उस प्रकार दयनीय वचन नहीं कहलाए हैं जिस प्रकार के दयनीय वचन वाल्मीकि ने कहलाये। तुलसी ने हनुमान और राम की भेंट को भक्त और भक्तवत्सल भगवान् की भेंट का रूप दे दिया है। तुलसी वालि को भी रामभक्त बना देते हैं और उसे भगवान् के ईश्वरत्व से परि-चित बना कर मृत्युशय्या पर राम की प्रार्थना कराते हैं। इतने संक्षेप में लिखते हुए भी तुलसी प्रसंगवश मित्रता पर अर्धालियाँ लिखना नहीं भूलते। वाली की मृत्यु पर वाल्मीकि रामायण में तारा का

विलाप सविस्तार कहा गया है। तुलसी इसे दो पंक्तियों में ही समाप्त कर देते हैं—

नाना विधि विलाप कर तारा। छूटे केश न देह सँभारा॥
तारा विकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया॥

वाल्मीकि और तुलसी के वर्षा-शरद के वर्णनों में महान् अंतर है। वाल्मीकि प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करते हैं और वहाँ प्रकृति राम के कामोद्दीपन में सहायक है। तुलसी में वर्षा और शरद के वर्णन भागवत की शैली में लिखे गये हैं और संश्लिष्ट चित्र उपस्थित न कर नैतिक तत्त्वों की स्थापना करते हैं।

वाल्मीकि में सुग्रीव की सीता खोज में देरी पर रुष्ट लक्ष्मण तारा के पास पहुँच कर क्षोभ प्रकट करते हैं और तारा सुग्रीव को समझाती है। तुलसी में तारा का स्थान हनुमान ने ले लिया है। वाल्मीकि में लक्ष्मण धड़धड़ाते हुए निःशंक सुग्रीव के रंगमहल में घुस जाते हैं। मानस में ऐसा नहीं है। वहाँ हनुमान ने पहले ही सुग्रीव को समझा कर वानरों को इधर-उधर भेज दिया है। लक्ष्मण के क्रोधपूर्ण आगमन की बात सुन कर हनुमान और तारा उन्हें अंतःपुर में बुला लाये। वहाँ सुग्रीव ने आकर प्रणाम किया। हनुमान ने पहले ही ऋक्ष-वानरों के भेजे जाने की बात बता कर लक्ष्मण को शान्त किया। वाल्मीकि के अवांतर कितने ही प्रसंग भागवत में नहीं हैं। वाल्मीकि और तुलसी में सीता-खोज लगभग एक-सी है परन्तु उसमें राक्षस-वध जैसी अप्रासंगिक कथाएँ नहीं हैं। स्वयंप्रभा की कथा दोनों में समान है यद्यपि तुलसी में अपेक्षाकृत संक्षेप में है—

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमलपद नाएसि माथा॥
नाना भाँति विनय तेहि कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्हीं॥

बंदरी बन कहुँ सो गई, प्रभु आज्ञा धरि सीस।
उर धरि रामचरन जुग, जे बंदित अज ईस॥

शेष कथा में कोई विशेष अन्तर नहीं। अंतर है भी तो केवल विस्तार का है।

सुन्दरकांड की कथा भी तुलसी में अत्यन्त संक्षेप में कही गई है। उसमें अनेक अप्रासंगिक कथाएँ छोड़ दी गई हैं। कवि ने वर्णनों की ओर से अपनी दृष्टि हटा कर केवल कथामात्र पर केन्द्रित की है। वाल्मीकि में हनुमान सीधे रावण के अंतःपुर में प्रवेश करते हैं।

वाल्मीकि और तुलसी के चरित्र-चित्रण में महान् भेद है। इस भेद के तीन कारण हैं :—१—जहाँ वाल्मीकि एक श्रेष्ठ चरित्रवान का चरित्र लिख रहे हैं, वहाँ तुलसी मर्यादा पुरुषोत्तम राम की लीला लिख रहे हैं। २—वाल्मीकि के चरित्र आदर्श और महान् होते हुए भी देवता नहीं हैं यद्यपि कुछ पंक्तियों में उन्होंने उन पर देवत्व का आरोपण अवश्य किया है। उनमें मनुष्य की दुर्बलताएँ भी हैं। वे मानव हैं। ३—तुलसी के लगभग सभी पात्र रामभक्त हैं। वास्तव में उनके दो व्यक्तित्व हैं—एक भक्त का, एक साधारण। वाल्मीकि में पात्र इस प्रकार रामभक्त नहीं हैं जिस प्रकार तुलसी के पात्र हैं। पात्रों में रामभक्ति की स्थापना उनकी मौलिक कल्पना है। पात्रों के भक्तिपूर्ण व्यक्तित्व ने उनके स्वाभाविक चित्रण में बाधा डाली है। इसी भक्ति के दृष्टिकोण के कारण विभीषण और मंदोदरी का चरित्र-चित्रण कुछ इस प्रकार हो गया है कि तुलसी के उद्देश्य से अपरिचित आलोचक इन स्थलों को दोषपूर्ण समझता है। तुलसी ने रामकथा में भी कुछ इस प्रकार के परिवर्तन उपस्थित कर दिये हैं कि चरित्र-चित्रण वाल्मीकि से भिन्न हो गया है। उदाहरण के लिये,

उन्होंने पात्रों को संयमित और मर्यादित करने की विशेष चेष्टा की है। रामायण का प्रत्येक पात्र परिस्थिति विशेष में पहुँच कर आत्म-हत्या करना चाहता है। कौशल्या राम से हठ करती है कि मुझे वन ले चलो नहीं तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। सीता और लक्ष्मण भी इस प्रकार की बात कहते हैं। आवेश में आ कर वाल्मीकि के पात्र मर्यादा का ध्यान छोड़ देते हैं। राम अपनी माता को पतिव्रत का उपदेश देने लगते हैं। यह अनुचित है। तुलसी में हमें ऐसे प्रसंग नहीं मिलेंगे। वाल्मीकि में लक्ष्मण दशरथ को बाँध कर बलपूर्वक राज्यप्राप्ति की बात रामचन्द्र को सुझाते हैं। स्पष्ट है कि तुलसी इस प्रकार की बात स्वीकार नहीं कर सकते। इस प्रकार के परिवर्तनों ने तुलसी के चरित्रों को अधिक प्रिय बना दिया है और उनकी उग्रता दूर की है। इसके अतिरिक्त तुलसी ने अपने चरित्रों के उन लाञ्छनों को धोने की चेष्टा की है जो वाल्मीकि के पाठक उन पर लगाते हैं यद्यपि वे सब कहीं सफल नहीं हुए हैं। वाल्मीकि के दशरथ स्पष्टतः लाञ्छित हैं, वे भरत के साथ अत्याचार करते हैं जैसे अनेक स्थानों से सिद्ध हो सकता है। दशरथ राम से कहते हैं—

"जब तक भरत इस नगर से बाहर है, तभी तक तुम्हारा राज्याभिषेक हो जाना मैं उचित समझता हूँ।"

और जब भरत कैकेय देश से लौटकर अयोध्या में प्रवेश करते हैं तो वे अपने मन की बात इस प्रकार कहते हैं—

"मैं तो यह सोच कर चला था कि या तो राजा श्रीराम का अभिषेक करेंगे या कोई यज्ञ करेंगे।"

इन दोनों अवतरणों से महाराज दशरथ की दुर्बलता प्रकट हो जाती है और उनके मानसिक संघर्ष का पता चलता है। तुलसी ने दशरथ

और भरत के चरित्रों की यह दुर्बलता दूर कर दी है और उन्हें आदर्श पिता और माता बनाने की चेष्टा की है। जहाँ वाल्मीकि के गुह और भरद्वाज भरत पर सन्देह करते हैं, परन्तु तुलसी तो भरत पर संदेह करना जानते ही नहीं। उनके भरद्वाज तो भरत को देख कर प्रेम-विह्वल हो जाते हैं। वाल्मीकि के राम वनवास से लौट कर भरत के साथ राज करने की बात स्वीकार करते हैं और लौटने पर उनसे ही राज करने को कहते हैं। यह स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में एक राजनैतिक चक्र चल रहा है जिसका थोड़ा भी आभास तुलसी में नहीं है। नीचे हम वाल्मीकि और तुलसी के पात्रों की तुलना करते हैं—

१. राम—जैसा हम कह चुके हैं वाल्मीकि के राम श्रेष्ठ चरित्रवान पुरुष हैं। वाल्मीकि उन्हें सर्वगुणसंपन्न, मन को वश में करने वाली, बली, धैर्यवान, ऐश्वर्ययुक्त, बुद्धिमान, नीतिज्ञ, मृदुभाषी और धीरनायक के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। रामचन्द्र जी का चरित्र बहुत कुछ इसी आदर्श के अनुरूप है। वाल्मीकि रामायण के राम के चरित्र का अध्ययन करने के लिए अयोध्याकांड और लंकाकांड विशेष उपादेय हैं। अयोध्याकांड में राम केवल एक स्थान को छोड़ कर जहाँ वे आत्महत्या के लिये तैयार होते हैं सब प्रकार से आदर्श हैं। वे उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ और धीर-गम्भीर पुरुष हैं। अरण्यकांड में हमें उनकी गम्भीर विरह-वेदना के दर्शन होते हैं। तुलसी में विरही राम का चरित्र अधिक संयत है। तुलसी ने अरण्य, किष्किंधा और सुन्दरकांडों में उन्हें भक्त-वत्सल दिखाने की विशेष प्रकार से चेष्टा की है। अनेक ऋषियों से भेंट होने के प्रसंग में भगवान के चरित्र की यह विशेषता स्पष्ट है। वाल्मीकि में इस ओर विशेष प्रयत्न नहीं किया गया है क्योंकि उनका दृष्टिकोण ही दूसरा था। तुलसी ने इन प्रसंगों को अध्यात्म के आधार पर खड़ा किया

है जहाँ राम उसी प्रकार भक्तवत्सल ब्रह्मपर हैं। देवत्व से रहित श्रेष्ठ मानव राम का चरित्र अत्यन्त ही आकर्षक बन पड़ा है।

२. लक्ष्मण—दोनों के लक्ष्मण में विशेष भेद नहीं है। वास्तव में तुलसी ने वाल्मीकि और अध्यात्म दोनों के लक्ष्मणों को स्वीकार कर एक कर दिया है। वाल्मीकि के लक्ष्मण अत्यन्त तेजस्वी, उग्र स्वभाव वाले, अतुलनीय वीर योद्धा और जागरूक भ्रातृ-सेवक हैं। तुलसी कुछ उग्र प्रसंगों को हटा देते हैं (जैसे अयोध्याकांड में वन-वास का समाचार सुन कर उनका क्रोध—"हे पुरुष श्रेष्ठ, मैं इस सारी अयोध्या को तेज तीरों से बिना मनुष्यों के कर दूँगा, यदि कोई तेरे विरुद्ध खड़ा होगा। भरत के पक्ष का अथवा कोई उसका हित चाहता है, उन सब को मार डालूँगा")। इसी तरह वे अयोध्या लौटते सुमंत्र से राजा दशरथ के लिये कठोर शब्द कहते हैं, तुलसी के राम उन्हें दबा देते हैं। यहाँ उनका कथन मर्यादा और नीति के विरुद्ध होता। परन्तु शेष स्थलों पर उग्रता बनी है। मानस के लक्ष्मण का दूसरा रूप जिज्ञासु का है—यह रूप अध्यात्म रामायण से आया है जहाँ लक्ष्मण पंचवटी में राम से भक्ति और ज्ञान-विज्ञान की चर्चा चलाते हैं। अध्यात्म में लक्ष्मण राम के ब्रह्मरूप से परिचित हैं और स्वयं भी गुह को उपदेश देते हैं। मानस में भी वे गुह को उपदेश देते हैं।

३. भरत—तुलसी ने भरत के चरित को उद्भव के आधार पर स्वतः रचा है। उन्होंने उनकी उग्रता कम की है और राम-विषयक भ्रातृभक्ति के ऊपर रामभक्ति के स्वर बराबर बजते हैं। तुलसी ने भरत के चरित्र को कई प्रकार प्रिय बनाया है। वाल्मीकि में भरत भाई राम के चरित्र पर संदेह करते हैं, यह तुलसी में नहीं। वे कौशल्या के आगे शपथ खाते हैं और कौशल्या उन पर संदेह-सी

करती हैं। तुलसीदास ने भरत और कौशल्या दोनों का चरि अत्यन्त उज्ज्वल बनाया है। वहाँ संशय को स्थान ही कहाँ है वाल्मीकि में भरद्वाज, गुह और लक्ष्मण सब भरत के प्रति शंका हैं। तुलसी में वे इतने शंकालु नहीं। तुलसी के भरत का चरि और व्यक्तित्व सभी शंकाओं के ऊपर है। वे अत्यन्त उज्ज्वल तंतुओं के बने हैं। वनपथ और चित्रकूट उनके चरित्रों के अत्यन्त अधिक विशद रूप से तुलसी ने रखा है। तुलसी ने भर को रामभक्ति का आदर्श माना है।

४. वाल्मीकि रामायण में दशरथ स्पष्टतः कामी हैं परन्तु इस बात को केवल दबे शब्दों में कहते हैं। शेप चरित्र-चित्रण एक जैसा है परन्तु जहाँ वाल्मीकि के दशरथ कहते हैं—"मुझे बाँध लो" वहाँ तुलसी के दशरथ अधर्म की बात भी नहीं सोचते, वे तो "प्राण जाँयें बरु वचन न जाई" सिद्धान्त की प्रति मूर्ति हैं, वाल्मीकि में दशरथ और कैकेई के मन में राजनैतिक संघर्ष (कूटनीति) अवश्य है। दशरथ राम के साथ सेना आदि भेजना चाहते हैं। इससे कैकेई हतोत्साहित हो जाती है। फिर वशिष्ठ सीता के साथ के बहाने सेना को साथ कर देते हैं परन्तु राम स्वीकार नहीं करते। इसके अतिरिक्त वाल्मीकि की प्रजा राजा को सामने ही धिक्कारती है—राजा उससे प्रभावित भी होते हैं।

सच तो यह है कि वनवास-प्रसंग चाहे तुलसी ने कितना ही मनोवैज्ञानिक बना दिया हो, परन्तु उन्होंने उसे कूटनीति पर खड़ा नहीं किया। उन्होंने केवल राजा के व्यथित मन के मनोविज्ञान की तस्वीर उतारी है, राजनीतिक संघर्ष (या षडयंत्र) का आभास भी नहीं दिया है। वाल्मीकि का यह प्रसंग अत्यन्त स्वाभाविक, बलवान और स्पष्ट है यद्यपि उसमें काव्यगुण इतने नहीं जितने तुलसी में।

तुलसी के दशरथ ब्रह्म राम के शोक में मरते हैं, वाल्मीकि में पुत्र राम के शोक में, वस्तुतः आत्मग्लानि से। तुलसी में वनवास-प्रसंग को इतना विस्तार नहीं दिया गया है, विशेष कर दशरथ के मनोवैज्ञानिक संघर्ष को। न उन्होंने सौतियाडाह के यथार्थवादी चित्र ही उपस्थित किये हैं। यहाँ लक्ष्य ही दूसरा है, प्रेरणा ही दूसरी है। यहाँ "गई गिरा मति फेर" है ही नहीं। इसीसे तुलसी का अयोध्याकांड पूर्वार्द्ध मनोवैज्ञानिक होता हुआ भी वाल्मीकि से निर्बल है।

५. कौशल्या—कौशल्या को कैकेई का पहले ही डर था, यह "सौतिया डाह" या "सौत का चक्र" कथा के पीछे सीधा ही उभर आता है। कौशल्या राम को कहीं जाने के लिये भी कहती हैं, पिता के विरुद्ध भी भड़काती हैं, आत्महत्या की धमकी भी देती हैं, राजा को भी डाँटती हैं—परन्तु मानस की कौशल्या तो मर्यादापुरुषोत्तम राम की मा हैं। उनसे इस उच्छृंखलता की आशा क्यों है? वह सहज-बुद्धि तो राम ही जैसा भरत को मानती हैं, उन पर वाल्मीकि की कौशल्या की तरह सन्देह नहीं करती।

६. सुमित्रा—सुमित्रा वनवास की बात सुनती है तो उसके पहले उद्गार से सौतों की परिस्थिति समझ में आ जाती है। शेष चित्रण एक जैसा है। जहाँ वाल्मीकि में सुमित्रा पुत्र को भाई के प्रति कर्त्तव्य की शिक्षा देती है, वहाँ तुलसी में वह राम का वास्तविक स्वरूप जान कर लक्ष्मण को रामभक्ति का उपदेश देती है।

७. कैकेई—तुलसी ने कैकेई के चित्र को रामभक्ति के कारण दुर्बल बना दिया है। सौतियाडाह और पुत्रप्रेम की प्रबलता—ये दो मुख्य सूत्र [illegible] जिनसे वह परिचालित थी परन्तु तुलसी ने दैव का आरोप कर [illegible] चरित्र को भिन्न धरातल दे दिया है। जो हो, उनका [illegible] चित्रण सहृदयपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

८. गुह—गुह राम का मित्र और सेवक है, परन्तु तुलसी ने उसे भरत की भाँति उत्कृष्ट श्रेणी का रामभक्त बना दिया है। यद्यपि कथा में विशेष अंतर नहीं रखा गया है।

९. हनुमान्, सुग्रीव, वाली—इनके चित्रण में हम वीरत्व की प्रधानता देखते हैं। हनुमान् सेना-संचालक, चमत्कारी योद्धा आदि के रूप में भी आते हैं। तुलसी ने इन पात्रों में रामभक्ति का समावेश कर दिया है। हनुमान तो दास्यभक्ति में उनके आदर्श ठहरे।

१०. कुम्भकरण—ये वाल्मीकि में नीतिकुशल, धर्मज्ञ योद्धा हैं। तुलसी ने अध्यात्म के आधार पर रामत्व से परिचित भक्त बना दिया है।

११. विभीषण—तुलसी ने हनुमान् से लंका में इनकी भेंट कराई है। यह नितान्त नवीन योजना है जो अध्यात्म में भी नहीं है। वहाँ विभीषण पहले ही रामोपासक के रूप में मिलते हैं। घर पर रामनाम लिखे रहते हैं और तुलसी का पेड़ लगाये रखते हैं। इससे उनका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल हो गया है और उनका भ्रातृद्रोह भक्ति के आगे दब जाता है। वाल्मीकि में विभीषण भ्रातृद्रोही, राज्यलंपट और कुलघाती ही है। भीरु तो है ही।

१२. रावण—सारे युद्धकांड में राम और रावण का व्यक्तित्व ही व्याप्त है और वाल्मीकि ने वीरकाव्य की दृष्टि से ही उनका चरित्र-गठन किया है। रावण राम का योग्य प्रतिद्वन्द्वी नायक है, परन्तु तुलसी में स्पष्टतः रामतत्त्व से अभिज्ञ, हठी, राम को मनुष्य समझने वाला (जिसके लिए तुलसी उसे बारबार धिक्कारते हैं), योद्धा है। रामायण में वह अदम्य उत्साही, कूटनीतिज्ञ और नीति-निपुण है। तुलसी के मानस के सारे पात्र राम के ब्रह्मत्व से परिचित

और उनके भक्त हैं, एक रावण ही उनके तत्त्व से अपरिचित है—यही नहीं, वह स्पष्ट रूप से ही उनका विरोध करता है। अध्यात्म रामायण में रावण भी प्रच्छन्न भक्त है, राम के ब्रह्मत्व से अपरिचित है।

वाल्मीकि और तुलसी के प्रकृति वर्णनों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि शुद्ध प्रकृति चित्रण की दृष्टि से वाल्मीकि तुलसी से कहीं उत्कृष्ट हैं। दोनों में प्रकृति-वर्णन के महत्त्वपूर्ण स्थल पंपा-सरोवर का वर्णन और शरद-वर्षा-वर्णन हैं। वाल्मीकि में पंपासरोवर का वर्णन संश्लिष्ट है यद्यपि उसमें उद्दीपन भाव की स्थापना भी की गई है। राम लक्ष्मण से कह रहे हैं—"यह पंपा देखने में अति सुन्दर मालूम होती है इसकी नीली और पीली घास मुझे अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़ती है, मालूम होता है कि अनेक प्रकार के वृक्षों के नाना पुष्पों की राशि एकत्र की गई है। इन वृक्ष शिखाओं के अग्रभाग फूलों से लद गये हैं, पुष्पित अनेक लताएँ उनके चारों ओर लिपटी हुई हैं। लक्ष्मण, यह सुखकर हवा चल रही है, यह कामोद्दीपक समय है, सुगंध-युक्त चैत्र-मास है, वृक्षों में फल-फूल लग गये हैं। लक्ष्मण, फूले हुये इस वन का सुन्दर रूप देखो। मेघ के समान ये पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। ये वन के अनेक वृक्ष हवा से कंपित होकर समतल पत्थरों पर पुष्प-वृष्टि करके पृथ्वी को ढँक रहे हैं। लक्ष्मण, देखो, वृक्षों से जो फूल गिर गये हैं, जो गिरने वाले हैं अथवा जो अभी वृक्षों में लगे हुए हैं, उनसे हवा खेल रही है। फूलों से लदी हुई वृक्षों की शाखाओं को कँपा कर जब हवा वहाँ से चलती है, तब भ्रमर उसके पीछे गाता हुआ चलता है। मस्त कोकिलों के शब्द से वृक्षों को मानों नाचने की शिक्षा देती हुई, पर्वत की गुफा से निकली वायु, गाती हुई मालूम पड़ती है। वायु चारों ओर से वृक्षों को कँपा रही है, पर इन वृक्षों की शाखाओं के अग्र

भाग इस तरह मिले हुए हैं मानों जुट गये हों गुथे हुए हों। चंदन से शीतल इस दक्षिणी वायु का स्पर्श बड़ा ही सुखकर जान पड़ता है, पवित्र गंध लाकर यह हवा थकावट दूर करती है। मधुर गंध वाले इस वन में भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं मानो हवा से कंपित वृक्ष गा रहे हों और भ्रमर उनका अनुसरण कर रहे हों। रम्य पर्वत शिखरों पर उत्पन्न फूल वाले मनोहर वृक्षों के कारण पर्वत ऐसे मालूम पड़ते हैं, मानों उनके शिखर आपस में जुटे हों × × लक्ष्मण, इस वन में अनेक पक्षी बोलते हैं और यह वसन्त सीता के विरह काल में मेरा शोक और बढ़ा रहा है। शोक से पीड़ित मुझको कामदेव सता रहा है और यह कोकिल तो मुझे प्रसन्नतापूर्वक ललकार रही है, अपनी विजय की घोषणा कर रही है। इस वनैले सोते के समान जल-कुक्कुर प्रसन्न होकर बोल रहा है और कामयुक्त मुझको दुखी बना रहा है। इसका शब्द सुन कर मेरे साथ रहने वाली मेरी प्रिया सीता प्रसन्न होकर मुझे बुलाती थी और बहुत प्रसन्न होती थी।" तुलसी का पंपासरोवर वर्णन इस ढंग का नहीं है, वह बहुत कुछ भागवत के वर्षा शरद ऋतु वर्णन के आधार पर लिखा गया है। वास्तव में तुलसी के लिये प्रकृति-वर्णन अप्रधान है, नैतिक और धार्मिक तत्त्वों की स्थापना प्रधान है—

पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥
संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिं विविध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥

पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिये जैसे निर्गुन ब्रह्म॥

सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माँहिं।
जथा धर्मसीलन्हि के, दिन सुख संजुत जाहिं॥

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रशंसा॥
चक्रवाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई॥
सुन्दर खगगन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये। चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाये॥
चंपक बकुल कदम्ब तमाला। पाटल बनस परास रसाला॥
नवपल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥

फल भारन नमि बिटप सब, रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुप जिमि, नवहिं सुसम्मति पाइ॥

(कि० २८-३०)

वाल्मीकि और तुलसी के वर्षा-शरद-वर्णन के अन्तर का हम अन्यत्र उल्लेख कर चुके हैं। तुलसी के वर्षा-शरद का आधार बाल्मीकि नहीं, भागवत है। उन्होंने भागवत का आधार लेकर प्रकृति के विकार द्वारा वैयक्तिक और सामाजिक मर्यादा और शील की स्थापना की है। तुलसी ने भागवत की तरह दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया है और जहाँ भागवत के भौतिक उपकरणों को लिया गया है, वहाँ-वहाँ भी थोड़ा परिवर्तन कर दिया गया है। उनकी प्रकृति धर्मशीला है। वह धर्म के संरक्षण में सदैव तत्परा है। तुलसी

के भक्त भरत जब चित्रकूट में स्थित राम से मिलने जाते हैं, तब बादल उनके ऊपर छाया करते हैं—

किएँ जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मग भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात॥

उनका चित्रकूट-दर्शन भी इसी धर्मभावना से प्रभावित है—

लखन दीख पथ उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुप जिमि नारा॥
नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥

—(अयोध्याकांड)

वाल्मीकि के प्रकृति-चित्रण में कोई धर्मभावना नहीं है और न वे नैतिक तत्त्वों की स्थापना करते हैं। उनके काव्य मे प्रकृति का प्रयोग केवल दो प्रकार से हुआ है—१. साधारण संश्लिष्टात्मक वर्णन के रूप में और २. उद्दीपन के रूप में। तुलसी में पहले प्रकार के वर्णन का तो अभाव है, दूसरे प्रकार के वर्णन भी केवल सीता-वियोग के समय हैं जहाँ राम वृक्षों आदि को सम्बोधन करते हैं जो वाल्मीकि के इसी प्रसंग से प्रभावित हैं। जैसा हम कह चुके हैं तुलसी का प्रकृति-वर्णन मूलतः नैतिक और धार्मिक तत्त्वों से प्रभावित है, परन्तु कुछ स्थानों पर उन्होंने हिन्दी कवि परम्परा का भी आश्रय लिया है।

वाल्मीकि रामायण की अधिकांश कथा वर्णनात्मक है और उसमें काव्य के गुणों का अभाव है। वाल्मीकि के नायक राम मुख्यतः धीरनायक और योद्धा हैं और कथा का अधिकांश भाग युद्ध वर्णनों से भरा पड़ा है। वाल्मीकि वीर-रस-प्रधान काव्य है

और इसीसे युद्धकांड सबसे विस्तृत है। वाल्मीकि के इसी दृष्टिकोण के कारण वीररस का परिपाक अधिक हुआ है। अकेले युद्धकांड में ही अनेक वीर-रस-पूर्ण प्रसंग आये हैं, परन्तु उनमें विभिन्नता बहुत कम है। अन्य रसों का परिपाक वाल्मीकि में नहीं हो पाया है। वाल्मीकि और तुलसी के अयोध्याकांडों की तुलना करने पर यह बात स्पष्ट हो जायगी कि वाल्मीकि की वर्णनात्मक शैली में रस परिपाक का अधिक स्थान नहीं है। वाल्मीकि में वीभत्स और भयानक रसों के विशेष प्रसंग नहीं है, परन्तु तुलसी में उन्हें स्थान मिला है। वीर-रस-प्रधान काव्य होने के कारण वाल्मीकि में रौद्ररस के अनेक स्थल हैं। शांत और भक्तिरसों का तो यहाँ एकदम अभाव है। तुलसी की समस्त रामकथा में भक्ति किसी-न-किसी रूप में व्याप्त है। संक्षेप में, वाल्मीकि वर्णन करके ही रह जाते हैं, कविता-कला को पुट नहीं देते।

३. अध्यात्म रामायण और रामचरितमानस—तुलसी ने रामचरितमानस की कथा का ढाँचा मुख्यतः अध्यात्म को ही माना है, विशेषतः अरण्य, किष्किंधा, सुन्दर और उत्तर की सामग्री बहुत कुछ इसी पर आधारित है।

अध्यात्म रामायण और मानस लगभग एक ही प्रश्न से शुरू होते हैं। अध्यात्म रामायण में पार्वती पूछती है—"कोई-कोई कहते हैं कि राम परब्रह्म होने पर भी अपनी माया से आवृत हो जाने के कारण अपने आत्मस्वरूप को नहीं जानते थे। इसलिये अन्य (वशिष्टादि) के उपदेश से उन्होंने आत्मतत्त्व जाना।" (१।१३) "यदि वे आत्मतत्त्व को जानते थे तो उन परमात्मा ने सीता के लिये इतना विलाप क्यों किया ?" (१।१४) दोनों ग्रन्थों में राम-सीतातत्त्व में समानता है। सीता हनुमान् से कहती हैं—"वत्स हनुमान्, तुम

राम को साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्द घन परब्रह्म समझो; ये निःसन्देह समस्त उपाधियों से रहित, सत्ता मात्र, मन तथा इन्द्रियों के अविषम, आनन्दघन, निर्मल, शांत, निर्विकार, निरञ्जन, सर्व व्यापक, स्वयंप्रकाश और पापहीन परमात्मा ही हैं। और मुझे संसार की उत्पत्ति, स्थिति और अंत करनेवाली मूल प्रकृति जानो। मैं ही निरालस्य होकर इनकी सन्निधिमात्र से इस विश्व की रचना किया करती हूँ।" मानस में राम को जगदीश और सीता को माया कहा गया है।

रामचरितमानस की समस्त कथा अध्यात्मरामायण की कथा को सामने रखकर लिखी गई है और विस्तार एवं भक्ति-विषयक विशेष परिवर्तन के सिवा दोनों में अंतर नहीं है। वास्तव में अध्यात्म की कथा में वाल्मीकि की कथा ही, थोड़े परिवर्तनों के साथ, संक्षेप में उपस्थित की गई है। वह वाल्मीकि रामायण की ही कथा है परन्तु उसका महत्त्व अध्यात्मज्ञान है या रामसीतातत्त्व मीमांसा। तुलसी इस मीमांसा से कुछ हद तक सहमत हैं। राम सीता के ब्रह्म-प्रकृति होने के विषय में उनके वही सिद्धान्त हैं—भक्ति के सम्बन्ध में भी वे लगभग वही कहते हैं परन्तु जीव, ब्रह्म और जगत के सम्बन्ध में वह कुछ भिन्न विचार रखते हैं। अध्यात्म वेदान्त (अद्वैत) ग्रन्थ है। तुलसी ने जीव को "अंश" कहा है। वह "भेदभगति" के कायल हैं। वह इस विषय में विशिष्टाद्वैती जान पड़ते हैं। अभेदभक्ति और तत्वज्ञान का अर्थ है—मोक्ष (सायुज्य) अथवा सारूप्य, परन्तु तुलसी सान्निध्य और सालोक्य ही पसन्द करते हैं।

अध्यात्मरामायण में कथा का विकास इतनी क्षिप्र गति से हुआ है कि किसी प्रकार के काव्यगुण को प्रगट होने का समय नहीं

मिला है। रस, अलंकार, संवाद, वर्णन—सभी की दृष्टि से अध्यात्म बहुत कुछ शून्य है। रचयिता का ध्येय परमात्मतत्त्व का निरूपण है। कहीं-कहीं भक्ति की भी सुन्दर व्याख्या है, परन्तु इसके अतिरिक्त ग्रंथ में भावुकता और सहृदयता को स्थान नहीं मिला है, यहाँ तक कि राम और सीता के दो-चार सुन्दर चित्र भी उसमें नहीं हैं। हाँ, अध्यात्म-क्षेत्र से ली हुई उपमायें अवश्य नवीनता प्रगट करती है--कहीं-कहीं तुलसी उनके ऋणी हैं जैसे—

अग्रे आस्याम्यहं पश्चाभ्त्वमन्वेहि धनुर्धरः।
आवयोमध्यगा सीता मायेवात्म परात्मनोः॥

—(अरण्य सर्ग १)

आगे राम लखन पुनि पाछे। तापस वेस विराजत काछे॥
उभय बीच सिय सोहत कैसी। जीव ब्रह्म बिच माया जैसी॥

—(अयोध्याकांड)

अध्यात्म रामायण में वर्णन अवश्य अच्छे हैं परन्तु उनका आधार वाल्मीकि है और संक्षेप में होने के कारण वे भली भाँति विकसित नहीं हो सके हैं।

जहाँ संक्षेप में कहने की प्रवृत्ति इतनी है, वहाँ मनोविज्ञान के लिये स्थान कहाँ ? अयोध्याकांड—जैसा मनोवैज्ञानिक परिस्थिति प्रधान कांड गिनती के श्लोकों में समाप्त कर दिया गया है। परशुराम लक्ष्मण तो हैं ही नहीं।

चरित्र-चित्रण की ओर भी विशेष प्रयत्न नहीं है। पात्रों के

चरित्र की रेखा वाल्मीकि के आधार पर ही गढ़ी गई है। साधारणतः रामकथा में जिस प्रकार का चरित्र-चित्रण हो सकता था, वह है। लेखक की ओर से विशेष प्रयास कहीं भी नहीं है।

परन्तु वाल्मीकि की कथा का धरातल लौकिक है, यहाँ भक्ति-पूर्ण आध्यात्मिक। अतः पात्रों में रामभक्ति की भी व्याप्ति है, यद्यपि उतनी नहीं जितनी तुलसी में। राम ब्रह्म हैं, ये सभी जानते हैं, भक्त उनसे सारूप्य मोक्ष और भक्त के वरदान की आशा रखते हैं। विरोधी दल के कुम्भकरण, मंदोदरी, शुकसारण, माल्यवान, विभीषण सभी रामभक्त हैं। यहाँ तक कि रावण भी प्रच्छन्न राम-भक्त है। मुक्ति की आशा में ही लड़ रहा है। तुलसी में रावण एकदम राम की ब्रह्मसत्ता को अस्वीकार कर देता है। वह भीषण जड़वाद का प्रतीक बन गया है। वहाँ वह प्रच्छन्न भक्त नहीं है। देवताओं की स्थिति वही है जो भागवत में है। वे स्वार्थी और भीरु हैं। सदैव खड़े फूल बरसाते रहते हैं।

अध्यात्म रामायण भी मानस की तरह भक्ति-ग्रंथ है। ग्रन्थकार का इस सम्बन्ध में यह मंतव्य है—

"भक्तवत्सल जगन्नाथ श्री राम के प्रसन्न होने पर संसार में क्या दुर्लभ है। देखो, उनकी कृपा से नीच जाति में उत्पन्न शबरी ने भी मोक्षपद प्राप्त कर लिया। फिर श्री राम को ध्यान करनेवाले पुण्यजन्मा ब्राह्मणादि यदि मुक्त हो जायें तो इसमें क्या आश्चर्य है? निःसन्देह भगवान राम की भक्ति ही मुक्ति है। अरे लोगों, राम की भक्ति ही मुक्ति देने वाली है। अतः उनके कामधेनु-रूप चरण-युगलों की अति उत्साहपूर्ण सेवा करो। हे बुद्धिमान लोगों, इन विविध-विज्ञान वार्ताओं और मंत्र-विस्तार को अलग रखकर

तुरन्त ही श्री शंकर के हृदय धाम में शोभा पानेवाले श्याम शरीर भगवान राम का भजन करो।"

—(अरण्यकांड १०, ४२—४४)

भक्ति के साधनों की चर्चा कई स्थान पर हुई है !

"...अब मैं अपनी भक्ति के कुछ वास्तविक उपाय बताता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥४७॥

मेरे भक्त का सत्संग करना, एकादशी आदि का व्रत करना, मेरे पर्व दिनों को मानना ॥ ४८ ॥ मेरी कथा के सुनने पढ़ने और उसकी व्याख्या करने में सदा प्रेम करना, मेरी पूजा में तत्पर रहना, मेरा नाम कीर्तन करना ॥ ४६ ॥ इस प्रकार मुझमें अविचल भक्ति हो जाती है। फिर बाकी ही क्या रहता है ॥ ५० ॥

—(अरण्य—लक्ष्मणगीता)

"हे भामिनि, मैं संक्षेप में अपनी भक्ति के साधनों का वर्णन करता हूँ उनमें पहली साधना तो सत्संग ही कहा गया है ॥ २२ ॥ मेरे जन्म-कर्मों की कथा का कीर्तन करना दूसरा साधन है, मेरे गुणों की चर्चा करना—यह तीसरा उपाय है और (गीता-उपनिषदादि) मेरे वाक्यों की व्याख्या करना उसका चौथा साधन है ॥२३॥ हे भद्रे, अपने गुरुदेव की निष्कपट होकर भगवद् बुद्धि से सेवा करना पाँचवा, पवित्र स्वभाव, यम-नियमादि का पालन और मेरी पूजा में प्रेम होना छठाँ, तथा मेरे मंत्र की सांगोपांग उपासना करना सातवाँ साधन कहा जाता है ॥ २४-२५ ॥ मेरे भक्तों की मुझसे भी अधिक पूजा करना, समस्त प्राणियों में मेरी भावना करना और

शम दमादि-सम्पन्न होकर वाह्य पदार्थों में आसक्त न होना—यह मेरी भक्ति का आठवाँ साधन है तथा तत्त्वविचार करना नवाँ है। हे भामिनि, इस प्रकार यह नौ प्रकार की भक्ति है। हे शुभलक्षणे! जिस किसी में ये साधन होते हैं, वह स्त्री पुरुष अथवा पशुपक्षी आदि कोई भी क्यों न हो उसमें प्रेम लक्षणा भक्ति का आविर्भाव हो ही जाता है ॥ (२६-२२) भक्ति के उत्पन्न-मात्र से मेरे स्वरूप का अनुभव हो जाता है और जिसे मेरा अनुभव हो जाता है उसे इसी जन्म में निःसन्देह मुक्ति हो जाती है। अतः यह सिद्ध हुआ कि मोक्ष का कारण भक्ति ही है। जिसमें पहला साधन होता है उसमें क्रमशः ये सभी साधन आ जाते हैं ॥२६॥

—(वही, शबरी के प्रति रामगीता)

अयोध्याकांड में वाल्मीकि राम को उनका निवास-स्थान बतलाते हैं, तुलसी ने इसे ले लिया है—

"जो शांत समदर्शी और सम्पूर्ण जीवों के प्रति द्वेषहीन है तथा अहिर्निशि आपका भजन करते हैं उनका हृदय आपका प्रधान निवास-स्थान है ॥ ५४ ॥ जो धर्म और अधर्म दोनों को छोड़कर निरन्तर आपका ही भजन करता है, हे राम, उसके हृदय-मंदिर में सीता के सहित आप सुखपूर्वक रहते हैं ॥ ५५ ॥ जो आप ही के मंत्र का जाप करता है, आप ही की शरण में रहता है तथा द्वन्द्वहीन और निःस्पृह है, उसका हृदय आपका सुन्दर मंदिर है ॥ ५६ ॥ जो अहंकार शून्य, शांत स्वभाव, रागद्वेष रहित और मृतपिंड, पत्थर तथा स्वर्ण में समान दृष्टि रखनेवाले हैं, उनका हृदय आपका घर है ॥५७॥ जो तुम्हीं में मन और बुद्धि को लगाकर सदा संतुष्ट रहता है और अपने समस्त कर्मों को तुममें अर्पण कर देता है

उसका मन ही आपका शुभ गृह है ॥५८॥ जो अप्रिय को पाकर द्वेष नहीं करता और प्रिय को पाकर हर्षित नहीं होता तथा यह सम्पूर्ण प्रपंचमात्र है ऐसा निश्चय कर सदा आपका भजन करता है उसका मन ही आपका घर है ॥५६॥ सत्ता, जन्म लेना, बढ़ना, बदलना, क्षीण होना और नष्ट होना—इन छः विकारों को शरीर में ही देखता है, आत्मा में नहीं; तथा क्षुधा, तृष्णा, सुख, दुःख और भय आदि को प्राण और बुद्धि का ही विकार मानता है और स्वयं सांसारिक धर्मों से युक्त रहता है उसका चित्त आपका निज गृह है ॥६०—६१॥ जो लोग चिद्‌घन, सत्यस्वरूप, अनन्त, एक, निर्लेप, सर्वगत और स्तुत्य आप परमेश्वर को समस्त अंतःकरणों में विराजमान देखते हैं, हे राम, उनके हृदयकमल में आप सीता के सहित निवास कीजिये ॥६२॥ निरन्तर अभ्यास करने से जिनका चित्त स्थिर हो गया है और जो सर्वदा आपकी सेवा में लगे रहते हैं तथा आपके नाम संकीर्तन से जिनके पाप नष्ट हो गये हैं उनके हृदयकमल में सीता के सहित निवास गृह है ॥६३॥

परन्तु अध्यात्म में भक्ति को ही एकमात्र साधन नहीं माना है। वास्तव में उसमें ज्ञान पर भी इतना ही (या अधिक ही) बल है। उत्तरकांडांतर्गत रामगीता (लक्ष्मण के प्रति) में ज्ञान-साधन का विशद वर्णन है और "तत्त्वमसि" से आगे बढ़कर समाधियोग का उपदेश है। तुलसी ने स्पष्टतः ही ज्ञान को भक्ति से पराभूत किया है।

अध्यात्म रामायण शुद्ध अद्वैत वेदांत का ग्रन्थ है जो परमात्मा और जीवात्मा में तत्त्वतः अभेद मानता है। भेद का कारण माया जन्य अज्ञान या अविद्या है। आत्मा ज्ञानमय और सुखस्वरूप है, उसमें दुख की प्रतीत अध्यास द्वारा ही होती है। भ्रम से जो अन्य

की प्रतीति होती है वह अध्यास है जैसे रज्जु में सर्प की प्रतीत। इसी प्रकार ईश्वर में संसार की प्रतीति हो रही है। निरामय, विकल्प मायारहित, चित्स्वरूप आत्मा में "अहंकार" रूप अध्यास के कारण इच्छा, अनिच्छा, रागद्वेष और सुख-दुखादि रूप बुद्धि की वृत्तियों का जन्म होता है जो जन्म-मरण का कारण है। अज्ञान (अविद्या) के नाश होने और सद्स्वरूप (तत्त्वमसि) का ज्ञान होने पर भ्रम (अध्यास) का परिहार हो जाता है। परमात्म-भाव (मैं ही ब्रह्म हूँ) के चिंतन में ही मुक्ति है। इसके अतिरिक्त वह यह भी जाने कि समुद्र में जल, दूध में दूध, महाकाश में घटाकाशादि आदि की तरह यह सम्पूर्ण जगत्-प्रपंच भी आत्मा के साथ अभिन्न है और चन्द्रभेद और दिग्भ्रम की भाँति मिथ्या है (रामगीता उत्तरकांड)। अध्यात्म रामायण की भक्ति शुद्ध विज्ञानभक्ति (या अभेदभक्ति है) जिसका फल मोक्ष है।

४—प्रसन्नराघव (जयदेवकृत) और रामचरितमानस—रामचरितमानस और प्रसन्नराघव के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी इस ग्रन्थ के भी ऋणी हैं, परन्तु ऋण अधिक नहीं है।

प्रसन्नराघव रामकथा की दृष्टि से एक विचित्र ग्रन्थ है। यह नाटक है। नाटककार केवल सात अंकों में सारी रामकथा ठूँस देने की चेष्टा करता है। कथा सीता-स्वयंवर से आरम्भ होकर पुष्पक द्वारा अयोध्या लौटने तक चलती है। इतनी बड़ी कथा को इतने थोड़े अवकाश में रखने के कारण नाटककार को कथा का अत्यन्त विचित्र संगठन करना पड़ा है। इस चेष्टा में न उच्च नाटकीय गुणों की रक्षा हो सकी है, न कथा का सौन्दर्य ही सुरक्षित रह सका है। परन्तु मौलिकता का श्रेय तो नाटककार को मिलना ही चाहिये। तुलसी ने प्रसन्नराघव के मौलिक प्रसंगों से लाभ उठाया है।

प्रथम अंक—सीता स्वयंवर का अवसर है "गजेन्द्रदर्शन-स्निग्ध शलाका सहस्त्र निर्मितेषु मञ्चेस्वासीना इमें कुङ्कुम कृताङ्ग रागा राजानोऽमलस्फटिक प्रसाद शिखरा सङ्गिनः राजन्ते।" इस अंक में रावण और वाण के वाग्चातुर्य और पराक्रम का वर्णन है। दोनों धनुष नहीं उठा पाते। तुलसी में स्वयंवर में रावण और वाण की उपस्थिति का उल्लेख तो अवश्य है—रावनु वानु महाभट भारे। देखि सरासन गँवहिं सिधारे ॥२५०॥ परन्तु इस अंक की सामग्री विलकुल नहीं है।

द्वितीय अंक—इस अंक में रामलक्ष्मण के जनक-वाटिका प्रवेश, सीतादर्शन और राम सीता के पूर्वराग का वर्णन है। तुलसी ने अपने मानस में इन्हें स्थान दिया है। उनका आधार प्रसन्नराघव ही है। (वालकांड २२७—२३६)

तृतीय अंक—इस अंक में धनुष-भंग की कथा है। तुलसी ने इससे केवल कहीं-कहीं सहारा लिया है (वालकांड २१४—२१७ और २५१—२६२)

चतुर्थ अंक—धनुष-भंग के उपरान्त राम-परशुराम की कथा है। यहाँ भी परशुराम विवाह के पहले ही उपस्थित होते हैं, लौटती वरात को मार्ग में नहीं मिलते। तुलसी ने स्वयं वरसभा में ही परशुराम को उपस्थित करके अपनी मानिकता का परिचय दिया है क्योंकि इस तरह रामचन्द्र के शौर्य की सार्वभौमिक प्रतिष्ठा हो जाती है।

पंचम अंक की सामग्री राम की वनवास कथा को अत्यन्त संक्षेप में, परन्तु मौलिकता के साथ, हमारे सामने रखती है। तुलसी ने इस अंक की सामग्री से कोई सहायता नहीं ली है।

षष्ठोऽअंक:—यहाँ अन्य कथाओं के साथ त्रिजटा सीता की प्रिय सखी के रूप में प्रकट होती है। कदाचित् तुलसीदास ने त्रिजटा का चरित्र यहीं से लिया है। रावण सीता-संवाद में भी तुलसी प्रसन्न-राघव के ऋणी हैं।

सप्तमोऽअंक:—इस अंक की सुग्रीव, विभीषण, राम, हनुमान की वार्तालाप से जिसका विषय चन्द्रोदय है, तुलसी ने कुछ सामग्री एकत्रित अवश्य की है (लंकाकांड १२)—

उद्दाम दिग्द्विरद चञ्चल कर्णपूर—
गण्डस्थलोञ्ज्वलदलिस्तवका कृतीनि।
नीलान्नामांसि मृगनाभि समान भांसि
दिक्कन्दरेषु विलसन्ति तमां तमसि ॥५४॥

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहत सबहिं देखहु ससिहि, मृगपति सरिस असंक॥

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी। परम प्रताप तेजबल रासी॥
मत्तनाग तम कुम्भ बिदारी। ससि केहरी गगन बनचारी॥

पश्योदेति वियोगिनां दिनमणिः शृङ्गार दीक्षामणिः।
प्रौढ़ानंगभुजंगमस्त कमणिश्चण्डीश चूड़ामणिः॥
तारा मौक्तिहार नायकमणि कंदर्प सीमन्तिनी—
काञ्चीमध्यमणिश्चकोर पञ्चिन्तागाणि चन्द्रमः ॥५६॥

बिखरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुन्दरी केर सिंगारा॥

जयदेव का लक्ष्य शृङ्गार-काव्य है, अतः वहाँ मर्यादा की

भावना का अभाव है। पूर्वराग सम्बन्धी प्रकरणों से यह बात स्पष्ट रूप से स्थापित हो जाती है। दोनों ग्रंथों में राम लक्ष्मण बाग में गुरु विश्वामित्र के लिए फूल लेने आये हैं—

समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

—(२२७)

राम''तद्यावदयं भगवान्विविश्वामित्रस्तत्रभवतो याज्ञवल्क्यस्य समागम सुखम नुभवति तावत्तदीय सामंतन देवतार्चनोंचितानि कुसुमान्य वचीमन्ताम् (पृष्ठ २४)

दोनों में वसन्त विकसित बाग हैं। प्रसन्नराघवकार का वर्णन संश्लिष्ट और अधिक उत्तम है। तुलसी में हिन्दी कवियों की परिपाटी के अनुसार केवल नाम-वर्णनमात्र है। परन्तु दोनों में सरोवर (सर) है जो मन्दिर के पास है। प्रसन्न राघव में वंद्य देवी चंडिका है मानस में गौरी। तुलसी ने राम के परस्पर-दर्शन को मर्यादा में बाँध दिया है। प्रसन्नराघव में रामलक्ष्मण के बीच में कोई मर्यादा भाव नहीं है, परन्तु तुलसी पग-पग पर मर्यादा का विचार करते हैं। मानस में (प्रसन्नराघव के विपरीत) सीता स्वयं राजकुमारों को नहीं देखतीं। सखियाँ दिखलाती हैं—

लता ओट तब सखिन्ह लखाए। श्यामल गौर किसोर सुहाए॥

—(२३२)

प्रसन्नराघव में लक्ष्मण सखी के परिहास में योग देते हैं। सीता पहले उन्हें ही देखती हैं, राम को बहुत बाद में देखती हैं।

सीता (विलोक्य सकौतुकम्) अय्यो,

विसट्टवेसलप्पलुप्पलास पुङ्ग सामलो ।

महेस सोम्य सेहरप्फुरन्तसोम कोमलो ।

लदाघरम्मि को इयो अणंगरू अखण्डणो

विलो अणाण देह में सुइं सिहण्ड मण्डणो ॥

(अहो,

विकसितं पेशलोत्पलोत्पलाशपुङ्ग श्यामलो

महेश सौम्य शेखर स्फुरत्सोम कोमलः ।

लतागृहे कोयऽमनंगरूपखंगनो

विलोचनयोर्ददाति में सुखं शिखंड मण्डनः)

तुलसी में सखियों के परिहास का प्रसंग मौलिक है। प्रसन्न-राघव के विपरीत मानस में वह बिलकुल चुप हैं, केवल भावभंगिमा में प्रेम की व्यंजना है—

देखन मिस मृग विहग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि ।

निरखि निरखि रघुबीर छवि, बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥

प्रसन्नराघव में भतृदारिका आकर लौटने की बात कहती है। मानस में सखियाँ स्वयम् याद दिलाती हैं २३४। सीता ने जाने पर उनके विषय में राम-लक्ष्मण में जो अमर्यादित वार्तालाप प्रसन्नराघव में होती है, उसे तुलसी स्थान नहीं देते। वे केवल कहते हैं—

हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई ॥

—(२३७)

५—गीता और मानस—मानस और गीता में अनेक विषयों में महत्त्वपूर्ण साम्य हैं—(१) गीता की तरह मानस भी अद्वैत का प्रतिपादन करता है।

(२) द्विविध माया और उससे परे आत्मा को दोनों मानते हैं।

(३) दोनों मनुष्यों की तीन श्रेणियाँ मानते हैं—विषयी, साधक और सिद्ध। इनके अतिरिक्त दोनों में दो और श्रेणियों का वर्णन है दैव और आसुर।

(४) दोनों ग्रंथ एक ही प्रकार की भक्ति की स्थापना करते हैं—

मन्मना भवमद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मत्कर्मकृत्मत्परयो मद्भक्तः संगवर्जितः ॥
सर्वधर्मान् परितज्य मामेकं शरणं व्रजः ॥

दोनों अनन्य भाव की निष्कामभक्ति (पराभक्ति) को ही मनुष्य की सबसे ऊँची स्थिति समझते हैं। अंतर यह है कि गीता में वासुदेव हैं। तुलसी में राम। इसलिए तुलसी ने राम को वासुदेव के समकक्ष रखने की चेष्टा की है, उनसे गीताएँ कहलाई हैं, उनका विश्वरूप दिखलाया है। व्रजलीलाओं का भी कुछ अनुकरण किया गया है (देखिये बालकांड)।

(५) गीता कर्म, ज्ञान और भक्ति का समुच्चय स्थापित करना चाहती है। तुलसी भक्ति का ही प्रतिपादन करते हैं। इससे गीता जीवन के सब अंगों को स्पर्श करती है। तुलसी केवल एक अंग (अध्यात्म) को छूकर रह जाते हैं। यद्यपि भरत, जनक आदि के जीवन में निष्काम कर्म के संचय के उपदेश की झलक है;

परन्तु इसकी सैद्धान्तिक विवेचना नहीं हुई है। तुलसी की तरह गीताकार ने भी भक्ति को सहजमार्ग, अनन्य मार्ग माना है (अध्याय ८)। तुलसी भी ज्ञानी भक्त को विशेष महत्त्व देते हैं यद्यपि विनयपत्रिका में स्वयं वे आर्तभक्त के रूप में उपस्थित हैं। मानस में उन्होंने ज्ञान को बड़ी दूर तक भक्ति के साथ चलाने का प्रयत्न किया है जैसा अंतिम श्लोक से स्पष्ट है—

पुण्यं पापहरं सदाशिवकरं विज्ञानभक्ति प्रदं।

यहाँ वे ग्रन्थ का ध्येय "विज्ञान भक्ति" (ज्ञानाश्रयी भक्ति) की स्थापना कहते हैं।

अध्यात्म रामायण ने गीता के बहुत से प्रसंग और सिद्धान्त ज्यौं-के-त्यों ले लिए हैं। अतः यह कहा नहीं जा सकता कि जिन सिद्धान्तों को हम गीता से प्रभावित मानते हैं वे कितने गीता से प्रेरणा प्राप्त हैं और कितने अध्यात्म से होकर आये हैं, जिसके दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण से तुलसी प्रभावित हैं।

हिन्दी-साहित्य में तुलसी का स्थान

रामभक्तिकाव्य वैष्णव-काव्य का एक प्रधान अंग है और तुलसी इस काव्य के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। तुलसी की महत्ता का मूल्यांकन करने का सबसे अच्छा ढंग यह होगा कि उनके काव्य को कृष्ण-काव्य के समक्ष रखा जाय और यह देखा जाय कि वह उससे किस प्रकार भिन्न है और कहाँ उत्कृष्ट है।

कृष्ण-काव्य में राधाकृष्ण को लेकर ऐसे एकांतिक प्रेम का चित्रण किया गया है जो नैतिक आदर्शों एवं समाज और संयम की नितांत अवहेलना करता है। कृष्ण-कवि-भक्त समाज को पीछे छोड़ कर भावभूमि की ओर बढ़े हैं। रामभक्तिकाव्य में यह बात नहीं है। उसमें नैतिक आदर्शों को उच्चतम स्थान दिया गया है, समाज की कल्याण-भावना को कवि सदैव अपने सामने रखता है। उसमें मर्यादा-भाव की प्रधानता है। एक प्रकार से उसकी दृष्टि हिन्दू संस्कृति के अभ्युत्थान की ओर है। यहीं तक नहीं, कवि का दृष्टिकोण बहुत कुछ अतिनैतिक हो गया है जो आज के युग को अखर भी सकता है। परन्तु इसी सामाजिक कल्याण और संयम की भावना ने राम-काव्य में हिन्दू गृहस्थ-जीवन और दाम्पत्य-प्रेम के अन्यतम चित्र उपस्थित किये हैं। सारे हिन्दी-साहित्य में प्रेम का ऐसा सुन्दर, संयमित और दाम्पत्य-भावपूर्ण चित्रण और कहीं नहीं है जैसा तुलसी के रामचरितमानस में है।

दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार इस युग का सारा काव्य पौराणिक कथाओं का आश्रय लेता है उसी प्रकार रामकाव्य भी। वह अत्यन्त कड़ी शृङ्खलाओं द्वारा संस्कृत महाकाव्यों और पुराणों से जुड़ा हुआ है। कृष्ण-काव्य संस्कृत आधार पर इतना आश्रित नहीं है जितना राम-काव्य। तुलसी के काव्य को संस्कृत के अनेक रामकथा-काव्यों ने पुष्ट किया है। उसमें पौराणिकता का एक विशिष्ट अंग है। सूरदास के सूरसागर के पदों का संकलन भले हो श्रीमद्-भागवत की कथा को सामने रख कर किया गया हो, इसमें सन्देह नहीं कि उन पदों की रचना के पीछे श्रीमद्भागवत की प्रेरणा ही भर है, न उसकी कथावस्तु से सहारा लिया गया है न वह भागवत का अनुवाद ही है। यह सच है कि सम्पूर्ण भागवत् अथवा उसके कुछ भागों के अनुवाद भी कृष्ण-काव्य के अंग हैं परन्तु यहाँ हम उन्हीं रचनाओं की बात कर रहे हैं जिन्होंने कृष्ण-काव्य को उसका विशेष व्यक्तित्व प्रदान किया। जो हो, कृष्ण-काव्य राम-काव्य से अधिक मौलिक है। उसका आधार मध्ययुग के सम्प्रदायों की पूजा-पद्धति और धर्मभावना में है, पुराणकालीन धर्मभावना में नहीं।

हिन्दी के राम-काव्य का सर्वप्रथम कवि कौन है यह निश्चित नहीं। हमें दो कवियों के दो ग्रन्थ प्राप्त हैं जो रामचरितमानस से पहले रचे गये हैं परन्तु राम-काव्य का ठीक-ठीक स्वरूप तुलसी के रामचरितमानस में ही स्थिर हो सका है। मानस मध्ययुग का सबसे श्रेष्ठ ग्रन्थ है। वह एक ही साथ बहुत कुछ है—धर्मग्रन्थ, महाकाव्य चरित्रकाव्य, व्यवस्था ग्रन्थ (शास्त्र), भक्तिकाव्य, दर्शनकाव्य। वही गीति-पाठ के लिए भी है जैसा उसकी कितनी ही चौपाइयों से निर्दिष्ट है। इसी से उसका निर्माण प्रचलित पुराणकथा-पद्धति पर हुआ है। इस पद्धति में कथा की रचना संवादरूप में होती है। राम-कथा जहाँ-जहाँ पौराणिकरूप में मिलती है वहाँ-वहाँ संवादरूप

में ही हमारे सामने आई है। इसीसे तुलसी ने भी यही रूप ग्रहण किया।

तुलसी के काव्य की विशेषता यह है कि वह किसी विशेष सम्प्रदाय के भीतर से नहीं आया है। इसी कारण उसमें किसी विशेष सम्प्रदाय के विशेष दार्शनिक एवं धार्मिक मतवाद का पोषण नहीं किया गया है। अनेक स्थानों पर कवि ने आश्चर्यजनक समन्वय-बुद्धि का परिचय दिया है। इन्हीं कारणों से उसका ग्रन्थ सभी सम्प्रदायों को मान्य रहा है। प्रत्येक सम्प्रदाय मानस को अपने ढंग पर अपनाता और अपने मत का उस पर आरोप करता रहा है। इतना होने पर भी यह आश्चर्य की बात है कि मानस के प्रधान अर्थ में किसी प्रकार की विकृति नहीं हुई है।

पाठक पूछ सकते हैं कि यह प्रधान अर्थ क्या है। मानस का प्रधान तात्पर्य है भक्तिरसनिरूपण। मानस में कथा-प्रसंग के अंतर्गत जितने भी रस आये हैं उन सब का उपसंहार भक्तिरस में हुआ है। सारा ग्रंथ राम की ब्रह्मभावना से भरा हुआ है। राम ब्रह्म हैं। सीता शक्ति हैं। उनका लौकिक जीवन लीला-मात्र है। संसार माया है। माया राम की दासी है, उन्हीं के इंगित से वह मनुष्य को नचाती है। मनुष्य माया-जन्य भ्रम के कारण परिस्थितियों पर सुख-दुख का आरोप करता है। सच्ची वस्तु-स्थिति को वह समझता नहीं। माया का नाश भगवान् राम की कृपा से ही हो सकता है। राम की कृपा का एक मात्र साधन भक्ति है। यह तुलसी का मौलिक मत है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी के मानस की आधार-भूमि भक्ति है। उसे दर्शन से पुष्ट किया गया है। उस पर संवादों की दीवारें उठा कर कथावस्तु से राम-सीता-मंदिर की स्थापना की गई है। छन्द, रस, अलंकार, संवाद, वर्णन, स्तुतियाँ और गीताओं

का उपयोग इस विशाल मंदिर की सामग्री के रूप में हुआ है। इसमें अंतर्कथाओं और कथा-संकेतों के झरोखे लगे हैं। काव्य की सुन्दर मीनाकारी से यह मंदिर विभूषित है। प्रारम्भिक विनय-चौपाइयों से पाठक भीतर प्रवेश करता है और शिव-पार्वती-कथा, नारदमोह, भानुप्रताप और स्वयंभू-शतरूपा की कथाओं की ड्योढ़ियों को पार करता हुआ रामकथा के मुख्य मूर्ति-भवन में प्रवेश करता है। यहाँ उसे भगवान-राम, भगवती सीता, पार्श्वद-स्वरूप लक्ष्मण-हनुमान की झाँकी मिलती है और राम ही के समान एक प्रभावशाली तापसमूर्ति सामने आती है—यह भरत हैं। आदर्श चरित्रों से मंडित तुलसी की रामकथा ने जनता के लिये एक साथ प्रार्थनाभवन और शिक्षा-गृह का निर्माण किया है।

उच्च-से-उच्च कल्पना के दर्शन करना हो तो तुलसीदास को उत्प्रेक्षाएँ देखिए और उनकी काव्य-प्रतिभा को देखना हो तो उनके रूपकों का निर्वाह देखिए। सीता के रूप की संयत, स्वच्छ और पुण्यमय कल्पना—

जौं पटतरिअ तीय सम सीया।
जग असि जुवति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तनु अरध भवानी।
रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
विष वारुनी बंधु प्रिय जेही।
कहिअ रमा सम किमि बैदेही॥
जो छबि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू।
मथै पानि पंकज निज मारू॥

एहि विधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल॥

उनके आदर्शवाद को देखना है तो रथरूपक देखिये—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़-ध्वजा-पताका॥
बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईसु-भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुद्धि सक्ति प्रचंडा। बर विग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो वीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर॥

उनकी भक्ति को देखना है तो सारा अयोध्याकांड उत्तरार्द्ध उपस्थित है। मनोविज्ञान और हिन्दू-गृहस्थ-जीवन के निरूपण में अयोध्याकांड का पूर्वार्द्ध बेजोड़ है। दार्शनिक विवेचन के लिए उत्तरकांड का अधिकांश भाग उपस्थित किया जा सकता है।

हिन्दी साहित्य में तुलसी ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपने समय की दो प्रमुख काव्य-भाषाओं का अत्यन्त उत्कृष्ट प्रयोग किया, अपने समय की सभी प्रचलित शैलियों में रचना की, अनेक छंदों पर सरलता से लेखनी चलाई और उनमें से प्रत्येक में रस, अलंकार और ध्वनि भरने में सफल हुए। उनके साहित्य में लोक और परलोक, काव्य और धर्म, मृत्य और अमृत्य की सीमाएँ आ जुड़ी हैं।

तुलसी हिन्दी-साहित्य के महाकवि हैं, भक्तों में शिरोमणि हैं और नैतिक क्षेत्र में धर्मगुरु हैं। उनका महत्त्व अद्भुत है।

जब हम तुलसी के पूर्व के काव्य-साहित्य को देखते हैं तो उसमें भाषा, काव्य, धर्म और विचार धारा की दृष्टि से कितनी ही ऐसी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं जिन्हें तुलसी ने समझ-बूझ कर ग्रहण किया है और अपनी रचनाओं में सर्वोच्च विकास को पहुँचाया है। भाषा की दृष्टि से तुलसी अवधी और ब्रजभाषा दोनों के पूर्वकवियों के ऋणी हैं। उनसे पहल इन दोनों भाषाओं में रचनाएँ हो चुकी थीं, अवधी भाषा का प्रयोग सूफ़ी कवियों ने धार्मिक कथाकाव्यों के लिए किया था और तुलसी उनके ग्रन्थों से परिचित जान पड़ते हैं यद्यपि भाषा सीखने के लिये उन्हें उनके काव्य न पढ़ने पड़े होंगे। यह तुलसी की विशेषता है कि उन्होंने इन्हीं धार्मिक काव्यों की परम्परा में रामचरितमानस जैसी चीज़ दी। ब्रजभाषा काव्य में प्रबन्धात्मकता की कमी थी, कथाकाव्य का प्रयोग सूर में असफल है। वह गीतों और कवित्त-सवैयों की भाषा होकर रह गई थी। दूसरे, तुलसी के चरितनायक का सम्बन्ध अवध से था। इसीसे तुलसी ने मानस की भाषा अवधी चुनी। पूर्ववर्ती सूफ़ी कवियों की भाषा से मानस की भाषा की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने उसे उसी प्रकार संस्कृत का पुट देकर विकसित किया है जिस प्रकार सूर ने पूर्ववर्ती ब्रजभाषा को। संस्कृत शब्दकोष और संस्कृत काव्य-मंजूषा ने तुलसी के मानस को इतना पुष्ट कर दिया कि उनके बाद के कवि किसी भी दिशा में उनका विकास नहीं कर सके। साधारण लोकभाषा को काव्य की ही नहीं, रामधर्म की भाषा उन्होंने बना दिया और इसका फल यह हुआ कि उनके बाद आधुनिक काल तक सारा रामकाव्य इसी भाषा में लिखा गया।

काव्योत्कर्ष की दृष्टि से परिस्थिति इससे भी पुष्ट है। तुलसी ने

अपने पहले के सारे संस्कृत और हिन्दी-काव्य से लाभ उठाया है। "नाना पुराण निगमागम सम्मत"—बात प्रत्येक प्रकार से ठीक है। कथा-सौष्ठव चाहे उनका हो परन्तु वे कथा के लिए अवश्य ही वाल्मीकि, प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक के ऋणी हैं—विषय-विस्तार के समय उन्होंने संस्कृत के सैकड़ों सुभाषितों को हिन्दी में गूँथ दिया है। अकेले मानस पर दो-ढाई सौ संस्कृत ग्रन्थों का ऋण है। स्वयं तुलसी ने कम नहीं दिया है परन्तु संस्कृत-काव्य का मंथन भी कर दिया है जिससे मानस संस्कृतज्ञों का भी प्रीत रहा है। २० वर्ष बाद जब केशवदास को रामचरित पर कथा लिखने की सूझी तो वे तुलसी के काव्य से इतने दबे हुए थे कि उन्होंने संस्कृत के आचार्य होते हुए भी संस्कृत राम-काव्य से विशेष सहारा लेना उचित नसमझा और सारी रचना को मौलिक योजना पर खड़े करने के प्रयास के कारण असफल रहे। तुलसी के बाद राम-काव्य का कोई भी पहलू आगे नहीं बढ़ सका—इतना कुछ तुलसी स्वयं कर गये थे। परवर्ती कवियों को कोई नवीन दिशा ही न सूझी।

परन्तु तुलसी की सूक्ष्म दृष्टि ने यह देख लिया था कि केवल संस्कृत के ग्रन्थों को मथने से ही काम नहीं चलेगा, उन्होंने हिन्दी के ग्रन्थों का भी अध्ययन किया और छन्द, भाषा और भाषा की दृष्टि से अपने क्षेत्र की सारी सामग्री बटोरकर राम के चरणों में धर दी। चंद के पिंगल काव्य की छटा देखनी हो तो पढ़िये—

> डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पव्वै समुद्र सर।
> ब्याल बधिर तेहि काल, विकल दिग्पाल चराचर॥
> दिग्गयंद लरखरत, परत दसकण्ठ मुक्ख भर।
> सुर विमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर॥

चौंके विरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ ॥
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि, जबहिं राम सिवधनु दल्यौ ।

कबीर का संतज्ञान लगभग उसी भाषा में "वैराग्य संदीपनी" में मिलेगा। वीर कवित्तों-सवैयों की परम्परा में "कवितावली" का विशिष्ट स्थान है विशेषकर उसके सुन्दरकांड का शौर्य और ओज और उसकी रस पुष्टता भूषण के कवित्तों-सवैयों में भी न मिलेगी। सूर के काव्य का तुलसी ने विशेष रूप से अध्ययन किया था। हम सूर के काव्य को दो भागों में बाँट सकते हैं—विनयावली और कृष्णकथा। तुलसी ने विनयावली के स्थान पर उससे कहीं पुष्ट और कहीं अधिक काव्य सौष्ठव-पूर्ण विनयपत्रिका दी। सूर की कृष्णकथा के समक्ष "रामगीतावली" में रामकथा लिखी। उसकी वात्सल्यरस और शृङ्गार की योजना के लिए तो वे एकांततः सूर के आश्रित हैं। पदलालित्य की सृष्टि के लिए भी उन्हें भाषा, भाव, शब्दकोष—सब में बहुत कुछ सूर से लेना पड़ा है परन्तु यह सब लेकर उन्होंने राम-काव्य को सर्वग्राही, सर्वहारी ही बनाया है। "कृष्णगीतावली" में सूर का ऋण उनके सिर पर चढ़कर बोल रहा है। संभव है कि तुलसी ने विनयपत्रिका में श्रीकृष्णस्तोत्र दिया हो और उनके शिष्यों और प्रशंसकों ने सूर के पद उसके आगे पीछे जोड़कर उनके नाम पर चलाये हों या स्वयं उन्होंने कुछ अपनी रचनाओं को इस स्तोत्र के साथ सूर की रचनाओं से जोड़ दिया हो। जो हो, परिस्थिति स्पष्ट है। कृष्णगीतावली में कथा विशृङ्खल है, सूर के क्षेत्र में तुलसी असफल ही नहीं हैं, वे उनकी ही वाणी प्रतिध्वनित कर रहे हैं। सतसईपरंपरा में तुलसी ने सतसई लिखकर योग दिया और खंडकाव्य की परम्परा को जानकीमंगल और पार्वतीमंगल दिये। दोनों मंगलों की रचना विवाह-समय के गीतों का स्थान लेने के

लिये की गई हैं। इससे स्पष्ट है कि तुलसी जन-समाज पर तीव्र दृष्टि रखते हैं और अपने कुछ काव्यों में जहाँ उन्होंने पंडित वर्ग का ध्यान रखा है वहाँ निम्न वर्ग के संस्कारों और रीति-रिवाजों को रामधर्ममय बनाने से भी नहीं चूके हैं। प्रचलित लोकछन्दों सोहर और बरवै का प्रयोग बात को स्पष्ट करता है। रामलला नहछू की अश्लील शृङ्गारिकता (जिसके लिये कवि लाञ्छित किया जाता है) कवि के जनहृदय तक पहुँचने की जीवंत चेष्टा-मात्र है। बरवै का इतिहास चाहे जो रहा हो इस छंद में रामकथा ढाल कर तुलसी ने जन-हृदय को ही स्पर्श किया है। रामाज्ञा प्रश्न और राम-शलाका में हम उन्हें अपने युग के कवि-कर्म को पूरा करते हुए पाते हैं।

परन्तु तुलसी के समय में जो काव्यप्रवृत्ति बलवती होकर अपने वेग से तट को तोड़ती-फोड़ती उछलने-कूदने लगी थी और जिसकी सहज चंचल किशोरी प्रकृति ने जनता का ध्यान हठात् अपनी ओर खींचा था, वह थी विलास की प्रवृत्ति। हमारा तात्पर्य रीतिकाल की मूलधारा से है जिसका अंतः स्रोत व्रजभापा कवियों में उमड़ पड़ा था। इस विलासकाव्य की तीन-चार प्रवृत्तियाँ थीं और तुलसी पर अनेक रूपों से उनकी प्रतिक्रिया हुई—

(१) अलंकारों को आधार बनाकर रचना करने का प्रयत्न—यह प्रवृत्ति बरवै रामायण में स्पष्ट है। ऐसा लगता है कि अलंकार कौशल-प्रदर्शन-मात्र के लिए ही इसके कथामात्र की रचना की गई है।

(२) कूट-काव्य-पांडित्य—इसके भी दो-एक उदाहरण मिल जाते हैं।

(३) विलास-प्रवृत्ति—रामलला नहछू और बरवै में यह

प्रवृत्ति प्रमुख रूप से मिलती है। रामगीतावली, मानस आदि रचनाओं में हम इसे प्रच्छन्न रूप में ही जहाँ-तहाँ पाते हैं। परन्तु तुलसी ने इस युग की विलासिनी प्रवृत्ति के प्रति विरोध ही प्रगट किया है। रामचरितमानस में उन्होंने राधाकृष्ण को एकांत विलास-निष्ठा के समकक्ष रक्खा है राम का एकपत्नीव्रत (जो पूर्वराग में उच्छृङ्खल नहीं होता) और सीता की गौरवमय पतिनिष्ठा। सुन्दरकांड में सीता का वियोगवर्णन शृंगारकाव्य के अंतर्गत होकर भी उससे भिन्न पड़ता है। यहाँ वह पतिव्रत धर्म का जागरूक रूप है। उस वियोग का अंत विलास में नहीं है, पतिसेवा में है। उत्तरकांड का सीतागृहिणी का जो चित्र है वह सीता के वियोग को दाम्पत्य प्रेम के अमृतजल से पवित्र कर देता है। सीता का नखसिख-वर्णन कहीं भी नहीं मिलता। मानस में नारी-सौन्दर्य के प्रति एकनिष्ठ अवहेला के लिए तुलसी की जागरूकता देखने योग्य है और कभी-कभी उन्हें नारी-विरोधी भी बना देती है। सीता के प्रति दैवी भावना और अपने युग के शृंगार के प्रति यथेष्ट विरोध, यही दो कारण इसके मूल में हैं। जो हो, तुलसी के संयम के नीचे उनका सौन्दर्य और प्रेम के प्रति तीव्र आकर्षण प्रच्छन्न रूप से वर्त्तमान है। काव्य के स्वरों में युग की शृंगार-प्रवृत्ति से बहुत ऊपर संयम के तपे हुए देश में पहुँच कर भी तुलसी कहीं कथा के लिए, कहीं वातावरण के द्वारा शृंगार की भूमि पर खिंच ही आते हैं। यदि रामकथा में उनके अद्वितीय संयम को देखना है तो उनकी रचनाओं को वाल्मीकि और केशव के साथ पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जायगी। कथा-विकास, पात्र-निरूपण, दाम्पत्य-प्रेम-चित्रण, वर्णन सभी में आश्चर्यजनक संयम मिलेगा।

तुलसी के बाद न उनकी रामकथा का ही विकास हुआ, न राम-काव्य अधिक उत्कर्ष को प्राप्त हो सका। कारण स्पष्ट है। दोनों मार्ग

तुलसी ने स्वयं बंद कर दिए थे। इसके अतिरिक्त तुलसी के मानस ने तो धर्म-ग्रन्थ का रूप प्राप्त कर लिया और श्रद्धास्पद कवियों ने तुलसी से स्पर्द्धा न की। स्वयं रामकथा ऐसी बँधी-सधी वस्तु है कि "फुरकरिए" कवि उस ओर परम्परा निभाने के सिवा विशेष प्रयत्न का ध्यान ही नहीं कर सकते थे। यहाँ कृष्ण-काव्य की तरह किसी एक अंग को लेकर नवीन अनुभूति भरने या पुराने मधु को नये पात्र में भरने भर की बात नहीं थी। कृष्ण-काव्य में इस तरह के अंग थे जो युग की विलास-प्रवृत्ति एवं पांडित्य-प्रदर्शन की अभिरुचि को प्रश्रय देते थे। पहले में राधाकृष्ण और गोपियों की अनेक क्रीड़ाएँ, हास-परिहास, विरहमिलन। दूसरे में भ्रमरगीत। मध्य-युग के कृष्ण भक्तिकाव्य के बाद कृष्णकाव्य के इन्हीं दो अंगों पर सहस्र-सहस्र मुक्तक रचनाएँ सामने आईं। काव्य-शास्त्र-चर्चा के बहाने कवियों ने व्यास की गोपीकृष्ण की रहस्यलीला को गली-कूचों में फिरने वालों का खेल-तमाशा बना दिया और समाज ने सम्भ्रांत नायक-नायिका नहीं—निम्न श्रेणी के प्रेमी-प्रेमियों के रूप में राधा-कृष्ण को देखा। रामसीता भी अयोध्या के महंतों की कृपा से साहित्य की इस पंक में फँस गए, परन्तु फिर भी तुलसी की रामसीता की दिव्य दम्पति-मूर्ति धर्म और काव्य के उच्च देव-सिंहासन पर आरूढ़ रही। यह समकालीन और परवर्ती काव्य पर तुलसी के महान् काव्य की विजय नहीं तो और क्या है?

इसीसे जब हमें हिन्दी के साहित्य में तुलसी के स्थान को आँकना है, तो इस विस्तृत पृष्ठभूमि की आवश्यकता है। तुलसी और सूर—यही तो हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। "सूर सूर तुलसी शशि।" परन्तु जहाँ सारा परवर्ती काव्य सूर की रचनाओं का ही बहुवाणीविलास है, वहाँ तुलसी का काव्य चट्टान की तरह खड़ा रहता है और कवि उससे स्पर्द्धा करने की तो बात ही क्या, उससे

प्रभाव भी ग्रहण नहीं करते। वृंदावन के कुछ मंदिरों में दो तरह की मूर्तियाँ हैं—एक चल; दूसरी अचल। उत्सवों-समारोहों के समय यही मूर्तियाँ बाहर निकाली जाती हैं और सोने-चाँदी मोती-पन्ने से सजा कर बाजार में घुमाई जाती हैं। भक्त लोग प्रशंसा की दृष्टि से देखते हैं और घर पर आकर अपनी-अपनी मूर्तियाँ भी उसी तरह सजाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु अचलमूर्ति इस सारे समय मंदिर की निर्जनता में एकांत तपस्या करती होती है। जहाँ भीड़ की माँग है, वहाँ उसका कोई स्थान नहीं है। वह अपनी निश्चल तपगरिमा में महान् है। उसे प्रशंसा नहीं चाहिये, स्पर्द्धा नहीं चाहिये, उससे किसी को रस ग्रहण करना हो तो वह हृदय खोल कर ले, केवल मार्ग में आँखें खोल कर ढूँढ़ने से उसे कुछ न मिलेगा। परन्तु वर्ष भर भक्तों के श्रद्धा-फूल इसी अचल मूर्ति पर चढ़ते हैं। रस चाहे चल मूर्ति दे, वरदान अचल मूर्ति से ही मिलना है। सूर और तुलसी के काव्यों की भी यही परिस्थिति है। तुलसी का काव्य मंदिर में प्रतिष्ठित अचल प्रतिमा है, सूर का काव्य मंदिर के भीतर है परन्तु वह मंदिर के बाहर की चल प्रतिमा होकर ही परवर्ती काव्य को प्रभावित कर सका है।

तब हमें प्रभाव की बात भी जाने देना चाहिये। केवल मात्र काव्य को ही देखना ठीक है। इस दृष्टि से तुलसी और सूर का तुलनात्मक अध्ययन हम "सूरसाहित्य की भूमिका" में कर चुके हैं। वहाँ जिस निष्कर्ष पर हम पहुँचे हैं, उससे स्पष्ट है, हिन्दी-काव्य के क्षेत्र में तुलसी अनन्य है। उनकी तीन रचनाएँ हिन्दी-काव्य की अमूल्य सम्पत्ति हैं। ये तीन ग्रन्थ हैं रामचरितमानस, विनयपत्रिका और कवितावली। पहला सभी दृष्टि से हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। दूसरे के जोड़ की चीज—भागवत को छोड़ कर—न संस्कृत में है, न हिन्दी में, न किसी

दूसरी भाषा में। परन्तु भागवत से भी विनयपत्रिका की तुलना कैसे होगी? भले ही गीतात्मकता भागवत के भक्तिगीतों में हो, हृदय की विह्लता हो, स्तोत्रों में पांडित्य हो, परन्तु तुलसी जैसा सौष्ठव, वैसा काव्यलालित्य और संगीत वहाँ भी दुर्लभ है। रसपरिपाक की दृष्टि से, विशेषकर परुष रसों के निरूपण में, हिन्दी का कोई काव्य-ग्रन्थ कवितावली का जोड़ नहीं बन सकता। फिर कवितावली में रस के सिवा भी बहुत कुछ हैं—आत्मग्लानि, दैन्य, राम का शौर्यपूर्ण सौन्दर्य, स्निग्ध दाम्पत्य-प्रेम और स्वयं कवि का विराग। इन तीन ग्रन्थों की सामग्री को अभी तक किसी एक कवि ने हमें नहीं दिया।

परन्तु हमें यहीं नहीं रुक जाना है। हमें आगे बढ़ कर यह भी देखना है कि तुलसी ने हिन्दी के माध्यम से भारतीय भावधारा और चिंतन को क्या दिया? इसके बिना हमारा तुलसी का अध्ययन अधूरा होगा। काव्य पर विशेष प्रभाव न सही, परन्तु परवर्ती भारतीय भावधारा और मनीषा पर तुलसी का जो प्रभाव है, उसे छोटा नहीं किया जा सकता।

तुलसी ने भारतीय भाव-धारा को क्या दिया, यह तो तुलसी के किसी भी पाठक से पूछा जा सकता है—राम में ब्रह्मभावना करते हुए दैन्यभाव से उनके प्रति भावुकतापूर्ण भक्ति। मानस और विनयपत्रिका यह दो ग्रंथ उनकी भावधारा को इसी ओर प्रवाहित करते हैं। मानस में हमें उनकी भक्ति का एक रूप मिलता है। उसे हम ज्ञानाश्रित अद्वैतभक्ति कह सकते हैं। यही भावना विनय पत्रिका में अनन्य भक्ति हो जाती हैं जहाँ मूलतः अद्वैत तत्त्व को जानता हुआ भक्त भावना में डूब कर द्वैतभाव से दैन्य रखता हुआ भक्ति करता है। परन्तु इस अनन्य भक्ति का पालन करते हुए भी

तुलसी अवतारवाद और देवतावाद को स्वीकार करते हैं। उपासना के क्षेत्र में यह सामञ्जस्य विचित्र है, परन्तु यही तुलसी की मौलिकता भी है। अपने ग्रन्थों के माध्यम से तुलसी ने इसे ही देश के धर्म समाज को दिया है। दोनों प्रधान ग्रन्थों में हम इसको विकसित देखते हैं। मानस में शिव और राम में जैसा सम्बन्ध स्थापित किया गया है, वह देशकाल के लिये उपयोगी था, यह ऐतिहासिक सत्य है। उस समय वैष्णवों और शाक्तों में घमासान युद्ध हो रहे थे। बात दक्षिणापथ की थी। उत्तर में इस प्रकार के धर्म-कलह उपस्थित थे इसका प्रमाण स्वयं तुलसी की कविता में मिलेगा, परन्तु दोनों पक्षों की ओर से विरोध सहते हुए भी तुलसी ने राम और शिव में परस्पर "सेवक, स्वामि, सखा" का नाता जोड़ा और शिवभक्ति को राम-भक्ति की भूमिका बना दिया। उनके राम ने स्वयं कहा—

> शिव द्रोही मम दास कहावै।
> सो नर सपने मोहिं न भावै॥

रामचरितमानस की भूमिका में इसीलिये शिवचरित की प्रतिष्ठा हुई। गरुड़-कागभुसुण्डि-संवाद में काग के चरित में निर्गुण-सगुण का भी समाधान किया गया और "हिम-जल-उपल" की उपमा से रूपों के भीतर अरूप और अरूप के भीतर रूप की प्रतिष्ठा का सामञ्जस्यमय सिद्धान्त समझाया गया। विनयपत्रिका में देवतावाद की स्वीकृति ही नहीं है, उसका परिहार रामभक्ति में हुआ है। सब देवताओं का प्रेम राम की ओर ही उन्मुख होता है, इस सिद्धान्त में न कोई देवता छोटा है न बड़ा। यह सिद्धान्त तुलसी का व्यक्तिगत सिद्धान्त नहीं है, पद्म पुराण और अध्यात्म में शिव-विष्णु का सहज सम्बन्ध स्थापित था ही। देवतावाद के भीतर ब्रह्म की प्रतिष्ठा बहुत प्राचीन काल में होती आई है, ऋग्वेद और उपनिषदों से भी उद्धरण दिये

जा सकते हैं। परन्तु तुलसी ने इन्हीं सिद्धान्तों को एक बार फिर व्यक्तिगत अनुभूति का बल देकर जनता के सामने रखा और जनता ने इन्हें "तुलसी का मत" मान कर ग्रहण किया।

परन्तु तुलसी ने इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण काम किया। वह है सामाजिक क्षेत्र में पग-पग पर संयम की महत्ता का प्रदर्शन। परस्पर के सहयोग, शिष्टाचार, सदाचार, सहानुभूतिपूर्ण आदान-प्रदान—यही तो समाज की भित्ति हैं। इन्हीं भावनाओं पर तुलसी ने बल दिया। उस युग की पृष्ठ-भूमि में रखने पर हमें जान पड़ेगा कि यह कितने क्रांतिकारी सिद्धान्त थे। भारतीय कौटुम्बिक जीवन में सम्मिलित परिवार और सामाजिक जीवन के पारस्परिक सहानुभूतिपूर्ण भावना के साथ मर्यादाभाव से वर्णाश्रम का पालन —यही तुलसी के मंतव्य हैं। परन्तु आज की स्वतंत्रता की आवाज इनमें कहाँ मिलेगी? हमें कवि की प्रगतिशीलता को जाँचने के लिए उसके युग की वीथिका को ध्यान में रखना पड़ेगा। आज के दृष्टिकोण से तो हम यही कहेंगे कि तुलसी ने भारतीय समाज के वर्ग-विभाजन को ही प्रश्रय दिया और उनके रामराज्य में शूद्र और नारी को रंचमात्र में सुख नहीं होता। यह हम नहीं कहते कि तुलसी अपने समय से ऊपर उठ कर भविष्य को नहीं देख पाते। हमें यह कहना है कि तुलसी ने एक विशेप पहलू से जीवन को देखा और उन्होंने अपने समय के उच्छृङ्खल अनाचारमय जीवन के लिए एक विशेप प्रकार के निदान बताये। दूसरे प्रकार के निदान आज हमारे सामने आ रहे हैं। हमें देखना है कि ये कितने सफल होते हैं। परन्तु तुलसी ने जिस विशेप प्रकार का उपचार सामने रखा उसने परिवर्तनशील समाज को भित्तियों पर दृढ़ रखा और उनके समय में ही नहीं, बाद में भी, धार्मिक और सांस्कृतिक वैमनस्यपूर्ण ववडरों से समाज की रक्षा की। दो सौ वर्ष बाद आने वाले ईसाई मतवाद

और पाश्चात्य सभ्यता की वेगवती अनिष्टकारी बाढ़ों में भीस उने समाज की नौका की गतिविधि का नियन्त्रण किया और उसे कम-से-कम उतराए रखा। इतना ही क्या कम है? तीन सौ वर्ष तक उत्तर-भरत के जिस जर्जर हिन्दू-समाज और धर्म को तुलसी एकता के तागे में पिरोये रहे, वह क्या कभी उनके ऋण को चुका सकेगा?

———

१२

तुलसी का संदेश

प्रत्येक महान् काव्य का अपना महान् संदेश होता है। यदि यह ठीक है तो हमें तुलसी के काव्य में भी कोई संदेश ढूँढ़ना पड़ेगा। यह संदेश क्या है? उसमें पिछले संदेशों की अपेक्षा क्या नवीनता है? वह क्यों महान् संदेश है? मानवजीवन के विकास के लिए उसकी क्या आवश्यकता है और क्यों?

प्रत्येक पाठक जो तुलसी के काव्य से परिचित है, उनके मुख्य संदेश को समझ लेता है। उसके बारे में किसी भी प्रकार का संदेह हो ही नहीं सकता। वह संदेश है रामभक्ति। सारा मानस इस संदेश से ओत-प्रोत है। परन्तु रामभक्ति कहने भर से काम नहीं चल जाता। हमें पिछले प्रश्नों का उत्तर देना होगा। तुलसी के रामभक्ति के संदेश की उपादेयता क्या है? रामभक्ति का अर्थ है रामाश्रित जीवन। इस रामाश्रित जीवन पर चलनेवाले व्यक्ति को तुलसी ने "संत" कहा है। इसमें श्रेष्ठ मानव-गुणों का संग्रह आवश्यक हो जाता है। यह श्रेष्ठ मानवगुण ही मनुष्य के जीवन को आगे बढ़ाते हैं। धर्मरथ के रूपक में इन्हीं श्रेष्ठ गुणों का निर्देश है। ये श्रेष्ठ गुण नीति-निरपेक्ष हैं, स्वयं सत्य हैं।

परन्तु तुलसी यहीं नहीं रुक जाते। वे पाठकों के आगे सर्वमान्य सत्य ही नहीं रख देते परन्तु साथ ही आचरण और व्यवहार पर

भी ध्यान देते हैं। वे उच्च नैतिक आदर्शों और सामाजिक आदर्शों को भी हमारे सामनें उपस्थित करते हैं। ये कई हैं—

(१) कुटुम्ब के आदर्श

(२) गुरुजन के प्रति आदर्श

(३) परिजन के प्रति आदर्श-व्यवहार

(४) राजा, राजसमाज और पुरजन के आदर्श

(५) मित्र और विरोधियों के आदर्श

इस प्रकार वे पाठक को आदर्श कुटुम्ब, आदर्श समाज और आदर्श काव्य की ओर आगे बढ़ाते हैं। केवल वर्णन में ही नहीं, कथा-सूत्र में भी इन आदर्शों को गूँथ दिया गया है। यदि हम इन आदर्शों को एक शब्द में रखना चाहें तो वह शब्द "मर्यादा" है। तुलसी के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। स्वयं तुलसी मर्यादित जीवन के पक्षपाती हैं। उन्होंने कलियुग की उच्छृङ्खलता की कड़े शब्दों में भर्त्सना की है। उन्होंने अपने चरित्रों को इस ढंग से गढ़ा है कि उनमें मर्यादा भाव का ही पोषण हो। वाल्मीकि रामायण के राम के कुटुम्ब के सदस्यों में जो उच्छृङ्खलता है, उसे उन्होंने स्थान ही नहीं दिया है। संयम, शील और सदाचार—ये तुलसी के रामाश्रित जीवन की वृहद्त्रयी है।

और विराट् धर्मभूमि पर उतरकर देखें तो तुलसी सत्य तथा धर्मपरायणता की अधर्म तथा पाप पर विजय घोषित करते हुए दिखाई पड़ते हैं। राम-रावण-युद्ध सत्य-असत्य और पाप-पुण्य का ही युद्ध तो है! साधारण रूप से रामकथा का जो ढाँचा मिलता है,

उसे तुलसी ने बदल कर उपस्थित किया है। रावण है असत्य और पाप। पहले तुलसी उसका विभव वर्णन करते हैं—एक क्षुद्र आततायी से बढ़ कर रावण सारे विश्व में अनाचार और बवंडर के रूप में व्याप्त हो जाता है। पाप इतना बलवान हो जाता है जितना कभी नहीं था। अंत में एक नारीहीन, राज्यहीन, शक्तिहीन तापस-राजकुमार अपदार्थ ऋक्ष-वानरों को लेकर अपने सत्य के बल पर उस महान् असत्य का सामना करता है। पाप अपने तीक्ष्णतम अस्त्रों का उस पर प्रयोग करता है परन्तु अंत में विजय सत्य ही की होती है। रामावतार का अर्थ है अधर्म पर धर्म की जय। तुलसी ने रामावतार की कथा इसी विशद, महान् और लोकोत्तर धर्मभूमि पर प्रतिष्ठित की है। इसीसे राम के दुष्कृत्य भी वहाँ धर्मकृत्य हो जाते हैं। शूर्पनखा का अंग-भंग और बालि-वध राम पर लाञ्छना नहीं ला सकते। इन प्रसंगों पर भी राम दृढ़ धर्मभूमि पर अवस्थित हैं। वे यहाँ भी मर्यादा का पालन कर रहे हैं। मर्यादा की पुकार है—

आततायिनमायान्तं हन्योदवाविचारयन्।

(जो आततायी है, उसका संहार ही विहित है)। बाली के प्रश्न पर राम स्वयं कहते हैं—

अनुजबधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

सुग्रीव शरणागत और प्रपन्न भी था, अतः क्षत्रिय के नाते भी उन्हें यही करना था। अर्जुन की तरह सुग्रीव ने भी राम के स्वरूप को

पहचान कर हथियार डाल दिये थे, परन्तु स्वयं राम ने उसे वालि के विरोध में खड़ा किया। यदि वे ऐसा नहीं करते तो धर्म की मर्यादा जाती, आततायी को आश्रय मिलता। धर्म की हानि होती। यही बात शूर्पनखा के अंग-भंग के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

ऐसे भी स्थल आते हैं जब हम "क्या धर्म है ?" यह पहचान नहीं पाते। धर्म की अनेक भूमियाँ हैं—गृह-धर्म, कुल-धर्म, समाज-धर्म, लोक-धर्म और विश्व-धर्म या पूर्ण-धर्म। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। परिस्थितियाँ ऐसी आ सकती हैं जब दो में विरोध हो। तब धर्म क्या है ? ऐसी दशाओं में अधिक श्रेष्ठ भूमि पर कम श्रेष्ठ भूमि को बलि-दान करना होगा। भरत ने राम के वनवास की सूचना पाकर माता कैकेई को कटु वचन कहे, तो उससे वह पुत्र-धर्म से च्युत नहीं हो जाते। राम का सुख-दुख था विस्तृत जनसमूह का सुख-दुख। इसी-लिये राम के प्रति अन्याय देख कर भरत को पुत्र-धर्म से दृष्टि हटा लेनी पड़ी। इसी प्रकार रामभक्त विभीषण ने राम-धर्म (लोकहित या लोकरंजन) पर गृह-धर्म को बलि कर दिया परन्तु वह भ्रातृ-द्रोही नहीं कहा जा सकता। यदि धर्म का अर्थ है लोकरंजन अथवा लोक-कल्याण, तो तुलसी की रामकथा में उसका रूप शुद्ध और कल्याणकर रखने का गंभीर प्रयत्न स्पष्ट है।

साधारण पाठक कैकेई और रावण के प्रति तुलसी को अन्यायी ठहराता है परन्तु वह यह नहीं समझता कि तुलसी ने राम को धर्म का साम्यवाची माना है। तुलसी के राम धर्म-स्वरूप हैं। वे अधर्म के नाश के लिये ही अवतीर्ण हुए हैं। धर्म के तिरस्कार से उत्कृष्ट पात्र के हृदय में रोष का आविर्भाव अवश्यम्भावी है। इसीलिये

तुलसी मंथरा, कैकेई और रावण को पद-पद पर कठोर वचन कहते हैं। राम के धर्मरूप को भलीभाँति न पहचान कर लोग इन स्थलों पर संदेह में पड़ जाते हैं।

वस्तुतः मानस की राम कथा तीन धरातलों को छूती हुई चलती है—ज्ञान, भक्ति, धर्म। ज्ञान की भूमिका में तुलसी ने राम के ब्रह्मत्व का आविष्कार किया है और ब्रह्म, जीव, जगत और माया की विशद रूप से चर्चा की है। यहाँ राम पूर्ण-ज्ञान ब्रह्मपर हैं। भक्ति की भूमिका में तुलसी राम को ब्रह्म का अवतार सगुण दाशरथि राम लेकर आगे चले हैं। रामलीला वस्तुतः ब्रह्म की अलौकिक लीला है जिससे निःश्रेयस (मोक्ष या रामपद प्राप्ति) की सिद्धि होती है। धर्म की भूमिका में तुलसी ने रामलीला में धर्म का प्रकाश देखा है। यहाँ उन्होंने परात्पर ब्रह्म और सगुण ब्रह्म-अवतारी राम को कर्मक्षेत्र में प्रतिष्ठित किया है। धर्म की अभिव्यंजना लोक-व्यवहार में होती है, अतः तुलसी ने कर्मक्षेत्र संसार को ही धर्मक्षेत्र माना है। तुलसी अकर्म के पोषक नहीं हैं। उनके नायक राम विरागी होकर भी लोकहित और लोकरंजन के लिये (या कहिये, धर्म के लिये) कर्मरत रहे। इसीसे हमें राम के समस्त कार्यों को लोकहित (व्यापक धर्म) के दृष्टिकोण से देखना चाहिये। तब हम रामकथा की उच्च धर्मभूमि से परिचय प्राप्त कर सकेंगे। राम को लेकर उनकी परम्परागत कथा के सहारे ज्ञान, भक्ति और कर्म (धर्म) के श्रेष्ठतम सिद्धान्तों का सामञ्जस्य उपस्थित करना तुलसी की आश्चर्यमयी प्रतिभा का ही काम है।

केवल मानव-जीवन ही नहीं, तुलसी के लिये प्रकृति भी धर्मरूपा है। वर्षा-शरद वर्णन देखिये। तुलसी जड़-चेतन सभी जगह धर्म

और नीति के श्रेष्ठतम तथ्यों को खोज निकालते हैं और उन्हें संदेश रूप में हमारे सामने रखते हैं।

संक्षेप में, तुलसी ने राम के व्यक्तिगत जीवन और महान् धर्म-चेतना को एक कथासूत्र में बाँध दिया है। उनकी रामकथा में राम की व्यक्तिगत चेतना उतनी भी नहीं है, जितनी बाल्मीकि की रामकथा में। राम-रावण युद्ध न राज्यविस्तार के लिये है, न सीता के लिये। तुलसी जिसे "देवकार्य" कहते हैं—उसके लिये है। उसका तात्पर्य है अनाचार का नाश। भगवान राम के जन्म का हेतु ही यही है। वनवास के पीछे भी यही प्रेरणा है। वन में प्रवेश करते ही राम प्रण करते हैं—

निशिचर हीन करौं महि, भुज उठाय प्रण कीन ॥

सीता को गुप्त करके छाया की स्थापना भी इसी कारण है। सीता-हरण में स्वयं रामेच्छा प्रतिष्ठित है। सीताहरण और राम-विजय के बाद सीता की प्राप्ति गौण विषय है। मुख्य विषय है अत्याचारी राक्षसों का नाश। शेष निमित्तमात्र है। इस प्रकार राम का आदि, मध्य और पर्यावसान-धर्म में है।

व्यक्ति के लिये तुलसी का संदेश है रामाश्रित जीवन जिसकी परिभाषा यह है—

सिय राम सरूप अगाध अनूप
विलोचन-मीनन को जल है।
श्रुति-रामकथा, मुख राम को नाम,
हिये पुनि रामहि को थल है ॥

मति रामहिं सों, गति रामहिं सों,
रति राम सों, रामहिं को बल है।

सब की न कहैं, तुलसी के मते
इतनो जग जीवन को फल है॥

आज भी हम इन संदेशों में जीवन की एक महान् दिशा देख सकते हैं।

लेखक की अन्य पुस्तकें

१ प्रेमचन्द : एक अध्ययन

२ कवि प्रसाद : एक अध्ययन

३ सूरदास : एक अध्ययन

४ निबन्ध-प्रबोध

५ प्रबन्ध पूर्णिमा

६ प्रबन्ध चिन्तामणि

७ अम्बपाली (उपन्यास)

८ जय वासुदेव ”

९ जय हिन्द ”

१० ताण्डव (कविता)

११ जादू की ढोलक (बाल-साहित्य)

१२ चन्द्रभान चूहे की कहानी ”

किताब महल : प्रकाशक : इलाहाबाद

हमारे कुछ प्रकाशन

निबंध

निबंधप्रबोध

प्रबंधपूर्णिमा

आज की समस्याएँ

इतिहास

हिंदी साहित्य : एक अध्ययन

आधुनिक बँगला-साहित्य

आलोचना

सूरदास : एक अध्ययन

तुलसीदास ,,

[illegible] ,,

कवि प्रसाद ,,

कबीर ,,

शरत्चंद्र ,,

कथाकार प्रेमचन्द ,,

किताब महल • प्रकाशक • इलाहाबाद

Only Cover printed at the Kushan Press, Allahabad